कला के दार्शनिक तत्व

लेखक

चिरंजी लाल झा एम०ए०
(हिन्दी तथा अंग्रेजी)

अध्यक्ष—चित्रकला विभाग
महानन्द मिशन हरिजन कालिज—गाज़ियाबाद (उ०प्र०)

कनवीनर, बोर्ड ऑफ् स्टडीज़ इन ड्राइंग एण्ड पेण्टिंग,
आगरा विश्व—विद्यालय, आगरा (उ०प्र०)

मेम्बर, बोर्ड आफ़ स्टडीज़ इन फाइन आर्टस,
विक्रम—विश्वविद्यालय, उज्जैन (म०प्र०)

मेम्बर, फैकल्टी ऑफ् आर्ट्स एवं एकैडेमिक काउंसिल,
आगरा विश्व विद्यालय, आगरा

प्रकाशक

लक्ष्मी कला कुटीर

प्रधान कार्यालय— नया गंज गाजियाबाद (उ०प्र०)

शाखा—मुरसान दरवाजा समीप नया मिल, हाथरस (उ०प्र०)

१९६०

मुद्रक :—
रामा-कृष्णा प्रिंटिंग प्रेस, रामा-कृष्णा कालोनी, जी०टी० रोड,
गाजियाबाद, मेरठ (उ०प्र०)

प्रथम संस्करण
मूल्य— ६ रुपये ।

स्वर्गीय प्रपितामह श्रीमान् पं० रामलाल झा

स्मृति-शृङ्खला

'द्वितीय-पुष्प'

स्वर्गीया मां की

पुण्य स्मृति में

प्रस्तावना

एक दिन की बात है, श्री १००८ श्री गुरु पिता जी महाराज, संस्थापक–महानन्द मिशन हरिजन कालिज, ग़ाज़ियाबाद ने मुझसे प्रश्न कर दिया–"कला शब्द किस धातु से व्युत्पन्न है ?" मैं तत्काल इसका उत्तर न दे सका। मुझे विस्मय भी हुआ कि इस शब्द का धातुगत अभिप्राय भी है। मैं अब तक नहीं जान सका हूँ। कौतूहल वश मैंने पुस्तकालय में जाकर 'मोनियर-विलियम्स' का प्रसिद्ध संस्कृत कोष देखा। वहाँ शब्द की व्युत्पत्ति 'संदिग्ध' बताई गई थी। कौतूहल और भी बढ़ा। फिर कुछ संस्कृतज्ञ मित्रों और श्री गुरु पिता जी महाराज की कृपा से ही यह ज्ञात हुआ कि 'कला' शब्द 'कल' धातु से ही व्युत्पन्न है कला (कल+अच+टाप) 'हला युध कोश'। इस प्रकार इसका मूल धातुगत अर्थ मोनियर विलियम्स के अनुसार 'गणना करना' अथवा 'रचना करना' स्थिर हुआ।–आज 'कला' शब्द हमारे बौद्धिक–सांस्कृतिक जीवन में सर्वत्र परिव्याप्त है।

इधर जब से उच्च कक्षाओं में शिक्षा का माध्यम हिन्दी बनी है, तब से कला सम्बन्धी पुस्तकों का इसमें नितान्त अभाव अनुभव किया गया है। अंग्रेज़ी भाषा में कला के तत्वों और दर्शन का विवेचन करने वाली अनेकानेक गम्भीर पुस्तकें उपलब्ध हैं जो पारंगत विद्वानों द्वारा लिखी गई हैं। किन्तु हिन्दी पाठकों अथवा अंग्रेज़ी का अत्यन्त साधारण ज्ञान रखने वालों के लिए वे गम्भीर विशाल ग्रन्थ पूर्णतः दुर्बोध हैं। इस बात का विचार करके

ओर उच्चतर कक्षाओं के छात्रों की कठिनाइयों का ध्यान रखकर इस गूढ़ विषय को सरल सुबोध हिन्दी में प्रस्तुत करने का उपक्रम मैंने किया है। पुस्तकों के प्रणयन में जिन मनोषो कला समीक्षकों की कृतियों का उपयोग किया गया है मैं उन सबके प्रति श्रद्धावनत हूँ। उनकी पुस्तकों का उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है। मूल प्रेरक स्रोत के रूप में श्री गुरु पिता जी महाराज के आशीर्वाद के अतिरिक्त श्रीमती रमावती भटनागर, व्यवस्थापिका महानन्द मिशन हरिजन कालिज और प्रिंसिपल श्री ब्रह्म स्वरूप माथुर द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहन ने कितना कार्य किया है, इसका मूल्य आँकना मेरे लिए सम्भव नहीं। सहयोगी मित्रों में डा० श्री जयचन्द राय, डा० श्री हरीश शर्मा, प्रो० श्री एल० बी० राम एवं श्री शिवलाल शर्मा आदि मेरे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने पुस्तक की साज-सज्जा का भार संभालकर पुस्तक का यह रूप लाने में मुझे सहयोग दिया।

यदि इस पुस्तक को पढ़कर पाठकों का चंचु प्रवेश कला के तत्व और दर्शन जैसे गूढ़ विषयों में हो सका तो मैं अपने परिश्रम को पुरस्कृत समझूंगा।

अन्त में इस गम्भीर विषय पर लेखनी चलाने के धृष्टता–रूप अपराध के मार्जनार्थ महाकवि कालिदास के शब्दों में इतना ही निवेदन कर सकता हूँ:—

तितीर्षु दुस्तरं मन्ये उडुयेनास्मि सागरम्।

-चिरंजी लाल झा

महानन्द मिशन हरिजन कालिज,
गाजियाबाद, २६ जनवरी, १९६०।
माघ कृष्णा तृयोदशी सं० २०१६

विषय-सूची

चित्र-सूची

कला के दार्शनिक तत्व

अध्याय प्रथम

"कला में मानव-जीवन का प्रकाशन"

कला मानव की चिरसंगिनी है। मानव के विकास से कला का विकास हुआ है। कभी यह विचार करें कि कला ने मानव जीवन के लिए क्या किया है तो ऐसा विदित होता है कि कला के क्षेत्र में अपार कोष है और उसके प्रत्यक्षीकरण में विविधता है। कला की क्या परिभाषा हो सकती है जिसके अंतर्गत गोस्वामी जी की रामायण, प्रेमचन्द का 'गोदान', वर्नस के गीत, चोपिन का संगीत, नौव कवि की कविता, एंड्रयिाडेल सारटो के भित्तिचित्र अथवा अजन्ता की गुफायें सम्मलित की जा सकती हैं। ऐसा कोई सिद्धान्त किस प्रकार निश्चित किया जाय जिससे कला की परिभाषा के अंतंगत ये सब कृतियाँ स्थान पा सकें। समस्या असाधारण है, परन्तु इन सब प्रकार की कलाओं के लिये एक ही बात अधिक बल पूर्वक कही जा सकती है और वह है हमारी परम्परागत धारणा। इन सबके अंतर्गत ऐसी भावना अवश्य निहित

है जो मानव की हृतंत्री को जागृत कर देती है। मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित कर लेती है।

कला की इस विशालता को देखने के लिए हमको किसी कला कृति को लेकर विचार करना पड़ेगा। उदाहरण के लिए वैदिक साहित्य की ऊषा की स्तुति को लीजिए।

ऊषा नवयुवती की भांति हम सबको प्रकाशमान करती है। प्रत्येक प्राणी को जगा कर कार्य पर जाने का आदेश करती है। मनुष्य अग्नि को प्रज्वलित करता है परन्तु वह अग्नि अंधकार को नष्ट करके ऊषा ही लाई है।

वह उठकर चारों ओर फैलती है। प्रत्येक को गति प्रदान करती है। वह भड़कीले वस्त्रों के साथ प्रकाश के साथ बढ़ती है। यह प्रातःकाल के बादलों की जननी है। उसने स्वर्णमय रंग को प्रदान किया है।

ऊषा ही सूर्य के स्वच्छ घोड़ों को मार्ग प्रदर्शित करती है। दिन का आगमन उसी के द्वारा होता है। ऐसी ऊषा को आवाहन करते हुए ऋषियों ने इस प्रकार सम्बोधन किया है।

हे ऊषा—तू हमारे लिए ईश्वर प्रदत्त अनुग्रह है। तू सदैव हमारे साथ है। हमको शत्रुता से दूर रख, हमारे हरे-भरे मैदानों को विशाल और पुष्पित पल्लवित बना, हमको कुशल क्षेम प्रदान कर। घृणा करने वालों को दूर कर। समृद्धिशालिता दे। धन धान्य से पूरित कर।

अपनी प्रकाशमान किरणों में चमक, हमारे जीवन को दीर्घ बना, हे ऊषा तू सबकी प्रेम पात्र हो, तू हमको भोजन देती है। गाय, घोड़े, रथ आदि की हमको सम्पत्ति प्रदान करती है।

एफ. एम. म्यूलर के संस्कृत साहित्य के इतिहास के आधार पर।

इस कविता से हमको अनोखेपन का बोध होता है। ऊषा के सम्बन्ध में भारतीय धारणा तो यह अवश्य है कि यह एक देवी का स्वरूप है परन्तु अन्य धर्मावलम्वी इसको इस रुप में स्वीकार नहीं करते। वास्तव में ऊषा से उनका साधारणतया साक्षात्कार भी नही होता अतः वे इससे अपने को दूर समझते हैं परन्तु जब कभी ऊषा के सम्बन्ध में कोई कविता आदि पढ़ते है तो ऐसा अनुभव करते हैं मानों वे ऊषा के अधिक निकट हैं। ऊषा के चित्र से मनुष्य का चित्त प्रसन्न होता है। रोजाना बिना आवाहन किये ऊषा हमको क्षितिज पर दिखाई देती है। प्राणी का रोम २ प्रफुल्लित हो जाता है। अंगीठी की आग को स्त्री अथवा पुरुष जलाता है परन्तु प्रातःकाल की ऊषा किरण प्रत्येक हृदय में उल्लास तथा स्फूर्ति का संचार करती है। प्रत्येक प्राणी की सुप्तावस्था को दूर करके उसमें उत्साह और नव उमंग का संचार करती है। उसकी ओर देखकर हृदय की जो गति होती है वह शब्दों में वर्णन नहीं की जा सकती।

उत्साहमयी स्फूर्ति जिस भावना के द्वारा जागृत होती है वह कला है। प्रकृति का स्पष्टीकरण, मानव जीवन के हर पहलू का प्रत्यक्षीकरण जिस माध्यम के द्वारा होता है वही कला है। कला मानव की जीवन संगिनी है। कला की कृतियाँ भिन्न भिन्न युगों में रची गई हैं। कलाकार ने तूलिका, छेनी, लेखनी आदि से कला की भिन्न भिन्न प्रकार की कृतियों को जन्म दिया है सब में कला का एकीकरण मिलता है। भिन्न भिन्न समय की रचना होने पर भी कला में एक रूपता है। इस प्रकार कला मानव जीवन के किसी पहलू को व्यक्त करने का साधन है।

प्रत्येक ललित कला के विकास तथा जन्म में कोई ऐतिहासिक भावना है। भारत में कला का सम्बन्ध धर्म से है। इसी प्रकार ग्रीक संसार में भी कला पूजा का एक साधन था। भिन्न भिन्न ललित कलाओं में कलाकारों ने भिन्न भिन्न प्रकार की कला कृतियों का निर्माण किया है। एक दूसरे से

अपरिचित होने पर भी सभी कलाकारों ने एक ही मार्ग की ओर संकेत किया है ।

भारत में कलाकार को अपने आपको अप्रत्यक्ष रखने की भावना बड़ी बलवती रही है । राजपूत काल में कुछ कलाकारों के नाम जान पाते हैं मध्य युग में भी कुछ साहित्य के सृजन से कुछ चित्रकारों का परिचय मिलता है । अतः अज्ञात सेवा में दूर दर्शिता की महान भावना है । जिन चित्रकारों ने अजन्ता की गुफाओं का निर्माण किया वे यद्यपि भवभूति, चन्दबरदाई, तुलसी और सूर के कुल के न थे परन्तु उनका भ्रातृ भाव बड़ा गहरा है । इसमें सार्वभौमिकता की अडिग भावना है । मूर्ति और चित्रकला में जो कार्य माइकल एंजिलो का है संगीत में वही विथोविन का है । परन्तु तानसेन का उससे कम नहीं है । एक दूसरे से क्षेत्र में तथा माध्यम में भिन्न होने पर भी भावना में अति समीप हैं । अगर हम सोफोकिल की कविता, रैफल की चित्र रचना और मौजर्ट के संगीत पर विचार करें तो एक दूसरे के कितने निकट प्रतीत होते हैं यद्यपि इनके रचना काल में बड़ा अन्तर है । इन्होंने असीम को सीमा में लाने का अकथ प्रयत्न किया है । इन कलाकारों ने अपनी लेखनी, तूलिका अथवा वाद्य के द्वारा कला को अधिकाधिक पूर्ण करने का प्रयत्न किया है । इनका प्रयत्न सत्यं, शिवं, सुन्दरं की ओर अधिकाधिक परिपक्व है । ये उकसाते कम हैं विश्राम अधिक देते हैं । उच्च शक्ति के अनियमित प्रयासों की अपेक्षा पूर्ण सौन्दर्य से सन्तुष्टि प्रदान करते हैं । अपनी आश्चर्य्य चकित कर देने वाली प्राविधिक (Technical) प्रवीणता के द्वारा इन्होंने उन कला की कृतियों को जन्म दिया है जिनकी लय संतुलित है । वे व्यक्तिगत रूप से कला की सार्वभौमिक भावना को प्रत्यक्ष करते हैं । पाठक तथा दर्शक इनकी महान कृति में किसी गम्भीर विचार को टटोलते हैं ।

कला की समस्त महान कृतियों में एक भावना ही निहित रहती है । कलाकार कितना भी दूर अथवा समीप हो इसका कोई भेदभाव नहीं । यह

भावना कला में निहित मानव अनुभव को बड़ा स्पष्ट करती है। एक व्यक्ति दूसरे के समान है। कारण, जीवन कुछ साधारण और सामान्य तत्वों द्वारा रचा गया है। जिस प्रकार भौतिक जीवन की रचना के लिए पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश आदि के साथ स्वच्छ वायु, प्रकाश, शक्ति वर्द्धक भोजन, व्यायाम आदि आवश्यक हैं उसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन के लिए प्रेम, कार्य, सत्य की तीव्र खोज, सुन्दरता का मूल्यांकन तथा आदर्श की चाह अत्यावश्यक है। संसार के साहित्य में नाटक और उपन्यास दो अथवा तीन समस्याओं को लेकर रचे गये हैं। व्यक्तिगत प्रेम, इन सब में अधिकाधिक स्थान लिए हुए है। कला की प्रत्येक कृति में साधारण अनुभव का मेल छिपा है। जब कला की कृति में प्रकृति का प्रतिरूप चित्रित होता है उसमें भी मनुष्य का वास्तविकता से प्रेम और कलात्मक आकृति छिपी रहती है। सामाजिक और धार्मिक समस्यायें विशाल देश में सदैव प्रमुखता रखती रहीं।

समस्त कला चाहे वह ललित हो अथवा उपयोगी धर्म और प्रयोग की भावना से ओतप्रोत रही। भारत में कला धर्म प्रधान है कारण देश भी धर्म प्रधान है। एडवर्ड होवर्ड ग्रिगस के अनुसार ग्रीक की दुनिया भी आरम्भ में धर्म में विशेष आस्था रखती थी। अतः ग्रीक की कला भी धर्म-प्रधान है। तत्कालीन ग्रीक चित्रों अथवा मूर्तियों को देखें तो सब में धर्म की भावना निहित है।

कला में सदैव मनुष्य का अनुभव एक सीमित आकृति में प्रदर्शित होता है। हर बार कलाकार एक नवीन भावना को व्यक्त करता है। इस प्रकार कलाकार एक सीमित भावना को लक्षित करता है। सीमा देवी की वेदी पर कलाकार नत मस्तक होता है। उसकी ही आराधना करता है। सीमा कलाकार का निश्चित क्षेत्र है। वह इसी सीमा के आधार पर असीम को व्यक्त करता है। बिना सीमा को व्यक्त किये वह असीम को चित्रित नहीं कर सकता। पूरी कथा में से कलाकार एक प्रमुख भाव को चित्रित करता

है जिसका फल यह होता है कि उस भाव को व्यक्त करके पूर्ण कथा से परिचय करा देता है। कलाकार कोई ऐसी वस्तु अथवा भावना व्यक्त अथवा चित्रित नहीं कर सकता जिसकी परिभाषा न की जा सके। कला जितनी सीमित होगी उतनी पूर्ण समझी जावेगी। अनिश्चित चिन्ता की लहर और भावना एक सीमित क्षेत्र में चित्रित होकर ही कला कृति का रूप पाती है।

एक ही भाव को भिन्न भिन्न चित्रकारों ने अपनी बुद्धि के अनुसार भिन्न भिन्न कालों में व्यक्त किया है। सब की अपनी विशेषता है। जिस रामकथा को ऋषि बालमीक ने वर्णन किया उसी को गोस्वामी तुलसीदास तथा महाकवि केशव और वर्तमान में साकेत के रूप में मैथिलिशरण गुप्त ने, परन्तु विषय एक ही होने पर भाव को भिन्न भिन्न प्रकार से व्यक्त किया है। योरुप में मैडोना को करीब करीब सभी चित्रकारों ने चित्रित किया है परन्तु लिनारडो डिविन्सी की मैंडोना अपनी विशेषता के लिए विख्यात है। इससे स्पष्ट है कि कलाकार का एक व्यक्तित्व होता है। प्रोफेसर लेन्टेरी के अनुसार व्यक्तित्व ही कलाकार का निर्माण करता है। बौद्ध-काल में महात्मा बुद्ध की बड़ी बड़ी विशाल और भव्य मूर्तियों की रचना हुई है। परन्तु एक मूर्ति दूसरे से भिन्न है। यह भिन्नता ही कलाकार का अस्तित्व है। मातृ शक्ति महान है। यह शक्ति महान और अनुपम सौन्दर्य की दात्री है। इसी अनुपम सौन्दर्य से कला का जन्म हुआ है। कीटस के शब्दों में सुन्दरता की वस्तु सदैव आनन्द दायिनी है। इसी प्रकार प्रत्येक कला की कृति से भी अपार आनन्द प्राप्त होता है। क्योंकि कला जीवन के किसी पक्ष का चित्र उपस्थित करती है।

काव्य ललित कला का एक अंग है। कवि भी कलाकार है। उसका महत्त्व भी उतना ही है जितना मूर्तिकार, चित्रकार और संगीतज्ञ आदि का है। कवि शब्दों के सुन्दर चयन के द्वारा जनता को आत्म विभोर कर देता है।

वैसा ही तूलिका और छेनी के द्वारा भी होता है। चित्र और मूर्ति के समक्ष दर्शक आत्म विभोर हो जाता है। अपने को भूल जाता है यहाँ श्री माखन-लाल चतुर्वेदी के एक भाव को व्यक्त करके कला की सार्थकता को स्पष्ट किया जा रहा है। 'एक फूल की चाह में' कवि ने जो भाव व्यक्त किये हैं वे अपनी एक विशेषता रखते हैं। एक फूल कहता है कि:—

चाह नहीं है सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ।
चाह नहीं प्रेमी माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ॥
चाह नहीं देवों के सर पर चढ़ा भाग्य पर इठलाऊँ।
चाह नहीं सम्राटों के सिर पर हे हरि डाला जाऊँ॥
मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ पर देना तुम फेंक।
मातृ भूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथजाते वीर अनेक॥

समस्त साँसारिक वैभव को त्याग कर देश प्रेम की उच्च भावना को प्रमुखता दी है। समस्त भावनाओं को देशप्रेम के मतवालों की चरणरज बनने की भावना में केंद्रीभूत कर दिया है।

श्री देवी प्रसाद राय चौधरी की मूर्तियाँ भी अद्भुत रूप से प्रभावित करती हैं। सात व्यक्ति अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर एक भारी वजन को उठा रहे हैं वह उठता नही है। इस दृश्य में शरीर की मांस पेशियां कैसी स्पष्ट दिखाई गई हैं यह कहने से समझ में नहीं आ सकता। तात्पर्य यह है कि कलाकार किसी एक साँसारिक भावना को लेकर दर्शक को कितना आत्म विभोर कर देता है। इस प्रकार कलाकार अपनी कृति में किसी सार्व भौमिक भाव को अपने व्यक्तित्व के द्वारा एक परिमित माध्यम में व्यक्त करता है।

सब कलाओं में एक प्रकाशन होता है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सब प्रकाशन कला होते हैं। कला के लिये यह आवश्यक है कि

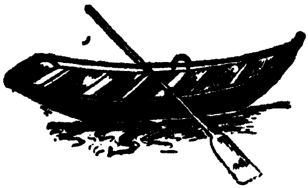
प्रकाशन में पर्य्याप्तता और अनुरूपता हो, इसका मतलब यह नहीं है कि कला इद्रियों को तृप्त करने वाली हो। बल्कि यही एक धारणा अधिक बलवती होनी चाहिये कि प्रत्येक कलाकृति में प्रकाशन का शरीर अर्थ की आत्मा से संबद्ध हो। उदासीनता कभी इंद्रियों को रुचिकर नहीं होती। माइकिल एंजिलों ने जो झुकी हुई आकृतियाँ मैंडोमियन समाधि पर बनाई हैं वे कितनी सजीव और गति पूर्ण हैं। भारतीय भावना के अनुसार कब्रिस्थान अथवा श्मशान में कोई जाना पसंद नहीं करता। सम्राट शाहजहां द्वारा बनवाये ताजमहल को आगरे जाने वाला बड़े से बड़ा और छोटे से छोटा यात्री बड़े चाव से देखने जाता है। रात्रि और दिन का भेद भाव ही नहीं हैं। डर का स्थान तो है ही नहीं उसकी विशालता को देखकर विभोर हो जाता है।

कलाकार जिस भावना को व्यक्त करता है यदि दर्शक उसका वैसे ही अनुभव कर लेता है तो कलाकृति की सार्थकता हो जाती है। प्रकाशन के शरीर का भाव की आत्मा से प्रगाढ़ मेल होता है। कला में भावना की उच्चता अत्यावश्यक है। सत्यं शिवं सुन्दरं के आदर्श को लेकर कला की रचना पूर्णता की ओर बढ़ेगी। यदि कला की कृति में चरित्रहीनता अथवा प्राकृतिक भयंकरता है तो कला में पूर्णता का आभास कम लक्षित होगा। कुछ कलाकार कुरूपता में ही कला का अनुभव करें परन्तु वह कला समझी जायगी कि नहीं यह एक प्रश्न है। एडवर्ड हौवर्ड ग्रिगस का विचार है कि इस प्रकार की कला में इतनी गहराइयाँ हैं और इस कृति में कलाकार द्वारा ऐसा पर्दा डाला गया होगा कि वह कला कृति अपुष्ट प्रतीत होगी। वास्तव में कला के द्वारा जो कुछ चित्रित होता है वह विषय के अनुकूल होना चाहिये। यदि यह बात चरितार्थ नहीं होती तो गोस्वामी तुलसीदास जी के इस भाव का ही व्यक्तीकरण होगा कि:—

श्याम गौर किमि कहंऊ वखानी
गिरा अनयन नयन विनु बानी

इस प्रकार की भावना को योरुप के एक कवि दांते (Dante) ने अपनी एक कविता इनफर्नो के सर्ग ३२ में व्यक्त किया है।

इन सबसे हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कला मनुष्य के जीवन के किसी एक पहलू का पर्याप्त और अनुरूप प्रकाशन हैं व्यक्तित्व का माध्यम इसमें प्रमुख है। कलाकार एक सीमित भावना को व्यक्त करके किसी असीम की ओर संकेत करता है।



● ●

अध्याय द्वितीय

"कला का प्राचीन उद्भव स्थान"

प्रत्येक कला का उद्गम स्थान प्राचीनतम इतिहास में ही मिलता है। कला के विकास में मानव का विकास एक विशेष स्थान रखता है। भारतीय कला तो धर्म प्रधान है ही पाश्चात्य कला के सम्बन्ध में भी यही धारणा अधिक प्रमाणित प्रतीत होती है : एडवर्ड हावर्ड ग्रिग्स के विचारानुसार ग्रीस की कला का जन्म धार्मिक पूजा अर्चना में ही हुआ। संगीत का जन्म भगवान की पूजा में भजन के गाने से हुआ। भजन के गाने में प्राणी ध्यानावस्थित हो जाता है। संगीत में विभोर होकर भक्त नाचने व झूमने लगता है। लयपूर्ण झूमना नृत्य के विकास में सहायक होता है। इस प्रकार संगीत और नृत्य अन्योन्याश्रित रुप से पुष्पित व पल्लवित होते हैं। व्याख्यात्मक नृत्य से ही मूर्तिकला का जन्म हुआ। मूर्ति को तूलिका द्वारा व्यक्त करने की भावना ने

ही चित्रकला को जन्म दिया है। संगीत और काव्य के द्वारा ही विज्ञान और दर्शन का जन्म हुआ। प्रत्येक कला की उत्पत्ति और विकास एक दूसरे से संबधित व व्यवस्थित रहा।

जो विकास का क्रम ग्रीक तथा यूरोप के अन्य देशों में रहा वही भारत में भी। भारत में कलायें ६४* प्रकार की होती हैं। भारत की समस्त कलायें धार्मिकता से ओत प्रोत हैं। इन सबका विकास भी एक एक दूसरे से श्रंखलावद्ध है। गृह निर्माण कला के अंतंगत सुन्दर मंदिरों का निर्माण हुआ। मूर्तिकला के अंतंगत उनमें मूर्ति स्थापना हुई। चित्रकला ने उन भवनों तथा मूर्तियों को सुसज्जित किया। रंगों द्वारा भिन्न२ प्रकार के आलेखनों से स्थान को भव्यता प्रदान की गई। संगीत तथा काव्य के द्वारा पूजा अर्चना का कार्य पूर्ण हुआ। आज भी इन सब कलाओं का पूजा विधि में प्रमुख स्थान है। यूरोप के विजेन्टाइन स्कूल की चित्रकला का वही स्थान है जो भारत में बौद्ध चित्रकला का रहा है। कला इस युग में धार्मिक प्रतीक थी। अजन्ता की गुफाओं से जो बौद्ध धर्म का उपदेश मिलता है करीब२ वैसा ही विजेन्टाइन स्कूल के चित्रों द्वारा धर्म के उपदेश प्राप्त होते है।

प्राचीन काल में जीवन का धर्म से गहरा सम्बन्ध था। धर्म जीवन में बिंधा हुआ था। जीवन का वास्तविक अंग ही धर्म था। तत्कालीन समाज में प्रायः एक ही वर्ण तथा धर्म के मानने वाले लोग थे। धार्मिक प्रेरणा के कारण प्राचीन कला धार्मिक तो थी ही साथ२ उतनी ही गम्भीरता लिये हुए थी। मनुष्य के अस्तित्व के सार्वभौमिक प्रश्न से इसका बड़ा सम्बंध था। साथ२ इसमें व्यापकता और ऐक्य था जो बाद की कला में धीरे२ लुप्त होता चला गया। चेतन कला के जन्म के पूर्व कल्पना तथा विचारों का तत्कालीन समाज के पास बड़ा संग्रह था। यह संग्रह दो सार्वभौमिक पहलुओं से निकला था जो मानव और प्रकृति कह कर पुकारा जाता हैं। पौराणिक कथाओं का जन्म हुआ। यह कथायें दादा दादी ने अपने नाती बेटों को सुनाई। भाट

*कामसूत्र वात्स्यायन। चित्रकला के छः अङ्ग। प्रो० चिरंजी लाल झा

चारणों ने बड़े२ सम्राटों के दरबार में सुनाई । समय२ पर इनमें संशोधन किया गया । आज तक ये सब कथायें प्राचीन जीवन का परिष्कृत रूप इसी प्रकार प्रगट करती रहीं । जिस माध्यम द्वारा यह व्यक्त हुआ वह लोक कला कही गई ।

कला दो प्रकार की मानी जाती है एक चेतन दूसरी अचेतन । आरम्भ में समाज में कला अचेतन थी । इस कला का वही स्वरूप था जो आज शिशु अथवा बालक की कला का है । आरम्भ में बालक पेंसिल से अथवा खरिया से कुछ अंकित करता है । वह क्या है । कौन समझ सकता है । यह स्वतंत्र भाव प्रकाशन की एक विधि है ।

चेतन कला के जन्म के पूर्व लोक प्रिय विचारों का बड़ा संग्रह रहा होगा । ये लोक प्रिय विचार मानव और प्रकृति के अस्तित्व से उत्पन्न हुये होंगे । प्राचीनकाल में मनुष्य की बुद्धि बड़ी तीव्र थी । वह हर एक बात को स्मरण कर लेता था मैक्स म्यूलर ने "भारतर्ष—यह क्या सिखा सकता है" में लिखा है कि प्राचीन काल में ही नही अब भी भारतवर्ष में हज़ारो ब्राह्मण हैं जिनको ऋगवेद कंठस्थ है और ऋगवेद ही क्या और बहुत से ग्रंथ भी इसी प्रकार कण्ठस्थ हैं । प्राचीन समय में लोगां की बुद्धि बड़ी तीव्र थी और बिना किसी प्रकाशित और मुद्रित पुस्तक की सहायता के तत्कालीन भारतीय हर एक बात को कण्ठस्थ कर लेते थे । इस प्रकार मनुष्य का मस्तिष्क प्राचीन कलाकार के लिए वह पट्टी थी जिस पर वह अपने विचार व्यक्त करता था । यही कारण है कि उसकी कला एक प्रकार की न रही और सदैव परिवर्तित होती रही । प्राचीन समय के लोगों ने परम्परागत कथाओं को धार्मिक दृष्टि से देखा । समाज के विकास से उनमें परिवर्तन हुआ और वे अधिकाधिक परिष्कृत होती गई । उदाहरण के लिए हम आर्य तथा यहूदी समाज की तुलना करें तो एक दूसरे में अपार अन्तर मिलेगा । आर्य देहात में रहकर खेती के द्वारा जीविका कमाते थे । खेती में प्रकृति की सहायता अत्यावश्यक है अतः उन्होंने इंद्र, वरुण, सूर्य चंद्र अग्नि आदि को देवता का स्वरूप दिया ।

इनकी अपार शक्ति का प्रदर्शन किया और विशाल साहित्य की रचना की। आर्यों की पौराणिक कथाओं में इन देवताओं का विशेष स्थान है। इन्हीं की मूर्ति इन्हीं के चित्रों की रचना हमारी कला की आधार रही। इन देवताओं के जीवन का प्रभाव मानव जीवन पर पड़ा। आकाश का वर्षा के द्वारा पृथ्वी से संयोग हुआ। सूर्य्य का रथ आकाश में दौड़ता रहा। ऊषा का आगमन सूर्य्य की महती कृपा का फल रहा। आर्य इस प्रकार प्रकृति की सब वस्तुओं को देवी देवता के स्वरूप में पूजा करने लगे। आरम्भ में पौराणिक कथा का यह स्वरूप भिन्न२ रूपों में विकसित हुआ। जीवन के नवीन रूप के साथ प्रकृति का नवीन रूप हुआ। इसी में से एक जाति फ़ारस चली गई जहाँ प्रत्येक वात ही उल्टी हो गई। दिन और रात्रि में प्रकाश और अंधकार में द्वैतवाद का स्वरूप बन गया। ओरमज्द (**Ormuzd**) प्रकाश के देवता का अंधकार की शक्ति अहरीमन (**Ahriman**) द्वारा विरोध होने लगा।

इस समुदाय की एक शाखा ग्रीस के सुंदर प्रायद्वीप में पहुंच गई जहाँ चारों तरफ पहाड़, समुद्र आदि पाये जाते हैं। प्रत्येक घाटी की अपनी विशेषता है। लालीपूर्ण स्वच्छ आकाश दृश्य को अधिक सुंदर वना रहा था। प्रत्येक नदी, पर्वत, गुहा और बन की अपनी विशेषता थी। ऐसा प्रतीत होता था मानों ये सब दैवी शक्ति ओलमपस पर विश्वदेव के साथ एकत्रित हों।

इस समुदाय की एक दूसरी शाखा योरुप के उत्तरी किनारे की ओर निवास करने लगी। इस भाग को आजकल डैनमार्क, नौरवे, स्वीडन, कहते हैं। यहां का जीवन सदैव संघर्ष पूर्ण रहा। बिध्वंसात्मक शक्ति के साथ सदैव विरोध रहा। असीम जगंल, उसके जंगली पशु, बर्फ और ठंडक के राक्षस अग्नि को नष्ट करनेवाले पशुओं की संख्या शनैः२ वढ़ती जाती थी। इस प्रकार यहाँ भी द्वैतवाद का ज़ोर चला इसमें मनुष्य की शक्ति और बुद्धि में संघर्ष हुआ। वहाँ के देवता ओडिन, थोर, वालडेर, फ्रेया आदि देवताओं का उत्तर के बर्फ़ के देवता जौटन, फैनरिस भेड़िया, मिड गार्ड नामक सांप, लोकी और अग्नि के राक्षस आदि से बड़ा संघर्ष रहा।

श्याम देश के निवासियों का एक समुदाय रहा जिनका जीवन बंजारों की तरह का था। वे भेड़ बकरियों के झुंड पर अधारित रहते थे। जब घाटियाँ सूख जाती थीं तो पहाड़ों पर चढ़ जाते थे। कमजोरों पर अपना अधिकार जमा लेते थे। जो विरुद्ध पड़ता था उसका साहस के साथ मुकाबिला करते थे, और अपना अधिकार जमा लेते थे।

अन्य समुदायों की भांति इनकी भी पौराणिक कथायें थी जो प्रकृति की अपेक्षा मानव अस्तित्व पर अधिक आधारित थीं। अपने पूर्वजों की पूजा करते थे उन्हीं को सब कुछ मानते थे, इस प्रकार इन लोगों का धर्म, प्रकृति पर अधिक आधारित न हुआ बल्कि इन्होंने मानव शक्ति न्याय दयालुता और प्रेम पर अधिक बल दिया। इनकी पौराणिक कथायें मनुष्य की गति विधि के इतिहास, उनके वीरता के कार्य, कष्ट सहने के साहस और सामाजिक विजय पर आधारित हैं।

विश्व की समस्त प्राचीन कला में दो विषयों का ही प्रतिपादन किया है जिनको ऊपर वर्णन किया जा चुका है। मानव के उत्थान की समस्त शक्ति दो बातों पर ही आधारित है—एक मनुष्य का कार्य और प्रकृति की प्रतिक्रिया। मनुष्य और प्रकृति का मेल ही ईश्वर की भावना उत्पन्न करता है। इस प्रकार मनुष्य की गति-विधि और प्रकृति की प्रतिक्रिया में गम्भीरता और सार्वभौमिकता के दर्शन होते हैं। यही कला को भी जन्म देने वाली है।

व्यवहार की चेतनता प्राचीन कला में उतना ही महत्व रखती है जितना सार्वभौमिकता का है।

प्राचीन काल के कलाकार को उदारता और जन-हित का बड़ा ध्यान रहा है। काव्य में जहां कहीं भी विरह अथवा प्रकृति का वर्णन है सार्व भौमिकता का पुट है। काव्य को पढ़कर एकाँगीपन नहीं लक्षित होता है। जहां तक हो सका है प्रकृति का यथार्थ चित्रण है। उसके साथ सार्वजनीन उपदेश हैं। बाल्मकि रामायण में भगवान राम सीता के विरह में दुखी हैं।

महाकवि के विरह वर्णन से मानव भावनाओं की सार्वभौमिकता तथा साधारण विषय की महानता का बोध होता है। कैसा काव्य सौंदर्य है और पात्रो में कितनी चारित्रकता है। बाल्मीक रामायण के किष्किन्धा कांड में वर्णित वर्षा के सुन्दर वर्णन से यह स्पष्ट है कि तत्कालीन कलाकार सार्वभौमिक भावना में विश्वास करता था।

रजः प्रशान्तं सहिमोऽद्य वायु—
निदाघ दोष प्रसरा प्रशान्ताः
स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानां
प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान्

वर्षा होने के कारण धूल का उठना बन्द हो गया है। शीतल पवन चलने लगा। ग्रीष्म काल के समस्त दोष दूर हो गये। राजाओं की अन्य देशों पर चढ़ाई रुक गई। विदेशी लोग अपने अपने देशों को जाने लगे।

क्वचित्प्रकाशं क्वचिद प्रकाशं,
नभः प्रकीर्णाम्बुधरं विभाति।
क्वचित्क्वचित्पर्वत — संनिरुद्धं,
रूपं यथा शान्त महार्णवस्य॥

इस समय आकाश में कहीं प्रकाश देख पड़ता है कहीं नहीं है। कारण आकाश मण्डल में मेघ छाये हुए हैं और कहीं वह पर्वतों से संरुद्ध हो रहा है। अतः तरंग हीन महासागर को तरह शोभायमान है।

विद्युत्पताकाः सबलाक मालाः,
शैलेन्द्र कूटा कृति सन्नि काशाः।
गर्जन्ति मेघाः समुदीर्ण नादा,
मत्ता गजेन्द्रा इव सं युगस्थाः॥

बिजली रूपी पताका से शोभित और बगुलों की पक्ति रूपी माला पहिने हुए शैल शिखर समान डीलडौल के और भयंकर नाद करने वाले मेघ, रण में मतवाले हाथियों की तरह बड़ा नाद कर रहे हैं।

निद्रा शनैः केशव मभ्युपैति,
द्रुतं नदी सागर मभ्युपैति।
हृष्टा बलाका धनम भ्युपैति,
कान्ता सकामा प्रियम भ्युपैति,

इस वर्षा काल में धीरे धीरे निद्रा केशव के, नदियाँ द्रुत वेग से समुद्र के, वक पंक्ति हर्षित हो मेघ के, और कामिनी स्त्रियाँ अपने प्रीतम के पास जाती हैं।

शीघ्र वेगा विपुलाः प्रपाता,
निर्धौ तिशृङ्गापतला गिरीणाम्
मुक्ताकलापप्रतिमाः पतन्तो,
महा गुहोत्सङ्गतलैर्ध्रि—यन्ते

पर्वतों के बड़े वेग से बहने वाले झरने, पहाड़ों की चोटियों को धोते हुए बड़े वेग से गिरकर, बड़ी गुफाओं में मोतियों की ढेरी के समान शोभा दे रहे हैं।

इससे यह स्पष्ट है कि प्राचीन कला आचारिक सत्य पर आधारित है जिसका उद्गम जीवन की प्रतिक्रियाओं पर अनुभव किया जाता है। इसकी आकृति में कलात्मकता अपार है। प्राकृतिक स्वच्छन्दता है, जो बाद के कलाकारों में भी समान है। इस युग के कलाकार किस अनजान में आकृतियों की रचना और उनकी पुनरावृत्ति करते थे कि प्रत्येक आकृति से एक सार्वभौमिक भाव का ज्ञान होता है!

प्रत्येक मनुष्य के मन में हर समय कोई न कोई भाव उठता रहता है। उसका मन एक क्षण भी मौन नहीं रहता। बालक युवा वृद्ध सबके साथ यह अनिवार्यता रहती है। मैथिली शरण गुप्त की पंक्ति है:—

कोई पास न रहने पर भी जन मन मौन नहीं रहता।
आप आपसे कहता है वह आप आपकी है सुनता॥

अबोध बालक अपने भावों को व्यक्त नहीं कर पाता। वह कुछ कहना चाहता है परन्तु कौन उसकी समझे, यह एक समस्या रहती है। कभी स्लेट अथवा पेंसिल उसके हाथ लग जाता है तो वह उलटी सीधी लकीरें खींच देता है, परन्तु उन सब में एक भाव होता है जो स्वाभाविक होता है। इस में बालक के विचारों का पूर्ण पुट रहता है। इस प्रकार कला के सब गुण प्राचीन कला में विद्यमान हैं। ई० एच० ग्रिग्र ने स्पष्ट कहा है कि स्कैन्डेनेविया के साहित्य तथा अन्य देशों के साहित्य और कला में यह स्पष्ट रूप से देखा जाता है कि प्राचीन कला समाज की उन परम्परागत पौराणिक कथाओं पर आधारित है जो शताब्दियों से प्रचलित हैं। देश की सभ्यता में कला का प्रमुख स्थान है। ग्रीस की पौराणिक कथाओं पर उत्तम प्रकार की मूर्तियाँ, एलिजाबेथ के समय की कविता और पुनरुत्थान काल की चित्रकला आधारित है। योरुप निवासी इन्हीं को अपनी परम्परा मानते हैं। इटली की चित्रकला और अंग्रेज़ी कविता में ईसाई तथा यहूदी पौराणिक कथाओं की अपार सम्पत्ति है। प्राचीन काल की कला में सर्वत्र पौराणिक पुट हैं उसकी रीढ़ धर्म है। भारत की प्राचीन कला में बौद्ध तथा भारतीय पौराणिक कथाओं का पुट पाया जाता है। बाल्मीकि रामायण में भगवान राम के जीवन की झाँकी है। श्रीमद्भागवत में भगवान कृष्ण के जीवन का परिचय है। होमर के ईलियड की कथा रामायण की कथा से मिलती जुलती है। अतः प्राचीन कला में ललित और उपयोगी कला का भेद न होने पर भी

दोनों की अलग अलग विशेषता है। भारत की ६४ कलायें प्रसिद्ध हैं। इन सब कलाओं में सामाजिक जीवन का पुट है, प्राणी को सांसारिक पूर्णता की ओर अग्रसर करने की भावना है।

प्राचीन कलाकार ने समाज के समक्ष आनन्द-पक्ष को ही प्रदर्शित किया। महाकवि कालिदास इसके प्रमाण हैं। महाकवि कालिदास का रघुवंश सार्वभौमिक पक्ष का पोषक है आपके काव्य से सबको समान आनन्द प्राप्त होगा। कला की रचना में कलाकार की धार्मिक प्रवृत्ति के कारण ही विषय सार्वभौमिक हुआ है। अतः कलाकार ने आनन्द-पक्ष ही प्रदर्शित किया। क्या इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय संसार में दुख न था? अवश्य रहा होगा। परन्तु कवि की यह महानता है कि उस पक्ष की झलक मिलती ही नहीं। अतः यह पक्ष राम राज्य के समान है। जिसमें दुःख किसी को व्यापा ही नहीं। इस सम्बन्ध में महाकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर ने बंगला में इस प्रकार अपने विचार व्यक्त किये हैं।

जीवन-मंथन-विष निजे करि पान।
अमृत जा उठि छिलो, करिगेलो दान॥

जीवन के मंथन से अमृत और विष दोनों ही उत्पन्न हुए। किन्तु महाकवि कालीदास स्वयं शिव की भाँति विष पान कर गये। अवशिष्ट अमृत ही लोक को समर्पित किया। महाकवि कालिदास के काव्य को आद्योपान्त पढ़ने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके काव्य में क्लेश की झलक किञ्चित् मात्र भी नहीं है। जीवन के सुख का ही अनुभव महाकवि ने संसार के प्राणियों के लिए छोड़ दिया है। यह काव्यगत विशेषता है। कितनी जनहित की भावना है। कितनी सार्वभौमिकता है।

अध्याय तृतीय

"एशिया में कला के सिद्धान्त"

एक समय था जब यूरोप और एशिया एक दूसरे से भली प्रकार परिचित थे। कला का आधार ही धर्म था वह समस्त विश्व में समान था। धीरे २ कुछ अज्ञात कारणों से कुछ परिवर्तन हुआ और यूरोप और एशिया बिलकुल अपरिचित हो गये। स्टैन और ली कोग की खोज के अनुसार खुतन सांस्कृतिक केंद्र था जहाँ समस्त विश्व की तत्कालीन सांस्कृतिक शक्तियां विचार विनमय के लिए एकत्रित हुआ करती थीं। बाद में किस प्रकार ऐसा हुआ कि बहुत समय तक एक देश दूसरे देश से अपरिचित हो गया, अभी तक खोज का विषय है। अब यूरोप की कला को तुलनात्मक रूप में जब कभी विचारा जाता है तो मालूम पड़ता है कि योरुप की कला दो प्रकार की मानी जाती है ईसाई और विद्यार्थी सम्बन्धी तथा पुनुरुत्थान के बाद का और व्यक्तिगत। ईसाई और विद्यार्थी सम्बंधी कला में विषय धार्मिक तथा ज्ञान वृद्धि के आधार

पर, प्रतिष्ठित है तथा उस में धर्म की भावना के प्रचार की तीव्र इच्छा बलवती है। पुनुरुत्थान के बाद की कला में विषय सामाजिक तथा व्यक्तिगत कला वादपूर्ण तथा धार्मिकता में कम महत्व देने वाली है। योरुप में अधिक जागृति तथा औपनिवेशिक भावना के अधिक बलवती होने के कारण एशिया से समीपता कम हो गई। अब गणित विद्या तथा विज्ञान के ज्ञान की अधिक वृद्धि साथ ही साथ कला में अनेकानेक प्रवृतियों के अपना स्थान पाने के कारण निकटता के चिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे हैं। एशिया की कला और विचार यूरोप में अपना एक विशेष स्थान पा चुके हैं अतः विश्व की शान्ति और सम्पन्नता के लिए यह बड़ा ही शुभ है। एशिया की कला को योरुप की कला के साथ उनके वास्तविक रूप का अध्ययन करते हुए साथ २ समझना आवश्यक है। इससे सैद्धान्तिक विवेचन में बड़ी सुगमता रहेगी।

इस बात को भली प्रकार समझने के लिए कि पश्चिमी कला और पूर्वी कला में कहाँ २ कैसा भेद है यह आवश्यक होगा कि मुसलमानी कला के सम्पर्क को भी जाना जाय। अरब के दार्शनिक तत्व के साथ यदि मुसलमानी कलात्मकता को समझने का प्रयत्न किया जाय तो हमको उनकी लेखन शैली, काव्य और संगीत की यथार्थता का ज्ञान भी आवश्यक होगा। मुसलमानी कला पूर्वी और पश्चिमी कला का मेल कराती है। जहाँ तक इसके मुख्य सिद्धान्तों की बात है वह मुख्य सिद्धान्त अधिकतर वही है जो अन्य देशों की कला में पाये जाते हैं। परन्तु भाष्यकारों के अर्थ लगाने में प्रायः भिन्नता पाई जाती है। प्राकृतिक चित्रण सब धर्मों की कला के लिये हृदय-ग्राही नहीं है।

एशिया के कला सिद्धान्तों का विवेचन करते समय यह आवश्यक है कि इस महाद्वीप में किन २ देशों में कलात्मक प्रगति हुई है, यह जाने। एशिया के प्रमुख देशों में कला का सैद्धान्तिक विवेचन विशेष रूप से भारत वर्ष और सुदूरपूर्व के देशों में अधिक हुआ। चीन में सैद्धान्तिक विवेचन चित्रकारों की कृतियों और उनके कथन पर आधारित है परन्तु भारतवर्ष का

सौन्दर्यात्मक और कलात्मक विवेचन भारतीय शास्त्र तथा सहानभूतिपूर्ण वाद विवाद पर आधारित है। चित्रकारों ने तो उन सिद्धान्तों का अनुकरण किया। सैद्धान्तिक विवेचन की दृष्टि से भारतवर्ष सर्वोच्च है। अलंकार-शास्त्र के ज्ञाता तथा दार्शनिकों ने सौन्दर्यात्मक सिद्धान्तों का गहन अध्ययन और विवेचन किया।

कला के लोकाचारी तत्व का आधार मानसिक गति-विधि है। इस सिद्धान्त के अनुमार भारत में दृष्टि की टेकनिक का सर्वोच्च विकास हुआ। मूर्तिकार योग की साधना में ध्यान मग्न होकर कला में देवता का निर्माण करने लगा। इस कला कृति के निर्माण में उसके समक्ष धन की कामना का ध्येय बिलकुल नहीं रहा। वह स्वयं विचारकर स्वेच्छा से नाना प्रकार के देवी देवताओं की रचना करने लगा। इस रचना में सौन्दर्य, अनुपात, आकार के ज्ञान को कलाकार निश्चय करता है वह असाधारण है। देवत्व का पूर्ण आभास है और विचार की महानता है। इस प्रकार की कृति में सर्वोच्च साधना मुख्य उपासना है और कलाकार कृति के साथ एकाकार हो जाता है। जब दोनों में कोई भेद नहीं रहता तभी कलाकार महान कृति को जन्म देता है। आनन्द कुमार स्वामी के शब्दों में 'किसी देवता की वास्तविक आराधना तभी हो सकती है जब उस देवता से एकाकार ही नहीं अपितु वही बन जाय'। वृहदारण्यक उपनिषद का कथन है कि 'जो जिस किसी देवता की आराधना करता है वह तद्रूप हो जाता है दूसरे को जानता ही नहीं' अतः कलाकार जिस किसी वस्तु को चित्रित करना चाहता है कुछ समय के लिए वह उसी के ध्यान में मग्न रहता है। उसकी चित्तवृत्ति को शब्द व्यक्त नहीं कर सकते। अगर कलाकार को घोड़े की आकृति ही बनानी है तो वह घोड़े के प्रति इतना एकाग्र हो जाता है कि उसे अन्य किसी वस्तु का ध्यान ही नहीं रहता। योरुप की कला और एशिया की कला इस स्थान पर एक दूसरे से पूर्णतया मिलती हैं। दान्ते के शब्दों में 'चित्रकार जब तक वस्तु से एकाकार नहीं होता उसको चित्रित नहीं कर सकता।' कला कृति की

पूर्णता कलाकार की पूर्ण योगी की दशा है। योगी वही है जो कर्म में कुशल है। 'योगः कर्मसु कौशलम्'*। स्वामी शंकराचार्य के कथनानुसार योगी को तीर बनाने वाले से योग का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। उनका कथन है कि मैंने योग की क्रिया तीर बनाने वाले से सीखी है। एकाग्रता की पराकाष्ठा है। योग के अन्तर्गत परिश्रम अध्ययन, अभ्यास, मुक्ति, परिपूर्णता, चातुर्य, साधु शीलता, अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। कलाकार की साधना में भी इन सब गुणों का समान स्थान है।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि कला ईश्वर प्रदत्त है। कैलाश के सौन्दर्य को कलाकार पृथ्वी पर व्यक्त करता है। अतः कला देव-लोक से मृत्यु-लोक में आई है। ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि कला देव-लोक की कृतियों की अनुकृति है। यह महान विचार धारा है और कला को पूर्णता की ओर अग्रसर करती है। कला के देवता विश्वकर्मा का अस्तित्व और उससे प्रेरणा कलाकार को देवताओं की कला से सम्बन्धित करती है। ऋग्वेद में बहुत स्थानों पर लिखा है कि मन्त्रों के उच्चारण की दक्षता उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी किसी कारीगर की कृति। भारतीय साहित्य में १८ प्रकार की व्यावसायिक कला तथा ६४ प्रकार की अन्य कलाओं का वर्णन है जिनके अन्तर्गत संगीत और चित्रकला ही नहीं, रसोइया कार्य, जादूगरी, घोड़े की सवारी आदि बिना किसी भेद भाव के समाविष्ट हैं।

सच्ची कला के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह संसार की अप्राप्य पूर्णता की प्रतियोगिता में पड़े। प्रत्येक क्षेत्र की भिन्न २ मान्यतायें होती हैं। अतः किसी भी देश की कला की अन्य देश की कला से तुलना नहीं की जा सकती प्रत्येक कला की भिन्न कसौटी होती है। भिन्न२ तर्क होते हैं। इन तर्कों को उन पैमानों से नहीं नापा जा सकता जो क्रियाशीलता के दूसरे क्षेत्रों में लागू होते हैं। अगर किसी मूर्ति की कई भुजायें अथवा सिर हैं तो उसमें

*भगवद्गीता द्वितीय ५०।

मानव और पशुओं के देव स्वरूप का सम्मिलित होना आवश्यक है। अंकगणित और अवलोकन इस बात में सहायक होगा कि मूर्ति ठीक बनी है अथवा नहीं। कोई वस्तु कितनी सुन्दर है इस बात को जानने के लिए वह स्वयं ही उसका माप होगा अन्य किसी माप से यह निर्धारित नहीं किया जा सकता कि वस्तु की सुन्दरता का मापदंड यह है। कला का आत्मा से स्वभाविक सम्बंध है। ईश्वर तथा आत्मा का सम्बन्ध स्त्री पुरुष का सा है। गोपियों के साथ रास करते हुए भगवान कृष्ण के चित्रों को देखें तो हम भगवान को लांछित कर सकते हैं परन्तु इन सब चित्रों को देखते समय भगवान कृष्ण को योगिराज कृष्ण समझ कर निरीक्षण करें तो आत्मा का परमात्मा के साथ जो सम्बध है वही गोपियों का भगवान कृष्ण के साथ मानना उचित होगा। अगर हम को परम्परा का ज्ञान नहीं है, यदि हम परम्परा को नहीं मानते तभी हम इस प्रकार के असौन्दर्यात्मक निर्णय दे सकते हैं।

कला में सादृश्य को विशेष स्थान है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण का वाक्य है कि सादृश्य कला के मूल तत्वों में से है। चीनी कला-सिद्धान्त में आकृति सादृश्य को विशेष महत्व दिया है। जापान के महान लेखक और आलोचक सैमी का कथन है कि नृत्य और गायन की कला में सादृश्य ही पूर्णता है। इस प्रकार एशिया की कला आदर्श संसार का निर्माण करती है। यह कला रूप और प्रभाव में सामान्यत: स्वाभाविक है।

यह अनुभव करने की बात है कि भारतीय आध्यात्मिक दृष्टिकोण से जड़-चेतन में विरोध है। एक को दूसरे की अपेक्षा अधिक वास्तविक स्वीकार करना पड़ेगा। अन्ततोगत्वा ज्ञाता और ज्ञेय एक दूसरे से मिल जाते हैं और किसी का भी अलग अस्तित्व नहीं रहता। यही एक मात्र ज्ञान रहता है। ज्ञानी को वस्तु का ज्ञान गहन साधना से होता है। अगर मनोविज्ञान से वेदान्त की ओर इसका अर्थ लगावे तो यह स्पष्ट है कि ईश्वर ज्ञान नहीं रखता बल्कि ज्ञान का ही नाम ईश्वर है। प्रेम प्रेम के कार्यों में होता है और प्रेमी प्रेम में एकाकार हो जाता है।

प्रमाण को कला साहित्य में प्रमुख स्थान दिया गया है। भारतीय न्याय इसे सत्य का साधन बतलाता है। प्रमाता प्रमेय को प्रमाण द्वारा जानता है। यह ज्ञान अनुभव का खंडन नहीं करता। निश्चित परिस्थितियों में प्रमाता जिस साधन द्वारा प्रमेय को ग्रहण करता है वह प्रमाण है। प्रमाण को आप्त वचन के रूप में ग्रहण नहीं कर सकते परन्तु इसके अंतर्गत आप्त वचन से प्राप्त किये हुये तत्व निहित हैं। दर्शन के अनुसार प्रमाण विहित विचार के सिद्धान्त को कहते हैं। नीति के अनुसार प्रमाण विहित कर्म के सिद्धान्त को और कला के अनुसार सुविचारित आलेखन के सिद्धान्त को कहते हैं।

शी हो के कला के छः सिद्धान्त पांचवी शताब्दी में प्रकाशित हुए। आज तक वे प्रमाणिक माने जाते हैं। इन सिद्धान्तों पर सुदूर पूर्व तथा योरुप के विद्वानों ने विचार विनिमय किया है और मतभेद भी रहा है। मुख्य मतभेद टाउस्ट तथा कनफूसियस के बीच रहा। शुद्धपाठ के आधार पर भाषान्तर निम्न प्रकार है।

(१) जीवन की गति में आत्मा का कर्तृत्व, अथवा विप्लव अथवा संयोग अथवा प्रतिक्षेप।
(२) तूलिका के द्वारा अस्थिविशेष का चित्रण।
(३) वस्तु के अनुसार आकृति चित्रण।
(४) वर्ण के अनुसार रंगों का प्रयोग और वितरण।
(५) उचित संयोजन (उचित स्थान पर आलेखन स्थापना)।
(६) परम्परागत प्रक्रिया।

प्रथम सिद्धान्त का अध्यात्मिक रूप से बड़ा महत्व है। इस सिद्धान्त का प्रभाव अन्य सिद्धान्तों पर भी समान है। प्रत्येक सिद्धान्त का स्पष्ट अर्थ है। दूसरे सिद्धान्त के द्वारा वाह्य चित्रण की अपेक्षा स्वभाव के चित्रण पर अधिक बल दिया है। तीसरे और चौथे के अनुसार स्थूल और रंग का प्रतिपादन,

स्वाभाविक सम्बंध के अनुसार पाँचवा, वस्तु का उचित स्थान पर चित्रण, वर्तमान में जैसे आलेखन, प्राचीन कलाकार तथा कला विशेषज्ञों की कृतियों की प्रतिलिपि और परम्परागत नियमों का अनुकरण ही मुख्य है। भारतीय कला सिद्धान्तों की इस सिद्धान्त से अति निकट समानता है परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यह भारतीय सिद्धान्त का अनुकरण है। चित्रकला के भारतीय सिद्धान्त भी छः हैं जो षडंङ्ग कहे जाते हैं। रूप भेद, प्रमाण, भाव, लावण्य योजना, साहृश्य और वर्णिका भंग जिनका आधार वात्स्यायन का काम सूत्र माना जाता है। डा. अवनींद्रनाथ टैगोर ने इनका अनुकरण करने पर बड़ा बल दिया है।

सब प्रकार की कला का उद्देश्य पूर्णता है जिसमें चित्र सम्बंधी और व्यवहारिक तत्व सिर्फ मेल ही नहीं खाते बल्कि एक दूसरे से बिल्कुल स्पष्ट होते हैं। इस दृष्टिकोण से कला की सब आवश्यकतायें लोप हो जाती हैं और मुसलमानी सिद्धान्त के अनुसार एक ही बात दृढ़ रहती है कि खुदा सबसे बड़ा मुस्सविर है। ईसाई मत के अनुसार भी ईश्वर सबसे बड़ा निर्माणकर्ता माना जाता है। आर्य धर्म के अनुसार ब्रह्मा सृष्टि का रचयिता है। शैहजूयान का कथन है कि जब कला की पराकाष्ठा हो जाती है तो कार्य की पूर्णता हो जाती है। कला की पूर्णता का भारतीय मापे यह है कि उस में सत्य, शिव और सुंदर पराकाष्ठा पर होना चाहिए।

यू टो जू के सम्बन्ध में एक चीनी कहानी है कि एक बार उसने एक महल की दीवार पर गौरवपूर्ण दृश्य चित्रित किया। उस चित्र में संसार की सभी वस्तुयें जैसे जंगल, पहाड़, बादल, चिड़िया, मनुष्य चित्रित किये। जब उसका बादशाह चित्र की प्रशंसा कर रहा था चित्रकार ने पहाड़ के ऊपर के दरवाजे की ओर संकेत किया कि बादशाह उसके अन्दर जाकर आन्तरिक आनन्द प्राप्त करे। यू टो जू ने पहिले प्रवेश किया और बादशाह को संकेत किया कि वह पीछे पीछे चला आवे। परंतु जैसे ही बादशाह आगे

बढ़ा कि द्वार बंद हो गया और चित्रकार फिर कभी दिखाई न दिया। लियांग वंश के सम्बंध में यांग सैंग यू कलाकार ने ऐसी ही कहानी का रहस्यपूर्ण उल्लेख किया है कि दीवार पर जो अजगर की आकृति का चित्रण किया था जब वह पूर्णता को पहुँच गई तो वे अजगर दीवार पर से खिसक गये। पूर्णता को पहुँचकर वस्तु अमरता को प्राप्त होती है। यही पूर्णता है जिसकी ओर कला और कलाकार अग्रसर होते हैं इसी से जीवन का प्रत्यक्षीकरण होता है। कलाकार जैसे जैसे पूर्णता की ओर बढ़ता है नियमों के पालन की संकीर्णता नहीं रहती परन्तु वह सिद्धान्तों का अनुकरण करना भूल नहीं जाता बल्कि वैसा ही आनन्द अनुभव करता है जैसा कि साहित्यकार व्याकरण में अनुभव करता है। वैय्याकरणी किस प्रकार वाक्य विन्यास के नियमों का पालन करता है कितना शुद्ध और उचित शब्दों का चयन होता है यह व्याकरण ज्ञान के कारण ही है।

भारतीय अथवा सुदूर-पूर्व की कला सिर्फ स्मृति के आधार की ही वस्तु नहीं है न इसमें आदर्श ही सब कुछ है बल्कि दृष्टि सम्बन्धी प्रतीक है और अङ्कगणित के अनुसार आदर्श है। देवता की मूर्ति मन्त्र के समान है मन्त्र ज्यामितीय प्रतिनिधित्व है और मन्त्र श्रवण शक्ति का प्रतिनिधित्व है। देवता का प्रतिबिम्ब इन्हीं पर आधारित है। देवता की शरीर रचना में उनकी अपार शक्ति तथा प्रभाव का ज्ञान मुख्य है। यह आवश्यक नहीं कि उस पत्थर अथवा ताँबे की मूर्ति के अङ्ग जीव-शास्त्र के अनुसार कार्य करें बल्कि उनके दर्शन करके उनकी अपारता, प्रभाव और महानता का अनुभव करें। अतः देवता की प्रतिमा से सम्बन्ध मानसिक की अपेक्षा क्रियात्मक कम है। दृश्य-चित्रण के सम्बन्ध में भी यही बात है। पश्चिमी कला में दृश्य अथवा चित्र को किसी ढाँचे के अन्दर से देखते हैं अथवा अनुभव करते हैं परन्तु पूर्वी दृश्य अथवा मूर्ति सर्व प्रथम मन में स्थान पाते हैं। इसके बाद उनकी रचना होती है। पश्चिमी कृतियों में जो प्रतिपादन होता है वह एक निश्चित दृष्टिकोण से देखा व रचा जाता है। अतः दृष्टि सम्बन्धी सत्याभास होता

है। चीनी दृश्य में बहुत से दृष्टिकोण होते हैं। वास्तविक की अपेक्षा व्यवहारिक अधिक होता है। सत्यभासिता की अपेक्षा बोधनीयता अधिक होती है। कला में स्थान को घेरने के लिए तत्कालीन दृष्टिकोण ही मुख्य होता है। इसी कारण किसी देश की कला उसका प्रतिनिधित्व करती है।

पश्चिमी कला में प्राय: समय के किसी क्षण को विशेषत: व्यक्त किया जाता है, परन्तु पूर्वी कला में प्राय: सतत परिस्थितियों का चित्रण होता है। परम्परागत रूप से यदि यों कहा जाय कि पाश्चात्य कला वास्तविक के अंकन और एशिया अथवा ईसाई धर्म की कला ईश्वरत्व और ईश्वर सम्बंधी चित्रण में अधिक विख्यात है तो अनुचित न होगा। सतत चित्रण का तात्पर्य यह है कि भगवान बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुए कई हजार वर्ष हो गये परन्तु उसका प्रदर्शन हर युग में हुआ और हो रहा है। भगवान शंकर का नृत्य किसी निश्चित स्थान पर नहीं बल्कि प्रत्येक भक्त के हृदय में होता हैं। भगवान कृष्ण की लीला भक्त के लिए हर समय होती हैं और भक्त उनमें हर समय नवीनता पाता है। भारत की कला सदैव धर्म के पुट के साथ पुष्पित व पल्लवित हुई है अत: जो देश इसके निकट रहे उन्होंने इसको अधिक समझा। चीन और इस्लाम का भारत से बहुत समय से सम्पर्क चला आ रहा है। योरुप का सम्पर्क बहुत बाद में हुआ, अत: आध्यात्मिकता का प्रभाव चीनी और इस्लामी कला पर रहा। सुन्यावादीन के बारे में कथन है कि उनका कहना था कि बौद्ध नामक कोई व्यक्ति इस संसार में नहीं हुआ। उन्होंने कोई भी सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किए वह महापुरुष भगवान बौद्ध की मूर्ति को देखने का बड़ा इच्छुक था। समकालीन हित के अतिरिक्त कोई भी कला इससे अधिक नहीं दे सकती और इससे अधिक इच्छा करना अनुचित है।

भारत में स्त्रियों के चार स्वरूप बतलाये हैं पद्मिनी, चित्रणी, शंखिनी और हस्तिनी। पद्मिनी उनमें से सर्व श्रेष्ट होती है। चित्र लक्षणा पुस्तक में चित्र के चित्रण में लक्षण पर अधिक बल दिया है। चित्र ऐसा होना चाहिये

कि सादृश्य तो हो ही परन्तु उसमें वे गुण भी प्रतिबिम्बित होते हों जो उस व्यक्ति में पाये जाते थे। इस प्रकार के चित्र भाव पूर्ण चित्र कहलाते हैं। एक राजा के बारे में यह कहा जाता है कि उसको अपनी रानी इतनी प्रिय थी कि वह उसको हर समय अपने साथ रखता था। दरबारियों के आपत्ति करने पर उसने उसका चित्र-निर्माण कराया। वह चित्र ऐसा चित्रित हुआ कि रानी का साक्षात् स्वरूप उसमें प्रतिबिम्बित था और वह पद्मिनी लक्षण युक्त चित्रित की गई। उस चित्र में रूप ही न था बल्कि स्वरूप भी था, वाह्य सौंदर्य के साथ साथ आन्तरिक सौंदर्य की पूर्णता थी। चीन और भारत में चित्र रचना की प्रथा समान थी परन्तु चित्र अधिकतर मृत्यु के बाद चित्रित किये जाते थे जिससे स्मृति बनी रहे। इसके विरोध में भी कहा जाता है कि देवता और मनुष्यों के चित्रण में भिन्नता होती थी। शरीर रचना पर अधिक बल नहीं दिया गया है परन्तु चित्र में भाव, अनुपात के सिद्धान्त और आवश्यक वस्तुओं का प्रतिपादन स्वत: होता था यह कलाकार की साधना का फल था। चीनी चित्रों में व्यक्तिगत गुणों का पूर्ण प्रतिपादन है। चीनी पुस्तकों में प्रकार पर अधिक बल दिया है। चीनी चित्रकार **Kuo-Kung-Chen** कुओ-कुङ्-चिन् के बारे में कहा जाता है कि वह चित्र में व्यक्ति की आत्मा और उसका मस्तिष्क चित्रित कर देता था परन्तु शरीर रचना के सिद्धान्तों का किसी पुस्तक में उल्लेख नहीं है।

भारतीय तथा पूर्वी कला में एकता का दोष पश्चिमी कलाकार आरोपित किया करते हैं। साहित्य और रूप कला में व्यक्तिगत ख्याति अधिक रहती है। पूर्वी देशों में धर्म परायणता विश्वास से नहीं बल्कि कर्म से मानी जाती है। वर्तमान में कलाकार के लिए विषयों की विभिन्नता है परन्तु प्राचीन युग में ऐसा नहीं था एशिया की समस्त कला में जीवन का प्रतिनिधित्व होता है, परन्तु इस जीवन में आकृतियाँ प्रयोग सिद्ध नहीं

होतीं बल्कि आध्यात्मिक परम्परा के आधार पर कल्पना की जाती है। ईश्वरीय विधि के अनुरूप होती हैं साथ साथ कलाकार को व्यक्तिगत रूप मे उसी क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त करने का अवसर प्राप्त होता है। नगर-निर्माण में भी आध्यात्मिकता का पूर्ण विकास रहता है । न कोई समाज न कोई कला आध्यात्मिक सिद्धान्तों के विपरीत अनुभव की जाती थी। वस्तु को मानवता के आधार पर भोगा जा सकता था।

प्राची के जीवन में परम्परागत चरित्र का बड़ा महत्व है। राम और सीता का जीवन अब भी आदर्श जीवन है। वह समाज के अनुकरण का आधार है। स्वधर्म का बड़ा स्थान है। नारी का स्वधर्म क्या है पुरुष का स्वधर्म क्या है। वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक वर्ण के स्त्री पुरुष का अलग अलग स्वधर्म है। स्वधर्म के अनुकरण के समक्ष अन्य धर्म का कोई स्थान नहीं था। दूसरा अपने धर्म का पालन करता है कि नहीं यह किसी को चिन्ता न थी। उस समय चीनी कन्फ्यूसियस के सिद्धान्तों का अनुकरण करते थे। सभी ने जीवन को एक बाग का स्वरूप दे रखा था जिसमें कोई वृक्ष व फूल जंगली न हो जाय। बाहरी अनुरूपता आन्तरिक का प्रत्यक्षीकरण थी। इस सामूहिक जीवन में व्यक्तिगत जीवन स्वतः ही विकसित होता था। यह बात नारी समाज के लिए ठीक बैठती है। पूर्वी देशों के जीवन के देखने से मालूम पड़ता है कि नारी को स्वत्व की रक्षा कभी नहीं करनी पड़ी। प्रायः लोग कहते हैं कि जापान व भारत में प्रतिष्ठित परिवार की नारी को स्वतन्त्रता नहीं है परन्तु यह धारणा गलत है। शताब्दियों से नारी का जीवन विधिवत है। उस जीवन में उसको पूर्ण स्वतन्त्रता है। एशिया की कला की यह बड़ी सफलता है। इस कला में नारी के जीवन की वह झलक पूर्णतया मिलती है।

एशिया की कला के आध्यात्मिक पक्ष को अध्ययन करने के बाद दूसरे पक्ष को अनुभव किया जाय तो ज्ञात होगा कि आदर्श अथवा दूसरे शब्दों में

रौमांस इसका दृष्टिकोण होगा। ईसा की प्रथम शताब्दी में एशिया में प्रतीकवाद व मूर्तिवाद का बड़ा प्रभाव रहा। इस कला में प्रकृति ने जिन तत्वों को प्रस्तुत किया कला ने उनका प्रतिपादन किया। इसके पश्चात् इस का पतन हुआ। यह आलेखन के रूप में लोक कला में स्थान पाता रहा। १८ वीं शताब्दी में श्याम और लंका में इस शैली के कुछ नमूने मिलते हैं जिनका आधार परम्परागत है और जो लोक शैली के प्रशंसनीय उदाहरण माने जाते हैं।

आदर्श कला के अन्तर्गत भाव और प्रतीक का विश्लेषण सरल कार्य नहीं। यही रहस्यवादी कला भी कही जा सकती है। ईसा की दूसरी शताब्दी में इस प्रकार की कला का एशिया में प्रचलन रहा। इस कला में क्या वस्तु है और किस ओर संकेत करती है यह भेद भाव जानना सरल कार्य न था। रहस्यात्मक तथा प्रतीकात्मक कला अभिन्न हो जाती है। और सौंदर्यात्मक तथा ऐतिहासिक रूप से मिश्रित प्रतीत होती है। १२वीं व १३वीं शताब्दी की की कामकुरा के बौद्ध चित्र माने जाते हैं। संघ के दृश्य चित्र तथा पशु चित्र अभी तक प्रतीकवाद के उदाहरण हैं। मामलापुरम में ७वीं शताब्दी की भारतीय पशुओं की मूर्तियाँ विलक्षणता, हास्य और रहस्य के उदाहरण हैं। दोनों प्रकार की कला में प्रायः भेद जानना सरल कार्य नहीं। अध्यात्मिक कला का सम्बंध भिन्न२ प्रकार की शक्तियों से है आदर्शवादी कला में एक ही शक्ति की प्रधानता है। दोनों का सम्वंध योग से है। कोई भी वस्तु हम देखते हैं तो ईश्वर की अलौकिक शक्ति का आभास होता है। रहस्यात्मक अथवा आदर्शकला के उदाहरण चीन और जापान की चानयाजैन कला जिसमें विषय दृश्य, पौधे, अथवा पशु जीवन है। भारतवर्ष में वैष्णव चित्र, काव्य और संगीत है। जिनका विषय स्त्री पुरुष धर्म सम्बंधी है और फारस की सूफी कविता जिसका विषय मादक वस्तु की प्रशंसा है।

एशिया की कला में इस का विशेष स्थान है। जो कविता, चित्र, संगीत अथवा मूर्ति का कलाकार ने निर्माण किया है उसमें वह रसानुभूति का संचार

है कि दर्शक को रस विभोर कर देती है। प्रत्यक्ष में भी आध्यात्म की झलक है। भगवान कृष्ण की झाँकी में यदि राधा के साथ रासलीला देखते हैं तो शक्ति का परमात्मा से मिलन का अनुभव अधिक होता है। दैनिक जीवन की झलक से आध्यात्मिक जीवन का अनुभव ही पूर्वी कला का सार है। सूरदास यदि सगुण ब्रह्म का गुणगान करते हैं तो इसी कारण कि वे निर्गुण को समझना कठिन समझते हैं। "सब विधि अगम विचारें ताते सूर सगुण लीला पद गावें" यह पक्ति इस भाव को स्पष्ट करती है। जो भाव काव्य में है वही चित्र में समझना चाहिए। जिनकी भावना तथा ऐसी वासना नहीं है वे भारतीय कला को नही समझ सकते। किसी कला की कृति को मूल्यांकित करते समय जब तक आलोचक कलाकार का रूप ग्रहण नहीं कर लेता नहीं समझ सकता। कलाकार ने जिस रस का प्रतिपादन किया हो आलोचक को वही रसास्वाद हो तभी कलाकृति की सफलता है। रस का आस्वादन जन्मजात है। अधिक शिक्षित न होने पर भी बहुत से व्यवस्थित तथा सौंदर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने में बड़े निपुण होते हैं। अतः जिनमें आदर्श सौंदर्य का गुण विद्यमान है वे वास्तविक सौंदर्य का पूर्णतया मूल्यांकन कर सकते हैं। ब्लेक का कथन है कि "मनुष्य उस बाग के समान है जिसमें ठीक पोधे उगे हुए हैं आदर्श सौंदर्य का ज्ञान जन्म से ही होता है प्राप्त नहीं किया जा सकता है" सौंदर्यात्मक अनुभूति भावना का हो नहीं बल्कि ज्ञान का परिवर्तन है। इस अनुभूति पर व्यक्ति आत्म-विभोर हो जाता है। कलाकार जिस भाव को व्यक्त करता है उससे वह प्रभावित स्वयं नहीं होता चाहे उसको वह कितना ही देखले बल्कि उससे सौंदर्यात्मक अनुभव ही होता है। यह अनुभूति अगम्य है परन्तु जब तक मस्तिक की सब ग्रंथियां खुल नहीं जाती इस अनुभूति को हृदयंगम नहीं कर सकता। संस्कृत साहित्य शास्त्र ने कुछ सिद्धान्तों का विवेचन किया है जो मौलिक हैं और संक्षेप में निम्न प्रकार हैं। विभाव, अनुभाव, भाव और सत्व भाव। साहित्य शास्त्रों में इनका विवेचन बड़ा स्पष्ट दिया है।

विभाव—भाव के जागृत करने के कारण को कहते हैं। यह आलम्बन और उद्दीपन के अर्थात् भाव को जागृत करने वाला कारण तथा जागृत भाव को तीव्र करने वाला कारण क्रमशः समझना चाहिए।

अनुभाव—जागृत भाव को बाहर प्रगट करने वाले शारीरिक व्यापार जैसे अश्रु, कंप आदि को कहते हैं।

भाव—जागृत भावावेश पूर्ण दशा जैसी कलाकृति की रचना में कलाकार की होती है। यह ३३ प्रकार के व्यभिचारी तथा ९ प्रकार के स्थायी भाव होते हैं। एक स्थायी भाव की प्रधानता होगी तो दूसरे भाव गौण रूप से कार्य करेंगे। सत्व भाव के अंतर्गत मूर्च्छा आदि की स्थिति हो जाना कहा जाता है। निष्काम शारीरिक प्रतिक्रिया का प्रतिपादन होता है। काव्य का प्राण ध्वनि होती है।

रस और ध्वनि के सिद्धान्त आध्यात्मिक अथवा वेदान्तिक हैं। यद्यपि शुद्ध वेदान्त में इसका स्पष्टीकरण नहीं है परन्तु योग की क्रिया में इसका स्थान है। इस प्रकार कलाकृति के द्वारा कलाकार भी विभोर हो जाता है और आलोचक भी। एशिया के सिद्धान्तों में मुख्य तत्व सौन्दर्यात्मक अनुभूति हैं। सादृश्य में कला की पूर्णता होती है।



अध्याय चतुर्थ

"कला के तत्त्व"

बिना सिद्धान्त के किसी वस्तु का निर्माण नहीं होता। कला की उत्तमता और निकृष्टता का ज्ञान भी सिद्धान्त के अनुसार ही होता है। कला कृति अनुभव करने और देखने का विषय है। जैसी कला कृति होगी वैसा ही प्रभाव मन पर पड़ता है। कला की रचना के लिए आकार, धरातल और रंग सहायक होते हैं।

आकार—के द्वारा स्वरूप की बनावट, उसके भिन्न भागों का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध तथा उचित स्थान, रेखाओं के गुणों का ज्ञान, और उनका झुकाव आदि।

धरातल—समभूमि पर चित्र की रचना करना—धरातल के गुणों में चमक, कठोरता, असमता, और कोमलता आदि होते हैं पृष्ठभूमि से ही चित्र में उभार तथा सजीवता आती है।

रंग—वस्तु के वास्तविक रंग का ज्ञान, छाया तथा उसके ऊपर प्रकाश का प्रभाव रंगों का संतुलन आदि का ज्ञान।

आकार का निर्माण धरातलों के मिलने से होता है। रेखाओं के द्वारा धरातल निर्मित होते हैं अतः रेखा का हर कला कृति में प्रमुख स्थान रहेगा। रेखा का निर्माण बहुत से बिन्दुओं से मिलकर होता है। ज्यामितीय नियम के अनुसार रेखा की लम्बाई चौड़ाई नहीं होती परन्तु कल्पना करके किसी भी रेखा की रचना की जायगी तो उसकी कुछ न कुछ मोटाई अथवा चौड़ाई अवश्य होगी। रेखा की विशेषता उसके गुण और आकार हैं, तथा इसके प्रकार सीधी व वक्र हैं। भिन्न२ प्रकार की रेखाओं से भिन्न २ भावों का प्रदर्शन होता है। हलकी रेखा मे कोमलता का बोध होता है। ये रेखायें अस्पष्ट होती है। सुडौल पन का अभाव रहता है। ये सुन्दरता की द्योतक भी होती है। गहरी रेखायें स्पष्ट होती हैं, सजीवता रहती है। इनसे निश्चय, कठोरता और शक्ति का बोध होता है। समीपता की सूचक भी रहती है।

रेखायें प्रकृति-प्रदत्त नहीं है। प्रकृति में रेखा को न पाकर स्थूल देखा जाता है। प्रागैतिहासिक युग के हमारे पूर्वजों की यह अनुपम खोज है कि उन्होंने स्थूल प्रकृति को रेखा द्वारा व्यक्त किया। शिकार के चित्रों से जैसा ज्ञात है तत्कालीन मानव की कला-चेतना पूर्ण थी। शिकार करते हुए भी विश्राम के समय जो कला रचना की है वह अद्वितीय है। यही नहीं कि भारतीय प्रागैतिहासिक युग में ही हमको रेखा चित्रण मिलता हो अपितु कोगल और अल्टामीरा की कन्दराओं में भी रेखा चित्रण पाया जाता है। अतः प्राचीन काल की कला ने सर्वत्र ही रेखा द्वारा भावों को व्यक्त किया है। सब देशों में कलाकारों ने प्राचीन युग में रेखाओं के द्वारा जिन कृतियों की रचना की है उनमें असम्मभूत सौंदर्य है। सौंदर्यात्मक भावना को कला ने जागरूक बनाया है।

सीधी रेखा से सरलता, तथा स्वच्छता तथा वक्र रेखा से वक्रता का बोध स्वाभाविक है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि सौंदर्य सीधी रेखा में ही होता है वक्र में नहीं। सौंदर्य की दृष्टि से दोनों समान है। दोनों प्रकार की रेखाओं का एक दूसरे के साथ अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। जहाँ भगवान राम की लम्बवत् मूर्ति में सौंदर्य है वहाँ भगवान कृष्ण की त्रिभंगी मूर्ति भी अपनी निराली छटा रखती है। जहाँ पहिले में सौम्यता है दूसरे में चचंलता लक्षित होती है। जब रेखा में पूरी गोलाई होती है सुंदरता और सौष्ठव झलकता है। जटिल कोण वाली रेखायें समस्या को जन्म देती हैं। तिरछी रेखायें देखने में सुंदर होती हैं परन्तु कटीलापन होता है। आकर्षण भी होता है। भवन निर्माण में सीधी रेखाओं के साथ वक्र रेखा को अवश्य स्थान देते हैं इससे सुंदरता की वृद्धि होती है।

आकार की रचना के लिए धरातल की आवश्यकता होती है। धरातल दो माप अथवा तीन माप के प्रायः होते हैं। तीन माप वाला धरातल ठोस पिंड हो जाता है। भिन्न२ विस्तार के आकार को देखने से भिन्न भावों का जन्म होता है। घन की सब भुजायें बराबर होती है उसमें आर्कषण कम होता है। परन्तु जहाँ भुजाओं की लम्बाई चौड़ाई भिन्न होती हैं जैसे पड़े आयत और खड़े आयत सौष्ठव अथवा उत्थान मूलक भावनाओं को जागृत करते हैं। वृत की तिरछी रेखायें विश्राम और आलस्य का संकेत करती हैं। सीधी रेखाओं की अपेक्षा वक्र रेखा को देखने से दृष्टि पर अधिक बल पड़ता है। आकार के प्रभाव का मूल अंग क्षेत्रफल है। प्रातःकाल व्यक्ति खुले मैदान में घूमना अधिक पसंद करता है। तंग और संकीर्ण स्थान उसको अखरते हैं। रेखाओं के द्वारा ही नेत्रों की गति का संचालन होता है। यदि आकार में विरोध होता है तो दृष्टि की गति में उलझन पड़ जाती है। फलतः हमारे भाव भी जटिल और नीरस हो जाते हैं। साधारण आकार की वस्तु मन में शान्ति का संचार करती है।

धरातल की बनावट के भिन्न २ महत्व होते हैं। धरातल की चिकनाहट, चमक, खुरदरापन, धुंधलापन, अपना भिन्न २ प्रभाव रखते हैं। चिकनी वस्तु

हृदय में आकर्षण उत्पन्न करती है। ताजमहल के चिकने पत्थर मन को मोहित करते हैं। लाल किले के खुरदरे पत्थरों की विशालता ही नहीं बल्कि उग्रता भी दृष्टिगोचर होती है।

शरीर विज्ञान के विशारदों का कथन है कि पुतलियों के द्वारा प्रकाश नेत्रों में प्रवेश करता है। सीधा नेत्र के पीछे के भाग रेटीना पर रुक जाता है। रेटीना पर रोडस और कोनस दो प्रकार के छोटे २ भाग होते हैं जिनका सम्बंध सीधा दृष्टि सम्बंधी नसों से होता है। इस प्रकार इसका सीधा प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर पड़ता है। अतः दिन रात का रंग सफेद और काला दिखाई देता है। आगे प्रकृति के लाल हरे, नीले पीले रंगों को पहचानते हैं। रंग की उत्पत्ति प्रकाश से होती है। सूर्य्य प्रकाश का सबसे बड़ा स्वरूप है। सूर्य्य के प्रभाव मे जो वस्तु जिस प्रकार की है वह वैसी ही दिखाई देती है और जैसे ही प्रकाश का लोप होता है वस्तु किसी प्रकार की भी हो काली दृष्टिगोचर होती है। कभी २ वस्तु पर प्रकाश का पूरा प्रभाव नहीं पड़ता। उस वस्तु का रंग दिखाई पड़ता है जो उसमें पहिले से मौजूद था। इसी कारण वह वस्तु प्रकाश के पूरे प्रभाव को विलीन कर सकी। यही उस वस्तु का वास्तविक अथवा प्राकृतिक रंग होता है। रंग कला का प्रमुख अंग है। कला कृति में रंग उसकी आभा को द्विगुणित कर देते हैं। पहलवान को लाल लंगोट पहने देखते हैं तो हृदय में वीरता का भाव उत्पन्न होता है। पीला अथवा नीला रंग भगवान राम और कृष्ण के स्वरूप का बोध कराता है।

रंगों से तीन प्रभाव पड़ते हैं। रंगत, बल और घनत्व। वास्तव में एक दूसरे का गहन सम्बंध है। इस कारण रंगत के साथ हल्का, गहरा, चमकीला और धुंधला आदि विशेषणों का प्रयोग करना पड़ता है। रंगत को प्रगट करने के लिए नीला, पीला, लाल, हरा भिन्न २ प्रकार केनाम संकेत के लिए प्रयोग किए हैं। रंगो के तीन रूप हैं। वर्ण, रोगन, और लेप। ईश्वर प्रदत्त और मानव प्रदत्त रंगों में भिन्नता होती है। मुख्य रंग तीन प्रकार के होते हैं

पीला, लाल और नीला। पृथ्वी के रंग से पीला, सूर्य्य से लाल और आकाश से नीला रंग लिया गया है। इस प्रकार यह प्रारम्भिक रंग प्राकृतिक रंग है और किसी रंग के मिश्रण से नहीं बनते। शेष रंग बिना अन्य रंग के मिश्रण के नहीं बन सकते। लाल और पीला रंग मिश्रित होकर नारंगी रंग को जन्म देता है। पीला और नीला हरे रंग को और लाल और नीला बैंगनी रंग को जन्म देता है। सफेद रंग प्रकाश तथा काला रंग छाया के लिए प्रयोग किया जाता है। लाल और नीले रंग को गहरा करने के लिए काला रंग प्रयोग में लाया जाता है। जर्मन वैज्ञानिक आस्टवाल्ड ने शरीर रचना के सिद्धान्त के अनुसार बतलाया है कि नैत्र को लाल, नीला, पीला, और हरा चार रंग विशेषतया दृष्टिगोचर होते हैं। अतः वर्तमान में चार रंग प्रमुख मानने लगे हैं।

एक वृत्त को आठ बराबर भागों में काट कर उसके चार भागों में—एक भाग में पीला रंग भर कर दूसरे को छोड़कर पुनः तीसरे में लाल रंग, चौथे को छोड़कर पांचवें में नीला रंग भर कर छटवें को छोड़कर सातवें में हरा भर दिया जाय। रिक्त भागों में इनके मिश्रण के रंग जैसे पीला+लाल= नारंगी, लाल+नीला=बैंगनी, नीला+हरा=फीरोजी, और पीला+हरा =पत्ती का हरा रंग बन जावेगा। इस प्रकार आठ रंग का एक वृत तैय्यार होगा। इन आठ रंगों के मिश्रण से भी रंग तैय्यार होते हैं। इन मिश्रण से बने रंगों का प्रभाव तथा नाम उसी रंग पर होता है जिसकी प्रधानता होती है। इस प्रकार एक रंग का प्रभाव तीन रंगों पर पड़ेगा।

रंगों का ज्ञान नर की अपेक्षा नारी को अधिक रहता है। कुछ सरकारी नौकरियों में रंगों का ज्ञान बहुत आवश्यक है। रेल और जहाज की नौकरी में रंग के ज्ञान पर अधिक बल दिया जाता है। सिगनल के लाल और हरे रंग को पहिचानना बहुत आवश्यक है इस क्षेत्र में रंग की भूल से असम्भूत अनर्थ हो सकते हैं। रंगों का प्रभाव मनुष्य के विचारों तथा शरीर

पर पड़ता है। चमकदार रंग छोटे बच्चों तथा स्त्रियों को बहुत आकर्षक होते हैं। वृद्ध लोग हल्के रंगो को अधिक पसन्द करते हैं। गर्म देश के निवासी हल्के रंग और ठंडे देश के निवासी गहरे रंग को अधिक चाहते हैं। प्रत्येक रंग का एक विशेष गुण होता है।

पीला—प्रकाश का रंग है इससे चमक तथा प्रफुल्लता का अनुभव होता है। बसन्त ऋतु में पीले रंग का विशेष प्रभाव रहता है। प्राणी को जीवन की नवीनता का अनुभव होता है।

लाल—राजसी रंग है। पुलिस की पगड़ी, जल्लाद तथा अफसरों के अरदलियों की पोशाक में इसका प्रमुख स्थान है। तेज का सूचक है बल वीरता का अनुभव कराता है। पहलवान का लंगोट तथा हनूमान जी के झंडे का व शरीर का यही रंग है। पूजा के समय भावुक लोग इसी का प्रयोग करते हैं। टीका करने, मांग भरने अथवा मेंहदी लगाने से हाथ पैर रचाने में इसी का प्रयोग किया जाता है।

नीला—स्वच्छ और शान्तिदायक रंग है। मन में पवित्रता तथा शान्ति का अनुभव होता है। शीतलता का यह सूचक है।

हरा—प्रकृति में हरे और लाल रंग का बाहुल्य है। इससे हर्ष, निश्चिन्तता तथा कौतुक का ज्ञान होता है।

रंगो में बल का विशेष महत्व है। किसी रंग में प्रकाश तथा छाया की मात्रा तथा उनके प्रभाव को लक्षित करना है तो प्रकाश के लिए सदैव सफेद रंग तथा छाया के लिए काला ही प्रयोग में लाया जावेगा। इन दोनों रंगो के समान मेल से भूरा रंग बनता है। सफेद और भूरा रंग मिलकर सफेद भूरा अथवा हल्का भूरा और काला और भूरा मिलकर गहरा भूरा अथवा

काला भूरा रंग बनेगा। इस प्रकार दो रंगों के मिश्रण से पांच रंग तैय्यार हो जाते हैं।

बल

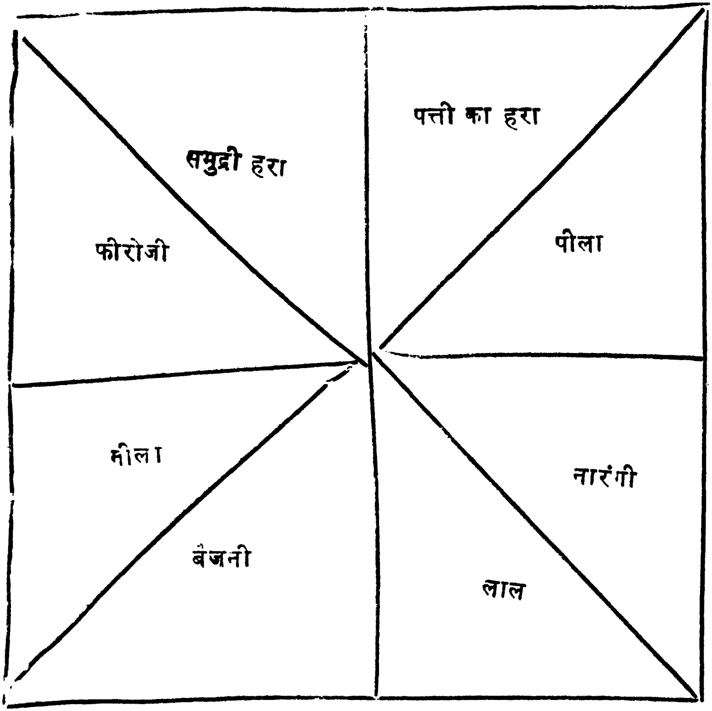
सफेद	सफेद भूरा	भूरा	भूरा काला	काला

इसी प्रकार पांच रंगों से नौ, और नौ रंगों से सत्रह रंग तैय्यार हो सकते हैं। इसी छाया व प्रकाश के बल को कला में टोन (Tone) कहा गया है। किसी रंग में सफेद की मात्रा मिलाने से प्रकाश की मात्रा बढ़ जाती है। इस मिश्रित रंग को कला में टिंट (Tint) कहा गया है। किसी रंग में जब काला रंग मिलाया जाता है तो उस मिश्रित रंग को शेड (Shade) कहा गया है। इसी प्रकार किसी रंग और भूरे रंग के मेल से Shaded Tint शेडेड टिंट रंग तैय्यार होता है। रंगों के प्रभाव की विभिन्नता का अनुभव बल के द्वारा ही होता है। इससे प्रभाव का क्षेत्र बढ़ जाना स्वाभाविक है। इस बल का अनुभव साधना और अध्यवसाय से होगा। डा. आस्टवाल्ड ने इस प्रकार मिश्रित करके ६८० रंगों की सूची तैय्यार करदी है। कलाकार अभ्यास से अगणित रंगों को जन्म दे सकता है और आवश्यकतानुसार तैय्यार कर लेता है। सफेद रंग के मिश्रण से जो रंग तैय्यार होते हैं उनसे आनंद और प्रफुल्लता का अनुभव होता है। काले रंग के मेल से गम्भीरता का अनुभव तो होता ही है साथ २ कभी २ निराशा का भी अनुभव होता है। गहरे रंग सदैव शक्ति, प्रतिष्ठा, निकटता और एकान्त का बोध कराते हैं हल्के रंग प्रफुल्लता, जागृति, तथा दूरी का बोध कराते हैं। घनत्व के द्वारा

किसी रंग की चमक व मिलावट का ज्ञान होता है। चमकदार व अमिश्रित रंग में अधिक घनत्व पाया जाता है। मिश्रित और धुंधले रंग में कम घनत्व होता है। अतः किसी रंग का घनत्व उसके चटकीलेपन से धुंधलेपन तक सीमित रहता है। उदाहरण के लिए पीले रंग में धुंधला रंग मिलने से चमक आधी रह जाती है। विरोधी रंगों के मिलाने से भी घनत्व में विभिन्नता उत्पन्न हो जाती है। चित्र में कलाकार अपनी इच्छानुसार घनत्व की मात्रा को घटा और बढ़ा सकता है। यदि चित्र में अधिक घनत्व होता है तो दर्शक को आकर्षित करता है। दर्शक प्रभावित होता है। परन्तु दृष्टि पर अधिक बल पड़ता है। यही कारण है कि कलाकार घनत्व के रंगों का अधिक प्रयोग नहीं करते परन्तु कम घनत्व होने से विचार स्पष्ट होने में बाधा पड़ती है। अतः कलाकार को मध्यवर्ती मार्ग का अनुसरण करना उचित है। यदि भूरे रंग के अधिक प्रयोग से चित्र नीरस मालूम पड़ता है तो कलाकार नीरसता को भंग करने के लिए घनत्व का प्रयोग करने लग जाते हैं।

रंगों के प्रयोग में भी कलाकार की साधना ही मुख्य है। दक्ष कलाकार किसी भी प्रकार के रंगों के द्वारा चित्र के चित्रण में सफलता प्राप्त कर सकता है परन्तु नौसिखिया को नियम का पालन आवश्यक है। कलाकारों ने कुछ नियम निर्धारित किये हैं जिससे कलाकार को रंगो का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। नीले रंग के आसमानी नीला, गहरा नीला, नील सा नीला, आदि कई भेद हैं। इसी प्रकार लाल महावर का, सिंदूर, गुलाल ईंट का रंग आदि कई लाल रंग हैं। यह सब कलाकार की कुशलता पर आधारित है कि उसको कौन २ सा रंग कहाँ २ प्रयोग में लाना है। अच्छे कलाकार को यह ज्ञान होता है कि किस रंग का प्रभाव अच्छा पड़ेगा वह उसी प्रकार इच्छित रंगो का प्रयोग करेगा। पोस्टर रंगो में प्रायः आस्टवाल्ड के सिद्धान्त का अधिक प्रयोग होता है।

आस्टवाल्ड के सिद्धान्त पर रंगों की व्यवस्था:—



१ पीला—इस रंग में अपने समीप के हरे और नारंगी रंग की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। नीबू के समान पीले रंग को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

२ नारंगी—यह शुद्ध पीले और लाल रंग के मध्य की रंगत है।

३ लाल—यह शुद्ध चटक रंग होता है, इसमें गुलाबी रंग की तरह नीले व पीले की मात्रा नहीं होती।

४ बैंगनीं—यह शुद्ध नीले और लाल रंग के मध्य की रंगत है।

५ नीला—यह शुद्ध चटक रंग होता है इसमें आसमानी रँग के समान लाल तथा हरे रंग की मात्रा नहीं होती।

६ फीरोजी—यह शुद्ध नीले और समुद्री हरे रंग के मध्य की रंगत है।

७ समुद्री हरा—इस रंग को प्रकृति में हम समुद्र के पानी के रंग के रूप में देखते हैं काई को देख कर भी इस रंग का अनुभव होता है।

८ पत्ती का हरा—यह रंग शुद्ध समुद्री हरे और पीले रंग के मध्य की रंगत है। इस रंग का प्रभाव पेड़ पौधों पर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इन रंगो के प्रयोग के लिए कुछ नियम निर्धारित किये हैं जो छः प्रकार के स्वीकार किये गये हैं।

१ विरोधी रंगो की
२ निकटवर्ती रंगो की
३ रंगो के बलों की
४ मध्य के रंगो की
५ आधीन रंगो की
६ उन्नत रंगो की

विरोधी रंग—पिछले चक्र में जो आठ रंग हैं उनके आमने सामने के रंगो को विरोधी रंग कहते हैं। पीला-नीला, नारंगी-फिरोजी, लाल-समुद्री हरा, और बैंगनी-पत्ती का हरा इत्यादि। सदैव एक रंग से दृष्टि को जो उद्विग्नता रहती है उसके विरोधी रंग से विश्राम मिलता है। अत: आलेखन आदि में विरोधी रंग की संगत बहुत आवश्यक है। विरोधी रंग का प्रभाव जन साधारण भली प्रकार जानते हैं। विवाह के समय नवबधू को जो कपड़े खरीदे जाते हैं उनमें विरोधी रंग की मुख्यता होती है। प्राचीन समय में लाल लहंगे पर हरी चादर या दुपट्टा बड़ा शोभनीय माना जाता था, और खीनखाब का पोलका बनवाया जाता था। इस प्रकार के संग्रह में विरोधी रंग का प्रभाव देखते ही बनता था। चटकदार रंग के साथ सदैव हल्का रंग का प्रयोग किया जाता है। यह सर्व विदित है कि पत्ती का हरा, पीला, नारंगी तथा लाल उत्तेजक रंग हैं बैंगनी, नीला, फीरोजी, तथा समुद्री हरा शान्तिदायक और

गम्भीर रंग हैं। सफेद पर छोटी सा काली बूंद भी सफेद में विप्लव उत्पन्न कर देती है। अतः गहरा रंग कम प्रयोग किया जाता है और हल्का रंग अधिक प्रयोग किया जाता है। रात्रि के समय गहरे आसमान पर छोटे तारागण कितने आकर्षक प्रतीत होते हैं।

निकटवर्ती रंग—रंगों के घेरे को देखकर किन्हीं भी पास के रंगों की एक गोष्टी बना ली जाय। उनका प्रभाव अन्य प्रकार का होगा। इस गोष्टी में तीन रंगों का प्रयोग होगा। उदाहरण के लिए लाल रंग को मध्य मानकर एक ओर नारंगी और दूसरी ओर बैंजनी रंग लेकर एक गोष्टी मान ली जाय। यह रंग आपस में मिले जुले होने के कारण अधिक गम्भीर, रुचिकर, आकर्षक और शान्तिप्रद प्रभाव डालेंगे। यह सिद्धान्त सदैव कार्य रूप में लाना आवश्यक है कि गहरे रंग का कम स्थान व हलके रंग का अधिक स्थान पर प्रभाव रहता है।

रंगो के बल—रंगो में सफेद रंग मिलाकर प्रभाव विरोधी न होकर संगतिपूर्ण रहता है।

रंगों के विविध बल

रंग	रं+स$_1$	रं+स$_2$	रं+स$_3$	सफेद
रंग	रं+भू	रं+भू	रं+भू$_3$	भूरा
रंग	रं+का	रं+का	रं+का$_3$	काला

१ रंग, रंग सफेद १ रंग सफेद २ रंग सफेद ३ सफेद
२ रंग, रंग भूरा १ रंग भूरा २ रंग भूरा ३ भूरा

३ रंग, रंग काला १ रंग काला २ रंग काला ३ काला
इनको भिन्न प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है।

१ एक ही खडी पंक्ति का प्रयोग उदाहरण के लिये रंग+सफेद, १ रंग +भूरा, १ तथा रंग+काला १

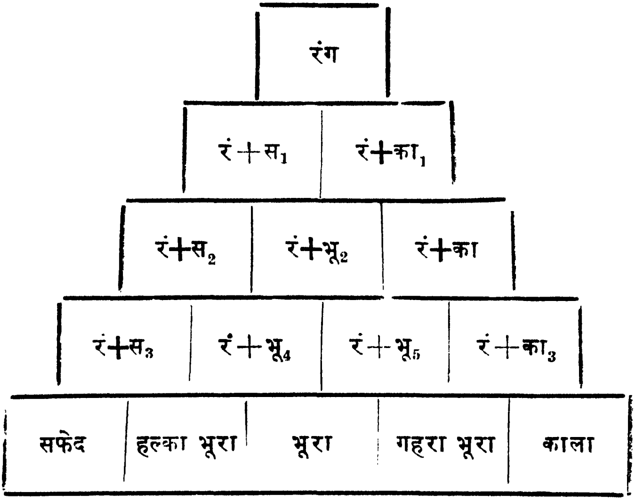
२ एक ही खड़ी पंक्ति का प्रयोग उदाहरणार्थ–रंग+रंग भूरा १, रंग+ रंग भूरा २, रंग+रंग भूरा ३ भूरा।

एक ही खड़ी पंक्ति में बराबर दूरी पर उदाहरणार्थ–रंग, रंग, रंग, +काला २, काला

अपने कार्य की पूर्ति के लिए हम आवश्यकतानुसार समीप की पंक्तियों में से किसी और रंग का भी प्रयोग कर सकते हैं। उदाहरणार्थ यदि हम पहिली खड़ी पंक्ति का प्रयोग करें तो दूसरी पडी पंक्ति के किसी भी भूरे रंग का प्रयोग कर सकते हैं परन्तु इस दशा में काले रंग की पंक्ति का प्रयोग नहीं करना है। इसी प्रकार हमें रंग सफेद १, रंग भूरा १, रंग काला १ का प्रयोग करने के पश्चात् रंग सफेद २, रंग भूरा २, रंग काला २ का ही प्रयोग करना उचित है। इस दशा में भी चमकदार रंगो का कम भाग में प्रयोग करना श्रेयस्कर है।

इस प्रणाली को अधिक स्पष्ट करने के लिए एक छाया सोपान के ढंग पर समान बल की दूरी दिखाई गई है। इस प्रणाली के अनुसार किसी भी पंक्ति का चाहे जिस दिशा में प्रयोग किया जा सकता है। यह आवश्यक है कि इसका प्रयोग कर्णवत अथवा समानान्तर दिशा में ही किया जाय।

छाया सोपान



मध्य के रंग—मध्य के रंगो के प्रयोग से नेत्रों को रुचिकर प्रतीत होने वाली समरूपता और एकता का अनुभव होता है। परन्तु यह समरूपता अधिक रुचिकर हो सकती है यदि इसमें विरोधी रंग का प्रयोग किया जाय। अतः नीला, बैंजनी और लाल रंग का यदि हमने प्रयोग किया है तो इनके मध्य के रंग के सामने वाले विरोधी रंग पत्ती का हरा प्रयोग करने से चित्र में एकता और आकर्षक एकता दृष्टिगोचर होगी। चटकीले रंग का प्रयोग कम स्थान पर और हल्के रंग का प्रयोग अधिक स्थान पर हर दशा में लाभदायक होता है।

आधीन रंग—यदि रंगो का प्रयोग इस प्रकार हुआ है कि उनमें न बिरोध है और न अनुरूपता है तो वहाँ चित्र में उदासीनता का भाव रहता है। इन रंगो का एक दूसरे पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। इस दशा में इन

रंगो को दूसरे रंगो का सहारा आवश्यक हो जाता है यह आश्रय सफेद, भूरे अथवा काले रंग के प्रयोग से पूर्ण होता है। इन रंगो के मिश्रण से चमक का अभाव तो दृष्टिगोचर होता है परन्तु प्राकृतिक स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है।

उन्नत रंग—जब सब प्रकार की विधि से प्रयोग किये हुए रंगो के द्वारा भी चित्र में सफलता नहीं प्राप्त होती है तो कलाकार पूर्ण स्वतंत्र हो जाता है और अपनी आवश्यकतानुसार जिस प्रकार भी रंग तैय्यार करके प्रयोग करना चाहता है कर लेता है। इस प्रणाली में किसी नियम और सिद्धान्त का सहारा नहीं लेना पड़ता।

सफल चित्र में संयोजन का उचित स्थान है। वस्तु को संतुलित रीति से किस प्रकार सजाया जाय यह संयोजन ही है। यह सब साधना का ही परिणाम है। जिस कलाकार की ज्ञानेन्द्रिय जितनी अधिक सहायक होगी वह कलाकार उतना ही सफल संयोजन कर सकता है। सतत अभ्यास और गहन साधना के द्वारा ही कलाकार उत्तम कृति को जन्म देता है। और उसकी कला में उतनी ही अधिक संयोजन की व्यवस्था पाई जाती है। प्रकृति के वास्तविक रूप का नाम ही कला है। कलाकार प्रकृति के स्वरूप को अपनी इच्छानुसार व्यक्त करता है। संयोजन के अन्तर्गत संतुलन, लय, गौरव और आधीनता आदि का प्रमुख स्थान है।

संतुलन—के द्वारा कला में रोचकता आ जाती है। कला में कलात्मक और भावात्मक दो गुण होने चाहियें। जहां कला में भाव प्रधान होता है कला स्वाभाविक रूप से प्रधान हो जाती है। चित्रकार चित्र में अपने भावों को व्यक्त करता है और जहाँ भाव में सार्वभौमिकता और सच्चाई है कला की उच्च साधना है तो चित्र स्वयं भाव प्रधान हो जावेगा। कीट्स का कथन है कि "सुन्दर वस्तु सदैव आनन्द दायक होती है।" जिस कृति में सत्य, शिव और सुन्दर यह अधिकाधिक होगे वह कृति उतनी ही पूर्णता को प्राप्त होगी। भावनाओं का संतुलन बड़ा महत्वपूर्ण है। यह कलाकृति में

आकर्षण प्रदान करता है। रेखा, आकार, रंग की उचित व्यवस्था कलाकृति को स्थायी रूप से बनाने में सहायक होते हैं। भिन्न भिन्न दिशा में खींची जाने वाली रेखाओं में गति की भिन्नता होती है। यही गति की भिन्नता के कारण भावनाओं में वेग होता है। साधारण आकारों की अपेक्षा जटिल आकारों से बनी कला कृतियों में विशेष प्रभाव होता है। निगाह टिकती नहीं है। छोटे और बड़े आकारों के आकर्षण में बड़ा अंतर होता है। जो आकार के अनुपात पर निर्भर है। सन्तुलन को दो भागों में विभाजित किया गया है। सम और असम। सम सन्तुलन में केन्द्र की रेखा अथवा धरातल को सजाकर उसके दोनां तरफ़ बराबर भार की वस्तु अथवा आकृति से सजाया जाता है। सुडौलपन का पूर्ण ध्यान आवश्यक है। इसमें आकर्षण, सरसता अधिक होती है। नेत्रों को यह अधिक प्रिय लगता है।

प्राकृतिक वस्तुओं में प्रायः इसका आभास प्राप्त होता है। शरीर की रचना, फूलों, वृक्षों, पक्षियों के पंखों तथा मानव निर्मित विशाल भवनों को देखकर सम सन्तुलन का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। विश्व-विख्यात ताज महल इसका बड़ा सुन्दर उदाहरण है। असम सन्तुलन में भारी तोल की वस्तुओं को धुरी के निकट और हल्के तोल की वस्तुओं को धुरी से दूर चित्रित किया जाता है। रंगों के भारों के विषय में भी यही नियम प्रायः प्रयोग किया जाता है। निकट की वस्तु को प्रायः गहरे रंग से और दूर की वस्तु को हल्के रंग से चित्रित करते हैं। इस प्रकार के सन्तुलन में असाधारण ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। कलाकार उस सन्तुलन के प्रदर्शन में यदि कोई कठिनाई अनुभव करता है तो उसको मध्य भाग का अवलम्बन लेना पड़ता है। उदाहरण के लिए जब समकोण बनाने वाली रेखाओं में विरोध की भावना बढ़ जाती है उस प्रभाव को कम करना आवश्यक हो जाता है। अतः लम्ब तथा समानान्तर रेखाओं के बीच तिरछी रेखा का प्रयोग

अनिवार्य हो जाता है। इस नियम से असम सन्तुलन सुन्दर हो जाता है।

लय—एक रेखा अथवा एक आकृति के पश्चात् उसी प्रकार की अन्य रेखा अथवा आकृति चित्रित की जाती है तो उनके आकार तथा रंग में सम प्रभाव होता है। उन सब के मध्य में एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है उसे कला के क्षेत्र में लय कहा गया है। अनुरूपता चित्रित करने में लय का स्थान प्रधान है। आलेखन के क्षेत्र में लय का स्थान प्रधान होता है। सजावट करने के लिए प्रायः एक वस्तु का बार बार प्रयोग किया जाता है। कलाकार का यह अनुमान है कि पुनरावृति से कला कृति में सुन्दरता आती है। आलेखन के निर्माण में यह बहुत स्पष्ट होती है। कलाकार लय को नियमानुसार अथवा स्वच्छन्द गति से ही प्रदर्शित करता है।

नियमानुसार लय के द्वारा किसी इकाई का एक ही दिशा में बार बार प्रयोग किया जाता है। इसी इकाई को दोनों दिशाओं में भी प्रयोग किया जा सकता है। समानान्तर और तिरछी दोनों ही प्रकार की सीधी रेखाओं द्वारा लय उत्पन्न की जा सकती है। साड़ियों के किनारों तथा भवनों को सजाने में इसी लय का प्रयोग किया जाता है।

स्वच्छन्द लय में इकाई अथवा इकाइयों का भिन्न भिन्न रूप में प्रयोग होता है। किसी फूल, पत्ती, तितली आदि को खिली अध खिली दशा में जिस प्रकार कलाकार को रुचिकर हो, प्रयोग किया जा सकता है। कलाकार को इकाइयों के प्रयोग की पूर्ण स्वतन्त्रता है। भिन्न २ लय से भिन्न २ भावनाओं का जन्म होता है। सीधी रेखाओं के प्रयोग से आकृतियों में ओज का संचार होता है। वक्र रेखाओं के प्रयोग से कोमल भाव उत्पन्न होते हैं।

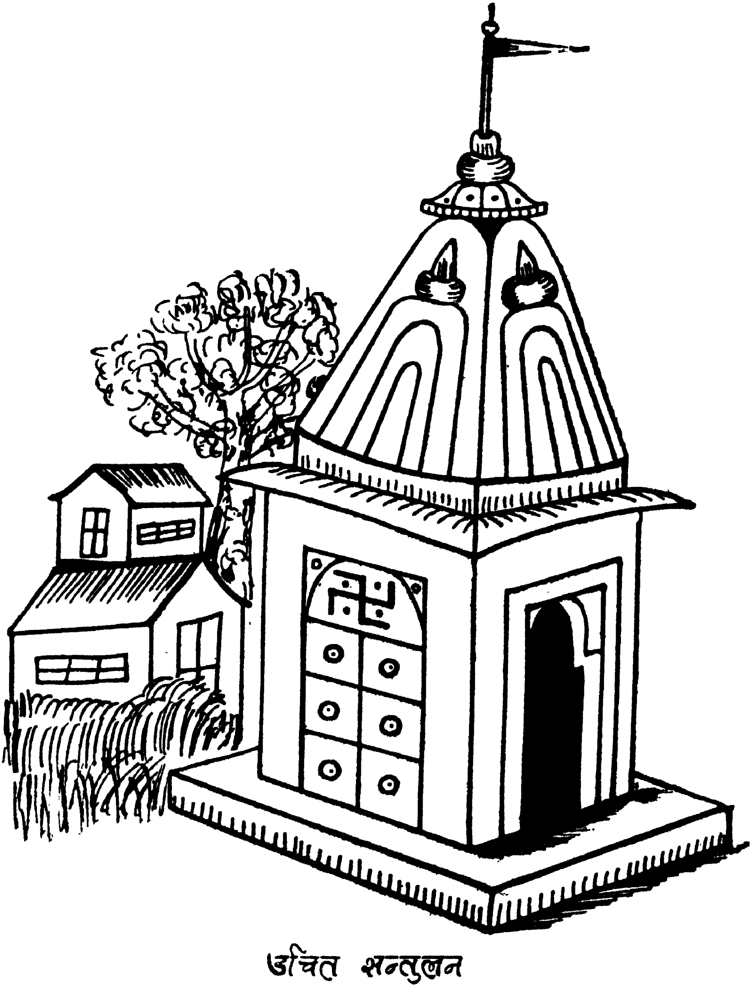
कलाकार अपनी इच्छित भावनाओं को प्रदर्शित करके आकृतियों को अपने अनुरूप अंकित करता है। किस प्रकार वह भावों को व्यक्त करेगा यह उसकी साधना और अध्यवसाय पर आधारित है। जिस किसी कृति का कलाकार निर्माण करता है तो उसके साथ मुख्य तथा गौण दो प्रकार के



असम सन्तुलन



सम सन्तुलन



उचित सन्तुलन



स्वच्छन्द लय

भावों को प्रदर्शित करने की भावना रहती है। जब कलाकार मुख्य भाव को गौरव देता है तो गौण भाव उसके आधार होकर कलाकृति को और सुन्दर बनाने में सहायक होते हैं।

चित्र को आकर्षक बनाने में स्थान, प्रतिमा और व्याख्या, विभिन्नता, समूह रचना और उपयोगिता का मुख्य स्थान है।

कलाकार आकृति का स्थान निश्चित करने में जितना कुशल होगा कला कृति उतनी ही सुन्दर चित्रित होगी। केन्द्र बिन्दु के निकट प्रायः आकर्षक वस्तु को और अप्रधान को केन्द्र बिन्दु से दूर चित्रित करता है। इस व्यवस्था से चित्र आकर्षक बन जाता है।

प्राचीन कला सिद्धान्त के अनुसार धरातल को अधिकाधिक सजाने में कला चातुरी मानी जाती थी। आज धरातल को सपाट रखने में अधिक चतुरता स्वीकार की जाती है। अजन्ता के कला मण्डप, मुगल-काल के चित्र और उनके हासियों को देखकर दृष्टि ठहरती नहीं। अतः चित्र को देखकर ही यह स्पष्ट हो जाता था कि कलाकार का भाव क्या है। धरातल को अधिकाधिक आकर्षक और सजीव बनाकर कलाकार अपने संरक्षक को आकर्षित करता था। जिस प्रकार आज डाक्टर एक रोग के विशेषज्ञ होते हैं। मुगल-काल में कलाकार भी एक वस्तु के चित्रित करने में दक्षता प्राप्त करते थे।

एक ही प्रकार के आकार अथवा रूप को चित्रित करने से आकर्षण होने पर भी मनुष्य का मन उसको देखने से ऊब जाता है। अतः कलाकार आकृतियों, रेखाओं और रूपों को भिन्न २ प्रकार से व्यक्त करके चित्र को सरस और आकर्षक बना देता है, और विभिन्नता से आकर्षण में वृद्धि होती है।

संयोजन में भिन्न २ वस्तुओं की निकटता और दूरी विशेष प्रभाव रखती है। किन्हीं दो समान वस्तुओं को निकट चित्रित कर दिया जाता है तो

उनका प्रभाव कम हो जाता है। यदि समान दूरी पर चित्रित की जाती है तो प्रभाव समान रहता है। जिस वस्तु को चित्रकार प्रधानता देना चाहता है उसकी गति, रूप तथा बल को विशेष महत्व देता है। वस्तु की लम्बाई चौड़ाई यदि समान होती है तो वह कम आकर्षक रहती है। अतः लम्बाई चौड़ाई में आकर्षण आवश्यक है। प्रायः कलाकार एक निश्चित सिद्धान्त की ओर संकेत करते हैं जिसको स्वर्ण अनुपात कहा गया है इसके अनुसार ३:५ का अनुपात सार्वभौमिक माना जाता है। यदि एक माप ५ है तो दूसरे को ५+३=८ मानना आवश्यक होगा। अतः हर दशा में ३ को जोड़कर अनुपात को एकसा रखा जा सकता है।

कला कृति में शिवं का ध्यान भी अत्यावश्यक है। वस्तु के सुन्दर और सत्य होने से ही कार्य पूर्ण नहीं होता। भवन निर्माण में प्राचीन काल में उपयोगिता पर अधिक बल दिया जाता था। वस्तु को ठोस और मजबूत बनाने में कलाकार को विशेष ध्यान रखना पड़ता था। गहने बनाते समय यह ध्यान रखा जाता था कि यदि आपत्ति आ पड़े तो वह गहने सहायक हो और कम से कम हानि हो। परन्तु आज उसके विपरीत हल्की और कम टिकाऊ वस्तु की रचना की जाती है। 'कला कला के लिए है' वाले बोल में उपयोगिता का स्थान ही नहीं है। अतः वर्तमान युग विभिन्नता का युग है। परन्तु सिद्धान्त प्राचीन ही अधिक लोक प्रिय हैं और उन में स्थायित्व है।



अध्याय पंचम

ललित कला के अपूर्व कार्य

पाश्चात्य विद्वानों ने कला को उपयोगी और ललित कला में विभाजित किया है। भारत में कला को चौंसठ प्रकार की कला में विभाजित किया है। भारतीय पद्धति के अनुसार ललित और उपयोगी में कोई भेद नहीं है। जिस कला में उपयोगिता अधिक होती है वह उपयोगी कला कहलाती है। इस प्रकार की कला में सौंदर्यात्मक अनुभूति कम होती है। वस्तु में सुन्दरता की अपेक्षा वास्तविकता अधिक पाई जाती है। इस प्रकार की कला सर्व हितकारी होती है और सर्व प्रिय भी। इसको समझने के लिए जन साधारण को अधिक प्रयास नहीं करना पड़ता। इस प्रकार की कला के समक्ष 'कला कला के लिए है' यह भावना अपना कोई स्थान नहीं पाती। ललित कला के अन्तर्गत पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार चित्रकला, मूर्ति कला, स्थापत्यकला, काव्य और संगीत माने जाते हैं। यहाँ कलाकार की दशा

भिन्न होती है। उसका कृत्य भी भिन्न होता है परन्तु प्रत्येक कला का स्थान समान है। ललित कला में मूर्त का अभाव होता है और जिस कला में जितना मूर्त रूप कम रहता है वह कला उतनी ही श्रेष्ट होती है। इस कला में मानव की हृतन्त्री को झंकृत करने की अपार शक्ति होती है। भव्य भवन, मूर्ति और चित्र को देखकर कला पारखी ध्यानावस्थित हो जाता है। आत्म विभोर हो जाता है। मैं कहां हूं यह उसको ज्ञान नहीं रहता। कभी २ तो उसकी दशा चित्रवत् हो जाती है। संगीत और काव्य से वह "अन बूड़े बूढ़े तरे जो बूढ़े सब अंग" की दशा को प्राप्त होता है। एक रस का आनन्द लेने लगता है जो आनन्द वर्णनातीत है।

प्रत्येक ललित कला में एक भिन्न प्रकार की अपील करने की शक्ति है। कला की रुचि प्रत्येक प्राणी में स्वाभाविक होती है कृतियाँ उस रुचि शक्ति को जागृत करने में सहायक होती है। किसी कलाकार को कोई कला अधिक रुचिकर होती है किसी को कोई दूसरी। कलाकार कभी यह प्रयत्न नहीं करता कि वह एक कला में ही दक्ष होकर अन्य प्रकार की ललित कला अथवा उपयोगी कला से अनुराग न दिखावे। कलाकार प्रगतिशील होता है और परिवर्तन में उन्नति समझता है। जिस कला में कलाकार की अधिक अभिरुचि होती है उसको वह जीवन संगिनी आराध्य देवी के रूप में अनुभव करता है उसको आन्तरिक रूप से देखता है, बाकी अन्य कला कृतियों में वह इतना पारंगत नहीं होता और उन कला कृतियों को वाह्य रूप से देखता है। इस प्रकार अपनी अभिरुचि की कला के सूक्ष्मतम रहस्य को अधिकाधिक जानने के लिए प्रयत्नशील रहता है। चित्रकार जिस कला कृति को अपनी अपूर्व साधना व अध्यवसाय के द्वारा जन्म देता है वह कला कृति जन साधारण को सीधी हृदयग्राही होती मालूम पड़ती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कलाकार के ज्ञान चक्षु बिल्कुल खुल गये थे जिस समय उसने इस महान कृति को जन्म दिया। श्री देवीप्रसाद राय चौधरी की मूर्तिकला अथवा सुधीर खास्तगीर की मूर्तिकला को यदि ध्यान से देखा जाय तो

यह स्पष्ट है कि प्रत्येक कलाकार अपने क्षेत्र में निराला है और जिस कला कृति को उसने जन्म दिया है उसमें भावना, सजीवता और गति है। तानसेन को ईश्वर प्रदत्त वह शक्ति थी कि मनुष्य को विभोर कर देता था। उसके समक्ष चित्रकला और काव्य का क्या स्थान था यह अनुभव की ही बात है।

अजन्ता के कला मण्डप संसार-विख्यात है। इनका निर्माण उन कुशल कलाकारों द्वारा हुआ है कि यदि उसको देवत्व कला कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। इन सब के अन्तर्गत एक ही भावना मुख्य है जो है साधना और अपूर्व ज्ञान। यह अत्यावश्यक है कि कलाकार पहिले मानव हो इसके पश्चात् वह कलाकार है। यह नियम किसी व्यक्ति विशेष अथवा समाज विशेष के लिए ही लागू नहीं होता। प्रत्येक देश की सभ्यता में कुछ न कुछ भिन्नता होती है और देखा गया है कि प्रत्येक देश वासी अपनी सभ्यता को महान बतलाता है परन्तु सबसे बड़ी सभ्यता वह है जहाँ सार्वभौमिकता का साम्राज्य हो। डा० सर० एस० राधाकृष्णन ने एक बार कहा कि जहां तक सभ्यता का सम्बन्ध है रूस तथा अमरीका की सभ्यता में कोई विशेष अन्तर नहीं परन्तु इन दोनों सभ्यताओं को भी ध्यान में रखते हुए यदि हम मानव सभ्यता को विशेष स्थान दें तो कोई कारण नहीं कि हर सभ्यता महान हो जाय और संघष का कोई स्थान न रहे। विद्वान वही जो अपनी आत्मा के समान संसार की समस्त आत्माओं को अनुभव करे। इसी प्रकार कलाकार वही है जो सब कलाओं को विशाल दृष्टि कोण से देखे और भावना की महानता और विशालता हो।)

मानवीय भावनाओं को आत्मसात करने के लिए यह अत्यावश्यक है कि वह कलाओं में मानवीय भावनाओं को जागरुक समझे। सब प्रकार की कला के द्वारा वह मनुष्य के जीवन को भली भांति समझ सकेगा। कला-कृति के निर्माण में परान्तः सुखाय की अपेक्षा स्वान्तः सुखाय की भावना अधिक सहायक होती है। इन सब के साथ भी मानव जीवन का सम्बन्ध आवश्यक है।

किस कला में मानव की भावना को अधिकाधिक जागरुक करने की शक्ति है यह प्रश्न अनुचित है। प्रत्येक कला समान है और कला जीवन के प्रदर्शन का एक साधन है। कलाकार उस साधन का साधक है। किस साधन के द्वारा और कैसे कला से समाज हित के साधन की पूर्ति होती है और क्या प्रत्येक कला उसको पूर्ण कर सकती है। किस कला की कहां तक सीमायें हैं इन प्रश्नों पर भी विचार करना आवश्यक है। जब किसी शक्ति की सीमा निर्धारित हो जाती है तो उसकी शक्ति स्थिर हो जाती है। जब यह कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति का ज्ञान अपार है तो असंम्भूत शक्ति का अनुभव होता है परन्तु जब शक्ति सीमित कर दी जाती है तो उस वस्तु की उस समय पराकाष्ठा हो जाती है। प्रत्येक कला का क्षेत्र सीमित है। यदि एक कला के द्वारा सब कार्य सम्पूर्ण हो जाते हैं तो दूसरी कला का कार्य लोप हो जाता है। जब तक वह कला कोई नवीनता न प्रदर्शित करे उसका महत्व रुक जाता है। कला का उत्थान व पतन होता है। इतिहास के द्वारा यह भली भाँति विदित हो सकता है। कला वह दर्पण है जिसमें तत्कालीन समाज का प्रतिनिधित्व होता है। अतः कला की प्रगति से समाज की प्रगति और कला के पतन से समाज का पतन दृष्टिगोचर होता है।

भारत के कला इतिहास को देखें तो विदित होगा कि सिंघनपुर की गुफाओं के रेखाचित्र अल्टा मीरा की गुफाओं के चित्रों से यदि विषय में नहीं मिलते तो माध्यम में अवश्य मिलते हैं। रेखा चित्रण की बलवती भावना के फल स्वरूप विश्व में एक ही माध्यम रहा, क्या यह आश्चर्य का विषय नहीं है। बौद्धकाल में अजन्ता और बाघ की गुफाओं का निर्माण हुआ इटली में भी भित्ति चित्र की प्रथा बलवती हुई। जहां तक विषय का सम्बन्ध है अधिकतर धार्मिकता का सर्वत्र पुट है। रेखा चित्रण की भावना का लोप नहीं हुआ। परन्तु इससे यह अनुमान नहीं लगाना चाहिये कि चित्रकला की पराकाष्ठा के कारण अन्य प्रकार की कलाओं का कार्य लोप हो गया। सब ललित कला अथवा उपयोगी कला का अपना एक विशेष

स्थान है। बिना छाया प्रकाश के अजन्ता की अपूर्व कृतियों में जो भावना तत्कालीन कलाकारों द्वारा प्रदर्शित की गई है वह देखते ही बनती है। यही हाल इटली के भित्ति चित्रों का भी है।

समय ने पलटा खाया और मूर्तिकला को विशेष महत्व मिला। अब तक जो कार्य चित्रकला के द्वारा अधूरा था वह मूर्तिकला ने पूर्ण किया। तूलिका का स्थान छैनी ने ग्रहण किया। ऐलौरा, एलीफेन्टा की गुफाओं का निर्माण इसके उदाहरण हैं। इस दशा में कला का क्षेत्र विस्तृत हुआ। जहाँ सपाट भीति पर कलाकार सिर्फ रंग और तूलिका से अनुपम भावों को जन्म देता था वहाँ अब भित्ति पर पहिले मूर्ति का निर्माण हुआ। तूलिका के द्वारा रंग से सुसज्जित किया गया। अतः यह प्रणाली समस्त संसार में प्रचलित होती गई। किस प्रणाली तथा शैली का कहाँ से जन्म होता है यह निश्चय करना सरल कार्य नहीं है। परन्तु सार्वभौमिक प्रणाली एक दृष्टिगोचर होती है यह क्या विशेषता है कौन कह सकता है। किस प्रकार भाव विश्व मण्डल में प्रतिध्वनित होते हैं कौन कह सकता है। आज विज्ञान के द्वारा कुछ विदित होता है कि कैसे वेतार के तार द्वारा सूचनायें एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचती हैं। कैसे रेडियो द्वारा तरंगे एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचती हैं।

मुगलकाल में पच्चीकारी का कार्य बड़ी विशालता के साथ प्रसारित हुआ। ताजमहल की पच्चीकारी दर्शक को आत्म विभोर कर देती है। योरुप में पांचवीं व छटी शताब्दी में पच्चीकारी की कला का मुख्य स्थान था और ईसाई धर्म सम्बन्धी समस्त भावों को इसी माध्यम के द्वारा व्यक्त किया गया था। रवैना स्थान पर ईसा को सूली पर चढ़ाने का सबसे पहिला स्तंम्भ है। ऐसा कहा जाता है कि यह संसार में सबसे पहिले पाँचवीं शताब्दी के मध्य में निर्मित हुआ था।

गैला प्लेसिडिया नामक एक स्त्री की मूर्ति है जिसने एक चौथाई शताब्दी तक पश्चिमी संसार पर प्रभाव रखा। यह मूर्ति एक छोटे से भवन

में स्थापित थी जो नगर के धरातल से बहुत नीचे डूब सा चुका था। यह ऐसा रमणीक स्थान है कि यदि इसको देखने का अवसर मिले तो संसार की बहुत विशाल और उच्चतम पच्चीकारी का नमूना देखने को मिलेगा। इसमें रंग इतने चटकीले हैं जैसे कि मानो अभी ही प्रयोग किये गये हैं। इसकी पृष्ठभूमि में गहरे कोमल नील रंग की चित्र यवनिका है जिसके द्वारा ईसाई धर्म सम्बन्धी कहानियों को बड़ा बल मिला है। ईसा के ईश्वर-दूत एपोलो की एक मूर्ति है जिसके साथ भेडो का एक समूह है उसके चरणों में झाकता अपनी पिपासा की तृप्ति कर रहे हैं। रेवैना में प्रत्येक स्थान पर पच्चीकारी के बड़े सुन्दर नमूने पाये जाते हैं। युग के परिवर्तन के साथ पच्चीकारी जो एक समय बड़ी प्रमुख ललित कला मानी जाती थी शनैः शनैः लोप हो गई। उसका प्रतिनिधित्व तूलिका और रंगों के द्वारा भी हुआ तथा रंगीन शीशे के टुकड़े एकत्रित करके उनको जोड़कर भी बनाने की नवीन शैली को भी जन्म दिया।

जब जिस प्रकार की शैली का प्रचार होता है उसमें उसी प्रकार की बिशेषताओं को तत्कालीन कलाकार खोज करता है। भित्ति चित्र के युग में एड्रिया डेल सारटो और माईकैल एंजिलो ने बड़ी से बड़ी विशाल भीत्ति को चित्रित करने में अपनी दक्षता का परिचय दिया। यहाँ तक कि ६ और ४ फीट के माप के आयतों को एक ही दिन में बड़ी दक्षता से चित्रित किया। एक बार जो चित्र रच गया उसको दुबारा तूलिका स्पर्श करने का अवसर नहीं आया। इस प्रकार के चित्रण को वर्तमान युग का चित्रकार चित्रित नहीं करेगा। जिस शैली से तुलसी और सूर ने भगवान राम और भगवान कृष्ण की जीवन गाथा की रचना की है वर्तमान में कोई कवि उस शैली को अपनाने को उद्यत नहीं। कारण कि वर्तमान का कवि उस शैली का अभ्यस्त नहीं है।

उस समय भित्ति चित्र की रचना करके चित्रकार यह निश्चय कर लेता था कि जो कृति मेरे द्वारा निर्मित हुई है वह स्थाई है परन्तु वर्तमान में

कलाकार कैनवेस के ऊपर विशाल से विशाल और भाव पूर्ण चित्र को जन्म देगा। उसका स्थायित्व वह इस बात में समझता है कि जब उस चित्र की आवश्यकता हुई टाँग दिया गया और यदि भवन में कोई परिवर्तन कराया जा रहा है तो वह चित्र उतार लिया जायगा। वर्तमान में कलाकार को भवन के स्थायित्व में ही विश्वास नहीं है। समय के परिवर्तन तथा साधनों के विकास तथा उत्थान के कारण चित्रकला अथवा मूर्तिकला के द्वारा निर्मित कला कृतियों में भिन्न २ प्रकार का परिवर्तन अस्वाभाविक और अनिवार्य हो जाता है।

चित्रकला की अपेक्षा मूर्तिकला, काव्य और संगीत का स्थायित्व अधिक स्वीकार किया जाता है। जिस समय से इनका निर्माण हुआ है शैली में परिवर्तन अवश्य है परन्तु शैली का परिवर्तन प्रकरण में अधिक परिवर्तन नहीं लाया। यह अवश्य रहा कि प्रधानत्व में भिन्नता रही। कभी संगीत का प्रधानत्व प्राप्त हुआ तो कभी काव्य को परन्तु यह आवश्यक है कि प्रत्येक कला का स्थान निश्चित है और उसके अभाव में स्थान रिक्त रहने की सम्भावना है। मानव की भावनाओं को कला के द्वारा ही प्रसारित और प्रचारित किया जा सकता है। संसार में भावनायें दो प्रकार की होती हैं परान्तः सुखाय भावनाओं में सार्वभौमिकता रहती है। स्वान्तः सुखाय सिर्फ एक व्यक्ति की भावना की पूर्ति करती है जहाँ तक सर्व कल्याण की भावनाहै। सर्व हित की भावना का उचित स्थान है और वह प्रत्येक कला के माध्यम के द्वारा पूर्ण हो सकती है। कला संस्कृति की रीढ की हड्डी है। सांस्कृतिक उत्थान के लिए कला का विकास आवश्यक है। प्रत्येक कला अपने क्षेत्र में विकसित हो तभी मानव जीवन के सार्वजनिक आधार को प्रदर्शित और प्रतिपादित किया जा सकता है। प्रत्येक कला का इस दृष्टिकोण से क्या कार्य हो सकता है यही खोज का विषय है।

अध्याय षष्टम्

कलाकार और कला की शक्तियाँ

जो किसी कला कृति को मौलिक रूप से जन्म देता है वह कलाकार है।

प्रत्येक कलाकार की एक अपूर्व शक्ति होती है जिसके द्वारा एक मौलिक रचना को जन्म प्राप्त होता है। कलाकार का एक व्यक्तित्व होता है। उस व्यक्तित्व का निर्माण उसके अध्यवसाय और साधना के द्वारा होता है। वह जिन कला कृतियों को जन्म देता है उसमें उसका अनुभव और आचरण स्पष्ट दृष्टिगोचर होगा। मौलिक रचनाओं की तो बात ही क्या है प्रतिलिपियों में भी प्रत्येक कलाकार की छाप लगी रहती है। किसी घटनास्थल पर यदि सौ व्यक्ति पहुँचे और उसको देखकर उसका वर्णन करें तो प्रत्येक का विवरण एक दूसरे से भिन्न होगा। एक कवि उसको जिस प्रकार कवितावद्ध करेगा दूसरा कवि उसके किसी दूसरे पक्ष का वर्णन करेगा। इसी प्रकार एक चित्रकार दूसरे चित्रकार से भिन्न चित्रण करेगा। अगर किसी व्यक्ति

से कोई घटना सुनी जाय और उसको यदि कोई कलाकार चित्रित अथवा वर्णित करेगा तो यह आवश्यक होगा कि घटना का वर्णन करते हुए जिससे घटना सुनी है उसके भावों को भी व्यक्त करेगा।

एक ही समय में दो कलाकार अपनी २ कृतियों को जन्म देते हैं। उन कृतियों के भाव एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत रहते हैं। इसमें भावना प्रधान होती है और प्रत्येक कलाकार अपनी भावनाओं को मूर्त रूप देता है। फ्लोरेन्स में फ्रा एंगेलीको और फ्रा लिप्पो लिप्पी ने एक ही समय में अपनी रचनाओं को जन्म दिया। उनका विकास एक ही प्रभाव के अन्तर्गत हुआ परन्तु उनकी कृतियां एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न प्राप्त होती है। फ्रा एञ्जेलीको के चित्र आध्यात्मिक भावनाओं से ओत प्रोत हैं। प्रत्येक कला कृति पूजा की अनुपम कृति है। फ्रा लिप्पो लिप्पी के चित्र मधुर और स्वाभाविक हैं। सृष्टि की सब भावनाओं का चित्रण है जिसमें ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी पूर्ण आकर्षण है परन्तु आध्यात्मिक विशेषता का अभाव है।

फ्रा एंगेलीको के जीवन को विहंगम दृष्टि से देखें तो स्पष्ट है कि उनका जीवन धार्मिक था। चर्च के जीवन की उनकी स्वाभाविक अभिरुचि थी। टसकैनी के अवकाश प्राप्त जीवन, युवावस्था में उनका उम्ब्रिया में सेंट फ्रांसिस के अध्यात्मिक जीवन का प्रभाव. १८ वर्ष तक चर्च के जीवन तथा ध्यानावस्थित दशा का प्रभाव, आरनो की घाटी की सुन्दरता से विमुख होकर फाइसोल की उच्च सीमा पर ध्यान मग्न होना आदि बातों का उसके जीवन पर गहन प्रभाव पड़ा था। यही कारण है कि सैन मोटको के गिरजाघरों को जब भित्ति चित्रों से सजाने का आदेश उनको प्राप्त हुआ तो ईसा के जीवन के विभिन्न पक्षों का बड़ा हृदयग्राही चित्रण किया।

फ्रा लिप्पो के जीवन का अध्ययन करने पर स्पष्ट होगा कि उन्होंने क्यों अध्यात्मिक चित्रण में अभिरुचि का प्रदर्शन न किया। आरम्भ से माता-पिता रहित होने के कारण जीवन अनियमित और आवारा का जीवन व्यतीत किया। चर्च और मठों की अभिरुचि का प्रश्न तो बहुत दूर रहा।

जिनकी सरंक्षता में भी रहे उनका सदैव यह दृष्टिकोण रहा कि इस बालक से किसी प्रकार छुटकारा पावे, वे भार स्वरूप ही सदैव प्रतीत हुए। सांसारिक सौंदर्य ने उनको लुभाया और लुक्रेज़िया बूटी को ही अपना आराध्य देव मानकर प्रेटो के भित्ति चित्रों में मन मोहक बालिकाओं को ही चित्रित किया। सुन्दरता के भिन्न २ प्रकार के सांसारिक स्वरूप चित्रित किये गये और यही कारण है कि कभी धार्मिक प्रवृत्ति न हो पाई।

नन्दलाल वसु और जैमिनी राय के चित्रों में कितनी भिन्नता है। यद्यपि दोनों समकालीन हैं। डा० अवनीन्द्र नाथ टैगोर का प्रभाव दोनों पर समान होना चाहिये परन्तु ऐसा नहीं हुआ। जहां नन्दलाल वसु की तूलिका के द्वारा भारतीय परम्परा का सुन्दर विवेचन हुआ है वही जैमिनी बाबू के लोक कला के अद्‌भुत नमूने एक नवीन भावना को जन्म देते हैं। विषय और शैली दोनों में पूर्ण भिन्नता है इन सब का कारण उनकी जीवन कथा है। प्रत्येक प्राणी के जीवन की घटनाओं का उस पर विशेष प्रभाव पड़ता है। भारतीय परम्परा के अनुसार यह पूर्व संस्कार पर आधारित होता है। यह बात बहुत दूर तक सत्य भी है; यह देखा गया है कि सनातन धर्मालम्बी पिता का पुत्र आर्य समाज के सिद्धान्तों का पक्का पोषक हुआ है। सूर और तुलसी करीब करीब समकालीन थे परन्तु दोनों के आराध्य देव भिन्न थे और काव्य शैली बिल्कुल भिन्न पाई जाती है। सूर ने जहां पदों में भगवान कृष्ण के जीवन को वर्णित किया है तुलसी ने दोहा, चौपाई, छन्द, सोरठा के माध्यम से भगवान राम का जीवन वर्णित किया है। यह नहीं कि पद और सवैया आदि को अछूता छोड़ा हो परन्तु रामचरित मानस आपका ग्रंथ अधिक लोक प्रिय है। यह कलाकार के जीवन की पृष्टभूमि का ही आधार है जो वह कला कृति को जन्म देता है। अंग्रेज़ी साहित्य में टेनीसन और ब्राउनिङ्ग एक ही काल में अवतीर्ण हुए। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में अंग्रेजी कविता पर दोनों का समान प्रभाव रहा परन्तु टैनीसन ने "क्रोसिंग दी बार" नामक कविता को विशेष महत्व दिया और अपने प्रत्येक पूर्ण संस्करण के साथ

इसी कविता को जोड़ने को कहा परन्तु ब्राउनिंग ने "ऐसोलेंडो के उपसंहार" को बड़ा महत्व दिया और अपने छोटे काव्य संग्रह की अन्तिम कविता इसी को बनाया। प्रत्येक महान कला कृति की पृष्टभूमि में कलाकार का व्यक्तित्व और अनुभव गोपनीय रहता है। उन कला कृतियों के द्वारा हम कलाकार के भावों से साक्षात्कार कर रहे होते हैं। कलाकारों की आत्मकथा कलाकारों को समझने में बड़ी सहायक होती है। परन्तु कलाकार को भी आद्योपान्त समझना चाहिये। यदि किसी पेड़ का सड़ा फल प्राप्त हो जाय तो इससे यह अनुमान नहीं लगाना चाहिये कि उस पेड़ पर सब फल सड़े ही होते हैं। कला के द्वारा कलाकार के जीवन की घटनाओं का अध्ययन ही नहीं होता अपितु उसके स्वभाव, आचरण आदि का पूर्ण ज्ञान होता है।

कला गुरु डा० अवनीन्द्रनाथ टैगोर के जीवन पर भारतीय परम्परा का गहन प्रभाव पड़ा। कारण कि आरम्भ में आपका परिचय इटली के चित्रकार गिलारडी और अंग्रेजी चित्रकार पालमर से हो गया जिनसे सभी माध्यमों का ज्ञान प्राप्त किया और उनके जीवन का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। यह भावना सदैव आपके हृदय में खटकती रही कि क्या भारतीय चित्र परम्परा है। और इसी की पूर्ण खोज का फल यह हुआ कि अपनी परम्परा से प्रगाढ़ प्रेम हो गया। और तभी आपने यह उपदेश दिया कि दूसरों की शैली, विषय और परम्परा को जानने और मानने से पूर्व अपनी शैली, विषय और परम्परा का पूर्ण ज्ञान कर लेना आवश्यक होगा। इस सब का यह प्रभाव रहा कि जितने चित्रों को कला गुरु ने जन्म दिया भारतीयता ओत प्रोत है। जहाँ कहीं भी चित्र रचना की है आपने विषय धार्मिक तथा सामाजिक को ही अपना आधार बनाया और राधा कृष्ण, भगवान शंकर तथा शाहजहाँ के अन्तिम दिन आदि चित्रों में अपनी परम्परा की बड़ी सुन्दर झाँकी कराई। अत: कलाकार के जीवन से ही कलाकार की कृतियां जन्म पाती हैं। कलाकार आपबीती अथवा जगबीती को ही वर्णन करता है तथा चित्रित करता है। देश और समय का उस पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है।

धम प्रधान युग में कलाकार की कृति में धार्मिक प्रभाव पाया जावेगा और समाज प्रधान युग में ।समाजिक प्रभाव पाया जायेगा । आज का मूर्तिकार चित्रकार श्रमिक की दयनीय दशा चित्रित करके ही समाज को अधिक प्रभावित कर सकता है ।

कलाकार का जीवन और उसका मस्तिष्क ही वह शक्ति है जो कला-कृति को जन्म देने में सहायक होती है।



अध्याय सप्तम्

कलाकार और युग

कलाकार युग का प्रतिनिधि होता है मानव के विकास में साहित्य और कला का विशेष स्थान है। यदि किसी देश की कला और उसके साहित्य का पूर्ण अध्ययन करे तो यह स्पष्ट हो जायगा कि देश तथा समाज की क्या दशा रही और कैसे उत्थान और पतन हुआ। वास्तव में युग की भावना कला की सब शक्तियों का मिश्रण है। इतिहास अनवरत श्रोत्र है जिसमें भिन्न प्रकार की लहरें हैं परन्तु वे लहरें एक काल से दूसरे काल में रेखा नहीं निर्धारित कर पाती हैं। प्रत्येक युग में भिन्न भिन्न प्रकार की शक्तियाँ अपना कार्य करती हैं। इन्हीं शक्तियों के द्वारा ही उस युग के उत्थान और पतन का ज्ञान होता है।

कला के क्षेत्र में दो प्रकार का युग प्रायः सभी देशो अथवा क्षेत्रों में पाया जाता है। एक युग में शक्तियाँ मौलिक और उत्पादक होती हैं वह

युग उत्थान का युग होता है। उस युग में समाज में और शान्ति देश में समृद्धि शालिता होती है। भारतीय इतिहास में गुप्त सम्राटों का युग वैसा ही था। इङ्गलैंड के इतिहास में एलिजाबेथ का युग वैसा ही समझना चाहिये। मुगल-काल में सम्राट अकबर का काल वैसा ही काल है जब मौलिकता और उचित उत्पादन को अवसर मिला। एक युग विप्लव और अराजकता है जब किसी मौलिक कृति को जन्म पाना कठिन होता है। ईश्वर कृपा से महान शक्तियां सभी क्षेत्रों में हर समय होती हैं। कोई ऐसी भाग्यशाली होती हैं कि उनको ऐसा युग मिलता है जब कलाकार मौलिक कृति को अधिक सुविधा और सरलता से जन्म दे सकता है कोई युग ऐसा होता है कि उत्तम कलाकार होने पर अपने प्रयत्न में उतना सफल नहीं हो पाता जितना होना चाहिये था। शेक्सपीयर की रचनाओं को जो युग प्राप्त हुआ वह उसके अनुकूल था परन्तु मिल्टन को इसके विपरीत वह युग प्राप्त नहीं हुआ। यद्यपि "पैरोडाइस लौस्ट" महाकाव्य को मिल्टन ने जन्म दिया परन्तु वह शेक्सपीयर के समान ख्याति प्राप्त न कर सका। मैडौना की रचना करीब २ सभी चित्रकारों ने की परन्तु लिनारडो डी विन्सी की मैडौना अपना अलग व्यक्तित्व रखती है। राम कथा को बहुतों ने गाया परन्तु तुलसी को जो स्थान प्राप्त हुआ अन्य कवि न पा सके।

युग दो प्रकार के प्रायः होते हैं। एक युग में उत्पादन और मौलिकता होती है उस समय समाज का विश्वास साथ रहता है। दूसरे प्रकार के युग में शंका और आलोचना को विशेष स्थान मिलता है उस युग में मौलिक रचनाओं का अभाव रहता है। समय की आत्मा के प्रभाव से कोई कलाकार अछूता नहीं रह सकता। जब कलाकार उसके विपरीत कार्य करता है उस समय भी वह समय की आत्मा से प्रभावित होता है। कलाकार अपनी कला कृति के द्वारा युग पर एक छाप लगा देता है जो चाहे स्वीकारात्मक हो सकती है चाहे नकारात्मक। ऐमरसन की रचनाओं के द्वारा उस दर्शन का प्रचार हुआ जिससे अमरीका के सांसारिक जीवन पर अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा।

फा एञ्जलिको की चित्र रचना से भी सांसारिकता के विपरीत आध्यात्मिकता का पोषण हुआ। लैनारडोडी विन्सी ने स्वीकारात्मक रूप में कल्याणकारी कृतियों को जन्म दिया। दान्ते ने मध्य युग का प्रतिनिधित्व किया। गेटे ने आधुनिक सभ्यता की भावना को जगाया। माइकेल एंजिलो ने लिनारडो डि विन्सी की भाँति रैनांसा युग के बहुत से प्रभावशाली विशेषताओं को जन्म दिया परन्तु वह लिनारडो की समानता न कर सका। माइकेल ने दूसरी प्रवृतियों के साथ गहरी प्रतिक्रिया की। यह प्रतिक्रिया उस युग से बहुत ऊँची थी। कभी २ ऐसा होता है कि कलाकार को तत्कालीन समाज समझ नहीं पाता जिसके फलस्वरूप समाज उसकी विचारधारा के विपरीत कार्य करता है। अतः कलाकार के साथ युग की क्रिया और प्रतिक्रिया अपना कार्य करती रहती है। कलाकार का यदि युग के साथ पूर्ण सामंजस्य है तो वह उत्थान की ओर अग्रसर होगा अथवा वह पतन की ओर। यह हो सकता है कि कलाकार की वह विचारधारा युग से आगे की हो परन्तु उस समय उसकी विचारधारा युग की प्रवृतियों से मेल नहीं खावेगी। कोई कलाकार किसी ऐसी कृति को जन्म नहीं दे सकता जिसमें उस युग का प्रभाव लक्षित न हो। चाहे वह लेखनी से कविता अथवा नाटक प्रस्तुत करे, तूलिका से कैनवैस पर चित्र रचना करे अथवा छैनी से किसी धातु की मूर्ति का निर्माण करे।

कुछ कलाकार युग की पुकार से परिचित होते हैं, कुछ नहीं। कुछ कलाकार युग की भावनाओं को व्यक्त करने में सजग रहते हैं कुछ का अनजान रूप रहता है परन्तु युग का प्रभाव अवश्य रहेगा। महाकवि कालिदास ने अपने काव्य में उस पक्ष का वर्णन नहीं किया जो क्लान्ति और उद्विग्नता से परिपूर्ण था। इससे तत्कालीन हेयावस्था और दुख का ज्ञान नहीं हो पाता। यह कवि की महानता थी जो बहुत विरले व्यक्तियों में पाई जाती है। महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का कथन है कि महाकवि कालिदास ने उस दयनीय और दुख पूर्ण दशा को विषपान के समान पी लिया और बाकी आनन्दमय भावनाओं को काव्य रूप में व्यक्त किया। मिश्र के कलाकारों ने

महानतम् पिरामिडों की रचना की। परन्तु उनको यह ज्ञान न था कि वे तत्कालीन जनता पर तत्कालीन सामन्तों के अत्याचार की झलक है। महान नाटककार जयशंकर प्रसाद ने जिन नाटकों को जन्म दिया उनमें तत्कालीन देश प्रेम तथा देश गौरव व्यक्त करने की भावना छिपी है। तुलसीदास के युग में, देश में हताशावस्था का प्रसार था। वीरगाथा काल की वीरता हार में परिणित हो चुकी थी। आधीन के लिए ईश्वर का ही बड़ा सहारा है। अतः तुलसी की अटूट भक्ति भावना के अनुरूप देश में भक्ति भावना का प्रचार हुआ। केशव के समय में वही भक्ति शृङ्गार में बदल गई। फल यह हुआ कि देश शृङ्गारिकता में डूब गया। अतः कवि अथवा कोई भी कलाकार कितना भी प्रयत्न करे कि वह युग के प्रभाव से अछूता रह जाय तो यह सम्भव नहीं। एलिजाबेथ के युग में शेक्सपीयर के नाटकों ने अनजान में समाज के जीवन में नवीन भावना और उत्साह का संचार किया। स्त्री और पुरुष के प्रत्येक पक्ष को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया, परन्तु क्या इससे उन नाटकों में युग की छाप स्पष्ट नहीं होती। मुगल काल और राजपूत काल की चित्रकला की छाप बिल्कुल भिन्न है कारण, इस पर युग का पूर्ण प्रभाव था। एक कालीन होने पर भी भिन्नता का आभास नहीं होना चाहिये था परन्तु ऐसा नहीं है।

जिस युग में जो कलाकार अपनी रचना करता है उस युग की छाप उस पर पड़ी है कि नहीं उसको ज्ञान नहीं। उसको सूक्ष्म प्रवृतियों का यदि ज्ञान नहीं है तो महान प्रवृतियों के सम्बन्ध में अवश्य जानता है। सब चित्रों में दो उद्देश्य अवश्य होते हैं। मानवता का उद्देश्य सबसे महान समझा जाता है। कलाकार यह प्रयत्न करता है कि वह साधारण जीवन की प्रतिष्ठा और इतिहास की रक्षा करे। वह साधन खोजे जिससे सामाजिक जीवन आदर्श बने। वर्तमान में सामाजिक आदर्श-वाद की भावना सबको प्रेरणा दे रही है। सामन्तवाद का लोप हो रहा है। अतः चित्रकार सर्वहाराजन को व्यक्त करके अपना जीवन सफल समझता है। प्रायः चित्रों में देखा जाता है

कि भिकमंगे को, जाड़े से काँपते हुए किसी व्यक्ति को, मल्लाह को डूबती नाव पर, बच्चों को भूख से तड़फते हुए उनके माता-पिता को रोटी की समस्या से चिन्तित और पशुओं को हाड मांस के ढांचे में आदि २ प्रकार के चित्रों से आजकल की चित्रशालाओं को सजाया जाता है। आर्ट गैलरी में मूर्तियां और चित्रों में भिन्न प्रकार के माध्यम से युग का प्रतिनिधित्व किया जाता है। दर्शक उन कला कृतियों को देखकर अनजान में वर्तमान युग की भावनाओं को देखता है परन्तु उनको प्रधानता नहीं देता।

प्रकृति का प्रतिनिधित्व कलाकार का अप्रधान उद्देश्य है। जीवन के संघर्ष और गति के कारण कृतियों में साधारण जीवन का प्रतिनिधित्व अधिक होता है यहाँ तक कि दृश्य चित्रों में भी जीवन की गति अपना स्थान विशेषतया रखती है। कोई दृश्य चित्र पूर्ण नहीं होता, यदि उसमें किसी मानव आकृति को स्थान न मिला हो। दृश्य चित्रण में कलाकार शान्ति का अनुभव करता है। जीवन में अशान्ति है। प्रकृति में शान्ति है, यही कारण है कि दृश्य चित्रण शान्ति प्रदान करता है।

कला समाज का दर्पण है। युग की कला-कृति उस युग के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान कराती है। युग की व्याख्या कला के द्वारा होती है और कला की व्याख्या युग के द्वारा ही हो पाती है। मौलिक रचनाओं के युग में उत्पादकता की अधिकता के कारण व्यक्ति के इतिहास तक को खोज किया जा सकता है। कभी २ युग का उत्थान जल्दी हो जाता है। पतन होने में विलम्ब लगता है। जहां उन्नति प्रगति पूर्ण होती है, कलाकार को युग से प्रेरणा प्राप्त होती है। उस समय कलाकार बहुत कहना अथवा चित्रित करना चाहता है परन्तु अपनी कला में दक्ष न होने के कारण वास्तविकता को व्यक्त नहीं कर पाता। जब युग का पतन होता है कलाकार की दक्षता की पराकाष्ठा होती है। वह युग से बहुत आगे होता है। कम कृतियों का निर्माण करता है परन्तु सुघराई और सौन्दर्य के व्यक्तिकरण में उनकी दक्षता होती हैं। सिद्धान्तों के प्रतिपादन और नियमों की संकीर्णता के पालन

करने के कारण वास्तविकता और सजीवता का लोप हो जाता है। फल यह होता है कि प्रगति की शीघ्रता में अद्भुत कार्यों को विशेष स्थान मिलता है और पतन की अवस्था में सैद्धान्तिकता को विशेषता मिलती है। हर युग में यह देखा गया है कि उच्च कोटि के कलाकारों की कृति में तत्व और आकृति, गौरव और सौन्दर्य पाया जाता है और प्रत्येक युग कालिदास और कला गुरु अवनीन्द्र नाथ जैसी आत्माओं को जन्म देता है।

उदाहरण के लिए चन्द्रवरदाई की रचना में वीर गाथा का चित्रण है। युग के प्रभाव से यवन-शासन के कारण वीरत्व कायरत्व में परिवर्तित हो गया और भक्ति का कवियों ने प्रतिपादन करना आरम्भ कर दिया। भक्ति की अश्लीलता शृङ्गार में बदली और कवियों में आचार्यत्व की भावना जागरूक हुई। कविता में भावना का स्थान कलात्मकता ने ले लिया। वर्तमान युग सर्वतोमुखी विकास का युग होने के कारण कृतियों में कलाकार की बहुमुखी प्रतिभा जगी। महान युग में इटली की कला की पराकाष्ठा की भावना के युग में भी यही बात देखने को मिलती है। आरम्भ के कलाकारों में सिमाव्यू और गैटो का स्थान मुख्य है। इन कलाकारों ने अपने शिष्यों की सहायता से जिन कला कृतियों को जन्म दिया वे आगे की कला कृतियों की अपेक्षा भाव प्रकाशन में पूर्ण सफल न थी परन्तु कलाकारों की सच्ची लग्न, गहरी भावना का मुख्य स्थान था। फ्रा एञ्जेलीको, फ्रा लिप्पी लिप्पो की कला कृतियाँ अधिक परिपक्वावस्था को प्राप्त हुईं परन्तु तब भी पूर्णता का अभाव था। रैफैल, लिनारडो और माइकेल एंजिलो की रचना में पूर्णता भासने लगी। अतः जहाँ पूर्णता की ओर अग्रसर हुए कि पतन की ओर उन्मुख होते दिखाई दिए। फलतः गोल्डस्मिथ मूर्तिकार, बैनबेनुटोसैलिनी, गायडोरेनी और कारलोडोलसी की रचनायें उस पराकाष्ठा को न प्राप्त कर सकी।

युग कलाकार के अनुकूल होने पर अधिक प्रगति देखी जाती है, प्रतिकूल

होने पर कम। युग का प्रभाव कला और साहित्य पर पड़े बिना रह नहीं सकता।

कलाकार का व्यक्तित्व निखरता है यदि उसकी कला कृतियों में सार्वजनिक हित की भावना अदृश्य रूप से कार्य करती है। मुगल काल की कृतियों में हिन्दू और मुसलमान कलाकारों को समान अवसर प्राप्त होने पर भी व्यक्तिगत प्रभाव से कला कृति अछूति नहीं है। हिन्दू चित्रकार ने राजपूत शैली में सम्राट अकबर के चित्र का चित्रण किया। कलाकार ने उसमें जिन भावनाओं को व्यक्त करने का प्रयत्न किया वे अधिकतर भारतीय भावनायें हैं। अतः यवन सम्राट के चित्र में भारतीय भावनाओं का प्रतिपादन अपरिचित व्यक्ति के लिए उसकी प्रकृति को बदल देगा। परन्तु इतना होने पर भी युग उसके साथ रहेगा।

★

अध्याय अष्टम्

कलाकार और जाति

संस्कृति का जन्म संस्कार से है। भारतीय परम्परा में १६ प्रकार के संस्कार होते हैं। अन्य जातियों में संस्कार का कोई स्थान नहीं है। संस्कृति अपरिवर्तनशील है। सभ्यता में युग के प्रभाव से परिवर्तन होता है। प्रत्येक मनुष्य के कुछ संस्कार बन जाते हैं उसी के आधार पर उसका जीवन घटित होता है। मनुष्य के जीवन में कुछ भावनायें कार्य करती हैं। उन्हीं भावनाओं से जीवन बनता और बिगड़ता है। कुछ मनुष्यों का जीवन अपने लिए ही होता है कुछ का समाज के लिए। जिनका जीवन समाज के लिए होता है उन्हीं के आधार पर समाज की दशा बनती और बिगड़ती है। युग जाति के जीवन में क्षण के समान हैं जो क्षण अच्छे होते हैं समाज की दशा को अच्छा बना देते हैं जो खराब क्षण होते हैं समाज की स्थिति को बिगाड़ते हैं। किसी जाति का चरित्र उसके वातावरण तथा मनुष्य के कृत्यों का परिणाम

है। एक बार जो प्रवृतियां बन जाती हैं समाज का जीवन वैसा ही ढलने लगता है। भारतवर्ष में समाज की प्रवृतियों में महान आदर्श की भावना का पूर्वजों ने संचार किया है। वही भावना अब तक विद्यमान है। कला और साहित्य में भी इसी की प्रमुखता है। अतः भारतवर्ष की भारतीय जाति के जीवन में धर्म की प्रधानता है वही प्रधानता मुगल काल तक बराबर घटित होती रही और अब भी कला की कृतियों में राधा-कृष्ण, सीता-राम, शंकर-पार्वती आदि का प्रमुख स्थान है। जिस प्रकार युग कलाकार की पृष्ठभूमि है उसी प्रकार जाति युग की पृष्ठभूमि है।

कला की सब कृतियों में किसी भावना का प्रकाशन होता है। वह प्रकाशन उस जाति का प्रतिनिधित्व करता है। स्वतन्त्र जाति और परतन्त्र जाति की कला कृतियों को अनुभव करें तो वहां जाति का चरित्र स्पष्ट हो जावेगा। यदि आधीन जातियों की कला कृतियों में सत्ताधारी जाति का प्रभाव नहीं है तो कला कृति में वास्तविक प्रतिनिधित्व करने की शक्ति नहीं है। डच और इटली के कला स्कूल (शैली) की दशा योरुप में वही थी जैसी मुगल और राजपूत में कला (शैली) की पाई जाती है। डच स्कूल का प्रभाव इटली की शैली पर था परन्तु जब किसी कला विशेषज्ञ के समक्ष दोनों कृतियां आती हैं तो वह दोनों के भेद को स्पष्ट कर देगा। डच शैली के चित्रण में कोमल और उदासीन भूरे रंगों का प्रभाव है। उन चित्रों के विषय सरल और धार्मिक हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने साधारण जीवन को मनमोंजी ढंग से व्यक्त किया है। इटली के चित्रों में चमकदार रंगों की चमक को अनुभव कराते हुए धार्मिक रहस्यात्मकता का पुट स्पष्ट दिखाई देता है। इसी प्रकार मुगल शैली और राजपूत शैली के चित्रों में विषय की विपरीतता के अतिरिक्त चटकीले और हलके रंगों का अन्तर स्पष्ट प्रतीत होता हैं। आलोचक अथवा कला पारखी इस को भली प्रकार अनुभव कर सकता है।

जाति की एक परम्परागत धारणा बन जाती है। मुसलमानों ने कला को अधिक प्रोत्साहन नहीं दिया। इसका कारण उनका धर्म इस प्रगति में बाधक था। यदि मुगल काल में कला की स्वर्णावस्था हुई तो इसका कारण उन पर भारतीय प्रभाव था। जहाँ बादशाह में धार्मिक कट्टरता मिलती है जैसी कि औरङ्गजेब में पाई जाती है वहाँ कला का ह्रास पाया जाता है। जब मुसलमान संस्कृति में मूर्तिकला और चित्रकला को उचित स्थान न मिल सका तो कला की प्रगति दूसरे क्षेत्र में बढ़ गई। मस्जिदों की सजावट में कला पुष्पित पल्लवित हुई। धर्म कला की प्रगति में बाधक हुआ परन्तु समय के प्रभाव से जाति पर कला का प्रभाव पड़े बिना न रह सका। यहूदी और ग्रीक कला में विरोध की मुख्य भावनायें जाग्रत होती हैं। यह सब जाति प्रभाव का फल है प्रत्येक युग में सब जातियों में सब ललित कलायें एक साथ नहीं पनपतीं। कभी यदि चित्रकला को प्रोत्साहन मिला तो अन्य कलायें सहायक के रूप में रहती हैं। एक जाति को एक ही ललित कला जागरुक करती है। ग्रीक जाति को मूर्तिकला से अधिक रुचि थी। मूर्तिकला एक सीमित कला है। ग्रीक जाति ने अपनी सभ्यता की सीमाओं को मूर्तिकला के प्रतिनिधित्व से प्रतिपादित किया। चित्रकला में मानव आकृति को प्रगति प्राप्त हुई। गृह निर्माण कला में सामंजस्य, नियन्त्रण और सादगी थी। ग्रीक के दर्शन पर मूर्तिकला की छाप है। प्लेटो और अरस्तू की व्याख्या में मूर्तिकला का प्रमुख स्थान है।

भारतीय बौद्धकाल में भित्ति चित्रों की प्रधानता रही। अन्य कलायें पनपी ही नहीं। परन्तु मध्ययुग में चित्रकला का स्थान मूर्तिकला ने ले लिया। यह जाति का प्रभाव था। बौद्ध धर्मावलम्बी जाति की प्रवृति वैष्णव, शैव और शाक्त में परिवर्तित हो गई। अतः मूर्ति की प्रधानता स्वाभाविक थी।

इटली की कला में चित्रकला की प्रधानता है। गम्भीर रंगों के द्वारा विचारों की प्रचुरता का सुन्दर विवेचन है। जीवन के अन्तंतम सूक्ष्मता को

स्पष्ट करने का स्वाभाविक प्रयास है। जर्मनी की कला में संगीत की प्रधानता है। संगीत में स्वाभाविक स्वर है। भावनाओं की गहनता है और कल्पना की ऊंची उड़ान है। अंग्रेजों ने सभी माध्यमों को अपनाया परन्तु एलिजाबेथ के युग का प्रतिनिधित्व नाटक के द्वारा हुआ। जीवन को व्यवहारिकता में ढालने का विशेष प्रयास किया और सामाजिक समस्याओं का सुलझाव अधिकतर अंग्रेज़ी कलाकार की गतिविधि है। राजपूत शैली में कला के धार्मिक व सामाजिक जीवन का व्यक्तिकरण है। परन्तु चित्र और मूर्तिकला को ही नहीं संगीत को भी समान स्थान मिला है।

जातीय प्रवृतियाँ एक दूसरे पर अवश्य प्रभाव डालती हैं। प्रत्येक जाति को अपने को व्यक्त करने के लिए बहुमुखी साधनों की आवश्यकता पड़ती है। इटली ने बड़े २ मूर्तिकार और कवियों को जन्म दिया। ग्रीक जाति के नाटककार संसार विख्यात हैं। उन्होंने अपनी आश्चर्य चकित कर देने वाली कृतियों के द्वारा जाति में नवीन भावना को जन्म दिया और समाज पनपा। जर्मनी की कला शैली प्रमुख रही परन्तु सदैव परिवर्तन को प्रमुख स्थान मिला। किसी भी जाति पर एक ही ललित कला का प्रभाव नहीं रहा। यदि कभी चित्रकला की प्रधानता रही तो कभी मूर्तिकला की। जाति भेद से कला का भेद भी स्थान पाता रहा। एक ही काल में दो कलाओं का दो भिन्न २ जातियों पर प्रभाव रहा। और उनका राष्ट्रीय जीवन उसी के अनुसार ढला।

किसी जाति के जीवन को यदि अनुभव करें तो स्पष्ट है कि वह उस नदी के समान है जिसमें वेग आता है और वह शान्त होता है। यही उस जाति के जीवन का उत्थान और पतन है, जो कला और साहित्य के द्वारा व्यक्त होता है। जिस प्रकार युग और कलाकार जाति के इतिहास पर प्रकाश डालते हैं उसी प्रकार जाति से भी कला की प्रगति का पता चलता है। युगों का जन्म जाति के उत्थान और पतन से होता है परन्तु प्रत्येक जाति के आधार भूत सिद्धान्तों में परिवर्तन नहीं होता और पूर्ण युग में वह सिद्धांत

अपना कार्य करते रहते हैं। प्रत्येक जाति की कला में एक सिद्धान्त होता है जिसको उस कला की रीढ़ या हड्डी कहना चाहिये। वह आद्योपान्त बनी रहती है। भारतीय कला की विशेषता है कि उसमें कल्पना की उड़ान बड़ी ऊंची है। उस कल्पना में सार्वभौमिकता है, सर्व हित की भावना है, और उसको व्यक्त करने का माध्यम रेखा द्वारा है, जो पूर्वी कला की विशेषता कहलाती है। भारतीय कला में रेखा की प्रधानता अन्य पूर्वी देशों से भिन्न प्रकार की है। यदि यों कहा जाय कि रेखा-चित्रण के माध्यम को भारत ने अन्य पूर्वी देशों को ज्ञात कराया तो इसमें अतिशयोक्ति न होगी, क्योंकि कल्पना के द्वारा जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है उनकी तिथि का ज्ञान अभी तक न हो सका और उनसे प्राचीन कोई अन्य सिद्धान्त स्वीकार नहीं किये गये। अजन्ता की गुफाओं के भित्ति-चित्रों को देखने से ज्ञात होता है कि रेखा-चित्रण भारत की पराकाष्ठा पर था और किन्हीं पूर्वी देशों में इस प्रकार की परम्परा इतनी प्राचीन नहीं पाई जाती। विषय के प्रतिपादन में धार्मिकता का पुट परम्परागत है। इसी प्रकार अंग्रेजी साहित्य में सार्वभौमिक भावना का बड़ा प्रगाढ़ स्थान है। इस भावना की परिभाषा नहीं की जा सकती बल्कि इसको अनुभव अधिक किया जा सकता है। इस सबके अन्तर्गत गम्भीर चारित्रिक सत्यता का प्रमुख स्थान है। युग की प्रमुखता है। सर्दी के बाद गर्मी और गर्मी के बाद सर्दी आती है। युग यों ही परिवर्तित होता है परन्तु कौन पहिले आता है यह जानना कठिन है। कोई भी नहीं जान सकता।

कला की पृष्ठभूमि में तीन मुख्य कारण हैं जो जाति, युग और कलाकार के नाम से पुकारे जाते हैं। प्रत्येक कला कृति में तीन कारणों का मुख्य सहयोग है जो एक दूसरे का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। मुख्य जातिगत है, इससे अधिक निश्चित और मुख्य जो कला को अपने प्रभाव में ढालता है वह युग है। कलाकार का अनुभव उसकी साधना और व्यक्तित्व जो प्रत्येक कला कृति को प्रभावित करता है उनके सम्बन्ध को क्रमशः जाति, युग, कलाकार और कला के रूप में अनुभव कर सकते हैं। मानवता एक अथाह समुद्र के समान है। कला की कृति एक सीपी के समान है जो समय रूपी किनारे पर पाई जाती है। कलाकार की कृति मौन रूप से वायु मण्डल में प्रतिध्वनित होती रहती है।

अध्याय नवम्

कलाओं का समन्वय

विश्व के कला-सिद्धान्तों पर यदि विचार किया जाय तो यह स्पष्ट है कि कुछ सिद्धान्त सब में समान रूप से पाये जाते हैं। अनुपात, सजीवता आदि ऐसे सिद्धान्त हैं जिन पर दो मत की बात सोचने को बनती ही नहीं। इन सब से भी महान सिद्धान्त जो सार्वभौमिक है वह मानव भावना का होना है। जिस कला में मानव भावना जितनी अधिक होगी वह उतनी ही महान समझी जायगी। कोई भी तत्व किसी कला-कृति में कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो मानवता का स्थान सर्वोपरि है। मूर्तिकला और चित्रकला में कल्पना का स्थान प्रमुख होता है। कल्पना की उड़ान जितनी ऊँची होगी कला-कृति उतनी ही महान होगी। चित्र-कृति दर्शक से संगत पूर्ण होगी। इस कला-कृति के मूल्यांकन में दृष्टि का महत्व होगा परन्तु संगीत में इसके विपरीत श्रवणेन्द्रिय द्वारा चित्त-वृत्ति से सीधा सम्बन्ध रहता

है। काव्य में दोनों का समान महत्त्व रहना है और तभी सामंजस्य अनुभव किया जाता है। इन कलाओं में स्थान का अधिक महत्व नहीं होता। काव्य में स्थान की आवश्यकता होती है। संगीत में स्थान का कोई महत्व नहीं होता। जिन कलाओं में स्थान की विशेषता रहती है आकृतियाँ स्थिर रहती हैं और आनुपातिक रूप से स्थायी मानी जाती हैं। संगीत में ध्वन्यात्मक आकृतियाँ गति प्राप्त कर लेती हैं और अप्रत्यक्ष श्रृङ्खला में पाई जाती हैं। रूप पूर्णतया अपूर्ण रहता है। इस प्रकार समस्त कला-कृतियों के द्वारा हमको इन्द्रिय सम्बन्धी आनन्द प्राप्त होता है। दर्शक इतना विभोर हो जाता है कि उसको अपना ज्ञान भी नहीं रहता। जो सौन्दर्यात्मक अनुभूति दर्शक को होती है वह अवर्णनीय है। चर्म चक्षुओं के द्वारा ज्ञान चक्षुओं तक सूचना पहुँचती है। चर्म क्षुओं के द्वारा मूर्ति और चित्रकला को अनुभव किया जाता है। संगीत में श्रवणेन्द्रि का कार्य प्रमुख है। कला-कृति की सुन्दरता व्यापकता और उपयोगिता को अनुभव करने के लिए कर्ण और चक्षु दो की ही सहायता प्रमुख मानी जाती है। कल्पना का स्थान सर्व श्रेष्ठ है। भारत की कला इसी कारण कल्पना प्रधान है। कलाकार सौन्दर्यात्मक अनुभूति से ओत-प्रोत है वह उस अनुभूति को अनुभव करके किसी एक माध्यम के द्वारा उसे व्यक्त करता है।

आकृति के भिन्न २ रूप होते हैं। वह प्रत्येक कला में भिन्न प्रकार से भिन्न रूप में कार्य करती है। मूर्ति और चित्रकला में आकृति की प्रधानता है वही आकृति संगीत में लय का स्थान ग्रहण कर लेती है। वही लय सामंजस्य को बल देती है। काव्य में वही आकृति छन्द के रूप में स्थान ग्रहण करती है। छन्द, दोहा, सोरठा आदि के द्वारा भिन्न २ सिद्धान्तों से कलाकार की कविता पनपती है। विचारों की उचित व्यवस्था को प्रमुख स्थान रहता है। जिन कला कृतियों में स्थान और सौन्दर्य की विशेषता रहती है रंग का स्थान सर्व श्रेष्ठ रहता है। संगीत में रंग का स्थान लय और स्वर-भेद तथा काव्य में ध्वनि और स्वर का आरोह और अवरोह, लय और

शब्दों का माधुर्य ग्रहण करता है। प्रत्येक कला की गतिविधि तथा कार्य प्रणाली भिन्न है। एक कला की गतिविधि दूसरी से बिल्कुल विपरीत है परन्तु सब की अपील समान है।

एडवर्ड होवर्ड गिग्रस का कथन है कि आध्यात्मिक ज्ञानी और कलाकार में मुख्य संघर्ष इस बात पर रहता है कि एक सत्य को खोज जीवन की बौद्धिक भावनाओं में खोज करता है दूसरा जीवन की सजीव आकृतियों के मौलिक प्रकाशन में खोज पाता है। गिग्र महोदय इस दशा में कलाकार के साथ हैं। असीम की खोज ससीम के द्वारा हो सकती है। किसी आदर्श को वास्तविक अनुमान किया जा सकता है यदि यह प्रयत्न किया जाय कि आदर्श को किसी पदार्थ रूप में कार्यान्वित किया जाय।

प्लेटो ने "रिपबलिक" के अन्तिम अध्याय में यह स्पष्ट किया है कि कला प्रतिलिपि भी प्रतिलिपि के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस भावात्मक विचार में वास्तविकता है। वास्तविक स्वरूप परब्रह्म का है। माया उसका प्रतिरूप है। कलाकार की प्रति उस प्रतिरूप का भी प्रति रूप है अतः न प्रकृति की प्रतिलिपि पूर्ण है न कलाकार की, बल्कि यों कहना चाहिये कि कलाकार की प्रति दुगनी अपूर्ण है, और वास्तविकता से उतनी ही परे है। यह धारणा सार्वभौमिक नहीं है। होमर तथा उसी के समान अन्य कलाकार इसको स्वीकार नहीं करते। भारतीय कलाकार की तो यह धारणा किञ्चित मात्र नहीं है। मौलिक कृति को जब कलाकार जन्म देता है तब उसको प्रतिलिपि कहना कहाँ तक ठीक है। सांसारिक पदार्थों के द्वारा प्रकृति के वास्तविक रहस्य को जानना सरल कार्य नहीं। ज्ञानी ज्ञान के द्वारा सृष्टि के वास्तविक स्वरूप को जान पाता है। कलाकार कला की सतत साधना के द्वारा प्रकृति के रहस्य का निरूपण करता है। वास्तव में भावात्मक वस्तु के आन्तरिक रहस्य को जानकर ही कलाकार अथवा ज्ञानी कला कृति के सामंजस्य का अनुभव करता है। मानव से वस्तु को तभी कलाकार जान सकता है जब पहिले मानव को पहचाने। मानव को पहचानने से मानवता का अनुभव

होगा । आत्मा में परमात्मा के स्वरूप का अनुभव ही प्रकृति का रहस्य है जिसको कलाकार ससीम करके व्यक्त करता है । रहस्यवाद तथा छायावाद के हिन्दी कवियों ने ससीम में असीम का निरूपण किया है और अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है । इसी प्रकार मारलो का डाक्टर फास्टस, शेक्सपीयर के हैमलेट, मिल्टन के पैरेडाइस लौस्ट आदि में प्रकृति के रहस्य का भावात्मक निरूपण है । प्लेटो ने सज्जन का बड़ा कलात्मक निरूपण किया है । प्रकृति का निरूपण वास्तव में मानवता का निरूपण है । गेटे ने हैलेना का वर्णन किया है इस वर्णन में सुन्दरता का भावात्मक निरूपण है ।

कला का सामंजस्य उन तत्वों में ही नहीं है जो सब प्रकार की कलाओं में पाये जाते हैं बल्कि उस वैविध्य में ही निहित है जिनसे उन कला कृतियों का निर्माण हुआ है । जहाँ इस प्रकार का वैविध्य है और कला कृति का निर्माण बहुत से तत्वों से होता है वहाँ एक कला प्रत्यक्ष होती है और बाकी कला के तत्वों का लोप हो जाता है । गीत मिली हुई कला कृति का बड़ा सुन्दर उदाहरण है । इसमें काव्य और संगीत की सम्मलित अपील है । काव्य में संगीत की प्रमुखता नहीं रहती । जो संगीत-यन्त्रों की सहायता से होता है उसमें सम्मलित साधनों की प्रमुखता रहती है अन्यथा वह सफल ही नहीं हो पाता । लय का सामंजस्य प्रमुख है · इसके विपरीत वाणीयुक्त संगीत में स्वर की आवश्यकता रहती है और यन्त्रों के सामंजस्य के बिना भी वही आनन्द प्राप्त होता है जो यान्त्रिक संगीत में पाया जाता है । कथा-वार्ता में, वेद-मन्त्रों के उच्चारण में, गिरजाघरों में पादरियों द्वारा गायन आदि में स्वर संगीत ही रहता है । अतः काव्य की प्रमुखता रहती है । शब्दों की स्पष्टता की आवश्यकता और प्रधानता होती है । अतः संगीत का महत्व नहीं रहता । आभिजात्य (classical) संगीत में ध्वनि तथा उसके सहयोगी यन्त्र की प्रधानता होती है ।

कला कृति की रचना महान ध्येय की पूर्ति के लिए की जाती थी । विश्व भर की कला का आरम्भिक जीवन इसका उदाहरण है । गिरजाघरों में

नाटक धर्म के प्रचार हेतु होते थे। कविता में धर्म प्रचार की प्रधानता थी। चित्रों के चित्रण और मूर्तियों की रचना में भी यही बात निहित थी। उद्देश्य की महानता कृति को महान बना देती है और कलाकार को अमरत्व प्रदान करती है। जहाँ कविता के द्वारा धर्म प्रचार का उद्देश्य पूर्ण होता है वहां संगीत का कार्य भी धर्म प्रचार है। चित्र और मूर्ति मूक होकर वही प्रचार करते हैं। चित्र की आकृतियों–तथा मूर्तियों की चितवन दर्शक को गहन रूप से आकर्षित करती है। भावना का दर्शक के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। वेगनर द्वारा रचे हुए वे नाटक जो काव्यमय हैं अधिक सफल सामाजिक नाटक माने जाते हैं। वेगनर के नाटकों में कला की सभी प्रकार की पूर्ण झलक है। सभी कलाओं का समावेश है साथ २ संगीत की विशेषता है। इस प्रकार चित्र, मूर्ति, भवन निर्माण, काव्य, नाटक, नृत्य और संगीत सभी सम्मलित कला में विविध प्रकार की सार्वभौमिक हित की अपील करने में पूर्ण सहयोग देते हैं। वेगनर का कथन है कि काव्य और नाटकीय कृत्य कला कृति में केन्द्रीभूत होते हैं। इनकी प्रधानता रहती है और संगीत सम्मलित रहता है। परन्तु वेगनर के कुछ शिष्यों का कथन है कि संगीत की प्रधानता रहती है बाकी काव्य और नाटकीय कृत्य गौण होता है।

जब कला कृति चित्र वृति को तरङ्गित करती है तो संगीत की गति का मुख्य कार्य होता है। अतः आरम्भ से अब तक संगीत की प्रगति के भिन्न स्वरूप देखने को मिलते हैं। संगीत के उत्थान में देश काल का विशेष स्थान है। अन्य कलाओं की भांति इसमें मूर्तरूप बहुत कम रहता है।

अध्याय दशम्

मूर्तिकला का अभिप्राय और कार्य

भारत में मूर्तिकला का जन्म बौद्ध काल के बाद हुआ है। जब तक धर्म का ज्ञान न था, मूर्ति का कोई स्थान न था। समाज का उद्देश्य सुखी जीवन व्यतीत करना था। उस सुख में खाना, पीना और आनन्द करना ही मुख्य उद्देश्य था। शिकार करके उसी को खाने और आनन्द करने वाले जीवन में धर्म का स्थान न था। बौद्ध काल में चित्रकला की प्रधानता थी। बौद्ध-काल के बाद धर्म का परिवर्तन हुआ। देश के वातावरण में वैष्णव, शैव, शाक्त आदि मतावलम्बी समाज में मूर्ति का प्रधानत्व रहा। तभी से भारत में मूर्ति का जन्म माना जाता है। मूर्तिकला का विवेचन करना इस कारण सरल है कि यह कला और कलाओं की अपेक्षा अधिक सीमित है। भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है अतः देवी देवताओं का यहां अभाव नहीं है। यह कहा जाता है कि भारत में तेतीस कोटि देवता हैं। जहां इतनी संख्या में देवता

हों वहां उनका प्रतिनिधित्व चित्रों अथवा मूर्तियों के द्वारा ही होगा। अतः भारतवर्ष में मूर्ति को आरम्भ से ही प्रधानता रही, और वह अभी तक बराबर दिनोदिन उन्नतिशील है। घर घर में सालिग्राम की मूर्ति की पूजा होती है। प्रत्येक भारतीय गृहस्थ के यहां एक स्थान ठाकुर जी का अवश्य है। भारतवर्ष के अतिरिक्त अन्य पूर्वी देशों में भी धर्म की प्रधानता रही। भगवान बुद्ध की मूर्ति अधिकाधिक संख्या में समस्त पूर्वी और सुदूर पूर्व के देशों में पाई जाती है। भारत तथा पूर्वी देशों के अतिरिक्त भी योरुप में महात्मा ईसा के भिन्न २ स्वरूप पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त विद्या की देवी, सुन्दरता की देवी आदि बहुत सी देवियों की प्रतिमा पाई जाती हैं। वीनस डी मिलो की प्रतिमा भी उसी प्रकार की एक विख्यात प्रतिमा है। इस मूर्ति की बहुत सी प्रतिलिपियां हुई हैं। लौवर के लम्बे बरामदे को पार करके जब आप वीनस डी मिलो की मूर्ति के समक्ष खड़े होंगे तो आपको प्रथम बार में ही एक मानसिक ज्ञान प्राप्त होगा। आप आनन्द में विभोर हो जावेंगे। भारतवर्ष में ऐसी विशाल मूर्तियों की सीमा नहीं है। वृन्दावन में श्री बांकेबिहारी की मूर्ति की ऐसी ही विशालता है। उज्जैन के महाकाल के मन्दिर में भगवान शंकर तथा गणेश भगवान का स्वरूप भी ऐसा ही प्रभावशाली है। मूर्ति के सम्मुख खड़े होकर हमारी चित्तवृति बिल्कुल परिवर्तित हो जाती है। हम महान शक्ति का अनुभव करने लगते हैं। एलौरा और ऐलीफेन्टा की गुफाओं में जो मूर्तियों का निर्माण हुआ है वह मध्ययुग का प्रतिनिधि स्वरूप है। भगवान कृष्ण की त्रिभंगी प्रतिमा, भगवान शंकर का ताण्डव नृत्य दर्शक को अवर्णननीय आनन्द प्रदान करते हैं। एक पश्चिमी प्रसिद्ध प्रतिमा का विवेचन करें तो स्पष्ट होगा कि उसमें सामाजिक विशेषता अवश्य मिलेगी। सामाजिक विशेषता के आगे कुछ नहीं मिलेगा परन्तु भारतीय प्रतिमा की आलोचना करें और उसके प्रभाव का अनुमान करें तो स्पष्ट होगा कि उसमें सामाजिक प्रभाव के अतिरिक्त एक आध्यात्मिक आलौकिक शक्ति का आभास मिलेगा जिसमें मानवता से परे

शक्ति का अनुभव होगा। भारतवर्ष में मूर्तियां परम्परागत हैं। धर्म के साथ व्यवहारिकता का पुट है। स्त्रियाँ भिन्न २ उत्सवों पर साधारण मिट्टी की मूर्तियाँ बनाकर पूजती हैं यद्यपि वह आनुपातिक ढंग से शुद्ध नहीं बनती पर उसमें जग-हित की भावना होती है। व्यक्तिगत कल्याण स्वत: ही निहित होता है। अत: बड़ी लोक प्रिय होती है। इन मूर्तियों की आराधना अर्चना में इन्द्रियों को तृप्त करने वाला सुख ही नहीं बल्कि उससे परे सुख भी निहित होता है। यह भारत की उन मूर्तियों की दशा है जो साधारण नारी द्वारा अपनी मनोकामना की तृप्ति के लिए निर्मित की गई हैं। जिन आकृतियों में आकार, अनुपात, सजीवता और महान उद्‌देश्य रहता है उनके प्रभाव का कैसे वर्णन किया जाय।

योरुप के मिलो की प्रणय देवी की मूर्ति का विवेचन मूर्ति सम्बन्धी पाश्चात्य भावों का प्रतिपादन करेगा। सहस्रों वर्ष पूर्व सुन्दर संगमरमर द्वारा निर्मित यह मूर्ति कोमल रंगों द्वारा सुसज्जित तत्कालीन लोक भावनाओं को व्यक्त करती हैं। रेखाओं में सामंजस्य आकृति की सुदृढ़ता, उत्तम मुद्रा, टेढ़ी गर्दन पर सिर झुका है, मुख सुन्दर और रंगों की कोमलता, सब मिलकर मानसिक सुख प्रदान करते हैं। नारी के नारीत्व का आदर्श तथा उत्तम ज्ञान इसकी आध्यात्मिक विशेषता है। यह नारी साधारण न होकर नारी की आदर्श प्रतिमा है। यह वह नारी है जिसका स्वरूप प्राप्त करने की भावना प्रत्येक नारी को उत्कट रूप से होती है और होनी भी चाहिये। यह सार्वभौमिकता की पराकाष्ठा है। यदि इस मूर्ति को दैवी मूर्ति कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। इन्द्रियजनित सुख तक ही यहाँ इस मूर्ति का अवलोकन पूर्ण नहीं होता बल्कि एक सौन्दर्यात्मक अनुभूति होती है जिसमें भावना का सजीव व्यक्तिकरण है। पाश्चात्य कला वास्तविक है यहाँ नारी की आदर्श अनुभूति को प्रकृति की प्रतिलिपि के रूप में व्यक्त किया है। शारीरिक और आत्मिक दोनों आनन्द समान रूप से इसके अवलोकन से

प्राप्त होते हैं। मूर्तिकला द्वारा एक क्षण की भावना को कलाकार व्यक्त करता है। किस छवि को कलाकार अपनी छैनी द्वारा निर्मित करता है, कि दर्शक उसे देखकर विभोर हो जाता है। उकताता नहीं बल्कि सतत ध्यानावस्थित होकर उसे देखने में अपरमित समय के लिए विभोर हो जाता है। यहाँ कला की पराकाष्ठा हो जाती है। और सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की अधिकाधिक मात्रा दृष्टिगोचर होती है। इस चित्र में कलाकार ने प्रकृति की प्रतिलिपि अङ्कित की है। परन्तु रचना मौलिकता लिए हुए है।

प्रत्येक महान मूर्ति से इन्द्रिय जनित सुख, निश्चित धारणा, सौंदर्यात्मक अनुभूति आदि साधारणतया प्राप्त होते हैं। कला कृति में गति होती है तो वह कला कृति उत्तम समझी जाती है। एक क्षण में इतनी महान भावना को मूर्त रूप देना कलाकार की सतत साधना का फल होता है। जब किसी कला कृति को देखते २ दर्शक उकतावे नहीं बलिक अधिकाधिक देखने की इच्छा करे तो कृति की महानता की सूचना मिलती है। कौन कला कृति कितनी महान है इसके लिए कोई मापदण्ड नहीं है। यह व्यक्तिगत धारणा है। भगवान के चित्र को देखकर भक्त का हृदय विह्वल होगा, एकाग्र होकर देखता ही रह जायगा, किसी तारिका के चित्र को देखकर तारिका प्रेमी उसी में लिप्त हो जावेगा। चित्र के विषय का दर्शक से जब सामंजस्य होगा तभी दर्शक को चित्र आकर्षक लगेगा अन्यथा नहीं। काव्य की प्रियता भी कवि की भावनाओ के सामंजस्य के साथ ही होगी। आज अतुकान्त और आधुनिक प्रणाली की कविता का युग है। जिनको यह कविता प्रिय मालूम पड़ती है उनको प्राचीन नियमित काव्य में रुचि नहीं है। इसी प्रकार प्राचीन काव्य प्रेमी के सम्बन्ध में यह धारणा बनती है।

ग्रिग महोदय ने आधुनिक कला कृति के सम्बन्ध में जो विचार प्रगट

किये हैं उनके आधार पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि इस काल में प्रकृति के एक निश्चित पक्ष का प्रतिपादन हुआ है। विचारने के लिए आदर्श सुन्दरता का विशेष महत्व बतलाया है। यह युग कार्य परायणता का युग है। समाज के विचार में समय का मूल्य अधिक है। विज्ञान के आविष्कारों ने समय और स्थान पर अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया है। ज्ञानी किसी युग में जिस बात को ज्ञान के द्वारा जान पाते थे विज्ञान की कृपा से सम्पन्नता के क्षेत्र में वही साधन विद्यमान है। टेलीफून, बेतार का तार, हवाई जहाज और टेलीविज़न आदि के द्वारा एक स्थान पर ही बैठकर सब वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इन कारणों से मनुष्य को शान्ति का अनुभव नहीं होता मस्तिष्क को शान्ति प्राप्त नहीं होती परन्तु आधुनिक युग की कला कृतियों के अवलोकन से मनुष्य शान्ति का अनुभव करता है। सांसारिकता से उसको विश्राम मिलता है। रंग की चटक, कृति की मौलिकता, भाव प्रकाशन में साँमजस्य थोड़े समय के लिए मन को सांसारिक चिन्ताओं से अलग करके शान्ति की ओर ले जाता है। कला प्रदर्शनियों में, चलचित्रों के अवलोकन से भी मन में दर्शक शान्ति का अनुभव करता है परन्तु उसकी सौंदर्यात्मक अनुभूति कितनी जागृत होती है विचारणीय है। कलाकृति सौंदर्यात्मक अनुभूति को अवश्य जागृत करती है परन्तु इसका माप कलाकार की साधना है।

मूर्तिकला और चित्रकला में एक ही भाव को सीमित रूप से व्यक्त किया है अतः वह भाव इतना मुख्य और प्रभावशाली होना चाहिए कि उस भाव के चित्रण से ही अन्य भावों को भी अनुमान किया जा सके। वर्तमान में कलाकार प्रकृति के चित्रण में विश्राम अनुभव करता है। युद्ध के चित्र उस को इतना प्रभावित नहीं करते जितना प्रकृति चित्रण प्रभावित करता है। आकृति चित्रण में भी दृश्य को स्थान दिया जाता है। सब प्रकार से कलात्मक प्रभाव की विशेषता रहती है।

मेट्रोपोलीटन गैलरी के एक चित्र को वर्णन करते हुए ग्रिग महोदय ने वर्णन किया है कि इस चित्र में सम्राट नेपोलियन एक सफेद घोड़े पर सवार है

उसके जनरल सब उसके साथ हैं। बहुत फौज उसके साथ गतिपूर्ण है। इस चित्र में जितनी गति प्रदर्शित की गई है बहुत कम चित्रों में अनुमान की जाती है। गति के प्रदर्शन का यह अद्वितीय चित्र है। इस चित्र को देखने की अधिकाधिक भावना जागृत होती है। ग्रिग महोदय का कहना है कि मैं तो इस चित्र के समक्ष आत्म विभोर हो जाता था। अपने कष्टों को भूल जाता था। और सतत देखता था। मुझे तो समय का ज्ञान ही नहीं होता था जब मैं इस चित्र का अवलोकन करता था। वृन्दावन में भी बांके बिहारी की एक बड़ी विशाल मूर्ति है दर्शक उनके दर्शन करके विभोर हो जाता है। अपरिमित समय तक टकटकी लगा कर बराबर दर्शन में लीन हो जाता है। कहते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास जी भी एक बार वृंदावन पधारे और बांके बिहारी की मूर्ति के दर्शन से बड़े प्रभावित हुए परन्तु वे अपने आराध्य देव भगवान श्री राम की मूर्ति के दर्शन के बड़े इच्छुक थे और किसी भी देवता के समक्ष वे नत मस्तक नहीं होते थे अतः बोलेः—

कहा कहौं छबि आज की भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवे जो धनुष बाण लेउ हाथ।।

कहते हैं कि तुरंत मुरली छोड़कर भगवान ने धनुष बाण लेकर अपने आराधक की इच्छा पूर्ण की। अतः इस मूर्ति में चितवन की विशेषता है। कोई २ कलाकार ऐसी मूर्ति का निर्माण कर देता है कि उसके हाथ चूमने को जी चाहता है।



अध्याय ग्यारह

–चित्रकला का अभिप्राय और कार्य–

चित्रकला का जन्म मूर्तिकला के पश्चात् हुआ होगा। भारतीय इतिहास के अश्रृंखलावद्ध होने के कारण यह निश्चय करना कठिन है चित्रकला का जन्म पहिले हुआ या मूर्तिकला का। आर्य काल में मूर्ति का क्या स्थान था यह स्पष्ट नहीं। महाकाव्य-काल में रामायण आदि ग्रन्थों से स्पष्ट है कि भगवान राम ने रामेश्वर की स्थापना की थी। सेतु बंध रामेश्वर के महात्म्य को स्वयं वर्णन किया है। अत: मूर्ति की स्थापना की चर्चा है। चित्रकला के इतिहास में मध्यकाल तक मूर्ति की रचना का कोई स्थान नहीं है। एडवर्ड हावर्ड गिग्रस का कथन है कि आरम्भ में मूर्ति की रचना हुई और मूर्ति की रचना के पश्चात् मूर्तियों को भित्ति आदि सपाट स्थलों पर चित्रित किया गया होगा। लोक परम्परा में विभिन्न भारतीय त्योहारों और व्रतों पर स्त्रियों के द्वारा चित्रों की रचना का बिवरण मिलता है साथ ही साथ मूर्तियों का भी निर्माण हुआ। गनगौर की मूर्ति, भैया दूज की मूर्ति,

गोवरधन की मूर्ति की हिन्दू त्यौहारों में बड़ी परम्परा है। साथ ही साथ हिन्दू नारियाँ करवा चौथ, अहोरी अष्टमी, रक्षा-बन्धन आदि के चित्र बिना किसी क्रम वद्ध शिक्षा के बनाती हैं। अतः यह विवाद-पूर्ण है कि मूर्ति की रचना पहिले हुई कि चित्र की। मूर्ति के पश्चात् रिलीफ के द्वारा सपाट भूमि पर चित्र की रचना हुई। पाश्चात्य विद्वानों ने ऐसा स्वीकार किया है।

प्राचीन विश्व के इतिहास को देखने से विदित होता है कि आरम्भ में कला-कृति का निर्माण धर्म के लिए धार्मिक भावनाओं के प्रचार हेतु हुआ। योरुप में एक विख्यात चित्र में एक अप्सरा बालक वैचस को गोद में बैठाले हुए है। यह चित्र ट्राजन की अदालत अथवा लेटरन के संग्रहालय में पाया जाता है। अप्सरा वैचस को बकरी का दूध पिला रही है। बकरी अप्सरा के चरणों के समीप चर रही है। कृषि के देवता का बालक बाँसुरी बजा रहा है। पृष्ठभूमि में एक पहाड़ी है उसके ऊपर पेड़ है जिसमें छोटी चिड़ियों का घौंसला है। एक साँप उस वृक्ष से लिपटा हुआ है। जो छोटे २ चिढ़ियों के वच्चों को खा जाने की कोशिश में है उनकी मां उसको डराकर भगाने की कोशिश कर रही है। जहाँ तक आकृति का सम्बन्ध है यह मूर्तिकला की पृष्ठभूमि के आधार पर है इसमें भावना चित्रकला की है। इस प्रकार के उदाहरण भारतीय चित्रकला में ऐलीफेन्टा, एलौरा, बादामी सित्तनवासल आदि स्थानों के भित्ति-चित्रों में पाये जाते हैं। शैली में पूर्ण समानता है और विषय भी दोनों धार्मिक हैं। अन्तर इतना ही है कि वहाँ ईसाई धर्म का प्रतिपादन हुआ है यहाँ हिन्दू धर्म तथा बौद्ध की भी झलक है। अतः प्राचीनतम कला-कृतियों में धार्मिक भावना का पूर्ण प्रभाव है। मूर्तिकला में आकृतियों की संख्या सीमित रहती है परन्तु यहाँ बहुत सी आकृतियों को एक समूह में व्यक्त करने का सफल प्रयास है। कला-कृति के नियमों का पूर्ण पालन किया है। आकृतियों के प्रदर्शन में जिस संतोषप्रद वास्तविकता

का चित्रण होना चाहिये था, उसका अभाव है। समस्त चित्र के निरीक्षण से कलात्मक भ्रान्ति स्पष्ट लक्षित होती है।

इनके विपक्ष में पोम्पेई के भित्ति-चित्र का अध्ययन रिलीफ के चित्र अथवा चित्रों की साधारण शैली के अन्तर को स्पष्ट करने में अधिक सहायक होगा। यद्यपि पोम्पेई के भित्ति-चित्र दक्ष कला-कृतियां नहीं मानी जाती हैं परन्तु परम्परागत कलाकारों द्वारा निर्मित कला-कृतियों की पूर्ण विशेषता रखती है। पाश्चात्य कलाकारों की धारणा है कि मूर्ति के पश्चात् चित्रों का निर्माण हुआ। भारतीय कलाकारों के कथनानुसार चित्रकला के पश्चात् मूर्तिकला का निर्माण हुआ। अतः पाश्चात्य शैली के अनुसार पोम्पेई की चित्रकला में मूर्तिकला की विशेषतायें पूर्णतया पाई जाती हैं। यह विशेष प्रकार से मूर्ति का रूप ही रहा और बाद में चित्र में परिवर्तित हुआ। सपाट भूमि पर खोदकर भिन्न २ प्रकार के चित्रों की रचना की है। इन चित्रों का विषय धार्मिक है। कामदेव काफी संख्या में नृत्य करते हुए अलंकारिक रूप से कतारों में चित्रित किये गये हैं। चित्रों में कमरे का दृश्य अथवा बाग का दृश्य साथ २ पृष्ठभूमि हलकी चित्रित की गई है। भित्ति-चित्रों में रंगों का प्रयोग उसकी विशेषता को दुगुनी करता है। प्राचीन काल के भित्ति-चित्रों में मूर्तियों से रंग के प्रभाव के कारण अधिक आकर्षण है।

योरुप में चित्रकला की पराकाष्ठा का युग उस समय आता है जब इटली में पुनुरुत्थान काल था। ऐकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स में ऐडम और ईव का एक विख्यात चित्र है। मिल्टन द्वारा रचित पैरेडाइस लौस्ट में एडम और ईव का वर्णन आता है उन्हीं एडम और ईव के चित्र यहाँ चित्रित हैं। यह दोनों नग्न आकृतियां हैं। ईव एडम को सेव दे रही है यह उस समय का दृश्य है। इनका रचयिता टिनटोरेटो कहा जाता है उसने इस चित्र में एक कोने में बिल्कुल अनोखी दो छोटी २ आकृतियों को चित्रित किया है जिनको जलती तलवारों से फरिश्तों ने बाग से बाहर निकाला हुआ दिखाया

है। समस्त चित्र पर सुनहरी प्रकाश है। कोमलता है। परिपक्वता की भावना है।

कला की कृति से असम्भूत मानसिक सुख प्राप्त होता है। इन्द्रियां सुखमें विभोर हो जाती हैं। इस चित्र में भी आकृति का आनुपातिक चित्रण, केन्द्रीय आकृति की प्रधानता और समीप की आकृतियों की गौणता तथाकेन्द्रीय आकृति को सुन्दर बनाने में सहयोग की भावना, समस्त चित्र पर समान प्रभाव, मुख्य विषय का उचित प्रतिपादन आदि सभी हैं। ईव के उकसाने से एडम ने स्वर्ग के बाग के सेव बिना आज्ञा के खाये हैं। सब का समान चित्रण इसकी विशेषता है। सौन्दर्यात्मक अनुभूति और कला तथा विचारों का उचित सामंजस्य तथाभावों का प्रकाशन, कला तत्वों की सम्यक् रचना, प्रत्येक दर्शक को समान अनुभव होती है।

कलाकार ने समस्त आकृतियों को प्रकृति से प्राप्त किया है अतः प्रकृति की वह प्रतिलिपि है। आदर्श महान है। मूर्ति के चित्रण में महान आदर्श की विशेषता रहती है। परिप्रेक्ष्य की भ्रान्ति के द्वारा सपाट सतह पर उभार और दबाव के अनुसार सफल अंकन ही नहीं बल्कि कलाकार को पूर्ण अनुभव, ज्ञान और साधना का सफल परिचायक है।

मूर्ति के सदृश चित्र में भी एक ही समय की एक घटना विशेष का प्रतिपादन होता है। विषय ऐसा निश्चित किया जाता है जो उस कथानक का मुख्य भाग हो जिसका प्रभाव पूर्ण कथानक पर पड़ता हो। मुख्य घटना यदि एक से अधिक होती हैं तो चित्रों की संख्या भी बढ़ जाती है। अजन्ता के भित्ति-चित्रों में विषय का प्रतिपादन करने के लिए भगवान बुद्ध के जीवन की मुख्य २ घटनाओं का चित्रण हुआ है।

भारत में चित्रकला को अन्य ललित कलाओं की अपेक्षा अधिक गौरव प्राप्त हुआ। धर्म प्रधान देश होने के कारण चित्रकला के द्वारा धर्म प्रचार बड़ी सुगमता से हुआ। अजन्ता के एक चित्र में संसार की असारता पर प्रकाश डाला गया है। हाथ की मुद्रा से संसार की असारता का चित्र

बड़ा मनोरम चित्रित किया गया है।

ऐसे चित्रों में विषय की गम्भीरता और महानता अवलोकनीय होती है। डा० अवनीन्द्रनाथ टैगौर का 'शाहजहाँ के अन्तिम दिन' भी उसी प्रकार का एक आदर्श उपस्थित करता है। शाहजहां की मुद्रा, उसकी चितवन और मुख पर प्रतिबिम्बित भाव विषय की गम्भीरता के परिचायक हैं।

सिसटाइन के चर्च में एक विशाल चित्र की बड़ी प्रशंसा है। इस चित्र का निर्माण चर्च की छत के नीचे के भाग की सजावट के बाद हुआ है। यह चित्र अन्तिम निर्णय के नाम से विख्यात है। दान्ते की डिवाइन कौमैंडी की कुंजी इस चित्र को समझना चाहिये। इस चित्र में इस महान क्षण के वर्णन हैं जिसमें बुराई और भलाई के अन्तिम परिणाम का स्पष्टीकरण है। जिन विचारों को दान्ते ने अपनी समस्त कविता डिवाइन कौमैंडी में व्यक्त किया है उन विचारों का इस चित्र में स्पष्टीकरण तूलिका द्वारा अंकित किया गया है। चित्र की व्याख्या इस प्रकार है कि मृतात्मा पृथ्वी से उठती हैं। सन्त लोग मोक्ष की ओर बढ़ते हैं। खोये हुओं को दोष लगाया जाता है। शैतान अपना शिकार प्राप्त करने में सफल होता है। केन्द्र में ईसा का महान चित्र है जो समस्त पृथ्वी का न्यायाधीश है, सबसे बड़ा खिलाड़ी है, बड़ा शक्तिशाली है, अपनी भुजाओं को ऊंचा उठाये हुये हैं जिसकी संरक्षता में उसकी कोमल माता भय से दुबकी हुई है, ऐसा प्रतीत होता है मानो मानव-कृपा दिखाई गई है। इस समस्त चित्र में उन सब घटनाओं का जो एक क्षण में घटित होती हैं सुन्दर चित्रण है और एक क्षण की समस्त सम्भवताओं को व्यक्त किया गया है जिनका प्रदर्शन कला की दृष्टि से अवरोधित है। यद्यपि आकृतियों में बहुत से उलझाव हैं। परिस्थित में बहुत असम्बद्धता है परन्तु एक ही घटना का ऐसा चित्रण कुशल कृति का उदाहरण है। इस एक ही घटना का एक क्षण का व्यक्तिकरण इतना प्रभावोत्पादक है कि उसकी शृङ्खला इसके पूर्व तथा इसके बाद की घटना से क्रमबद्धता रखती है। जहां भूत का ज्ञान कराती है वही भविष्य का बोध भी होता है। इस

चित्र से अच्छाई जीवन का सार मालूम पड़ती है बुराई मृत्यु दृष्टिगोचर होती है। इस चित्र में मध्यकालीन ईसाई धर्म सम्बन्धी समस्त नैतिक और धार्मिक भावनाओं का प्रतिपादन हुआ है। इतना ही नहीं बल्कि मानव-इतिहास जिसको उसी चित्रकार ने उसी चर्च की छत में विस्तार पूर्वक व्यक्त किया है मानवता का सुन्दर और सफल प्रतिरूप है। इस चित्र के सामने खड़े हो कर दर्शक के मन में क्या भावना उठती हैं, इस सम्बन्ध में एक मत नहीं हो सकता।

आधुनिक काल की ठाकुर शैली का एक चित्र "मोलभाव" में एक मछली बेचने वाली मछली बेच रही है एक ब्राह्मण देवता एक थैले में कुछ साग-पात लिए हुए हैं और मछली का मोलभाव कर रहे हैं। मछली बेचने वाली की मुद्रा और उससे सम्बन्धित हाथ की गति, हौठों की चाल और नेत्रों के इशारे, एक हाथ से मछली के मूल्य का संकेत, दूसरे हाथ की स्वाभाविक मुद्रा सामंजस्य को पूर्ण सहयोग देती है। जिस मुद्रा में मछली बेचने वाली बैठी है प्राय: इस प्रकार के दूकानदार इसी मुद्रा में आराम अनुभव करते हैं। उसकी एक अनोखी मुद्रा है। एक पैर पूर्ण विश्राम कर रहा है दूसरे पैर का घुटना उठा हुआ है ताकि हाथ के इशारे के बाद हाथ को विश्राम मिले। मछलियों की एक टोकरी है जिसमें बहुत सी मछली भरी हैं और उसी टोकरी के ऊपर एक लकड़ी का पटरा रखा हुआ है जिस पर दो मछली पूरी तथा एक मछली आधी कटी हुई रखी है। कटी होने के कारण लाल सिरा दिखाई देता है जो खून के रंग का है। पास में सीधे हाथ के पास एक दरांत रखा है। जिस आसन पर वह बैठी है उस पर भी खून के निशान बने हैं। आसन चटाई का है जो एक चबूतरे पर पड़ा है। खरीदने वाले एक पण्डित जी का चित्र है जिनके रामानन्दी तिलक लगा है, गले में कण्ठी पहने हैं जनेऊ स्वाभाविक ढंग से लटका है। शरीर में कोई वस्त्र नहीं बस एक सफेद लाल किनारी की धोती पहने हैं। एक गमछा कन्धे पर पड़ा है। जहाँ मछली बेचने वाली दो अंगुली से संकेत कर रही है पण्डित जी की

चारों अंगुलियाँ कुछ विपरीत संकेत कर रही हैं। दृष्टि दो अंगुलियों को ध्यान से देख रही हैं। पृष्ठभूमि में एक दीवार का संकेत है। कुछ पटा हुआ हिस्सा जो खपरैल का है स्पष्ट दिखाया है। यह चित्र का साधारण वर्णन है।

आधुनिक शैली का यह चित्र भारतीय प्राचीन विषय के बिल्कुल विपरीत है। विषय धार्मिक न होकर सामाजिक हो गया है। मुगल काल में चित्रों का विषय सामाजिक पाया जाता है। मुगल शैली का प्रभाव राजपूत शैली पर भी पड़ा और काँगड़ा शैली के चित्रों में सामाजिक चित्रों की बाहुल्यता है। साधारण स्त्री पुरुषों का चित्रण चित्रकारों ने तूलिका द्वारा जिस ढंग से व्यक्त किया उसमें धार्मिक भावना की उच्चाकांक्षा का लोप और साधारण भावना का विकास हो गया। नारी पात्र के चित्रण में देवीत्व की भावना नारीत्व में परिवर्तित हो गई। महान धार्मिक पवित्रता विलीन हो गई। नारी चित्रण में नारी के साधारण स्वरूपों, क्रिया-कलापों के चित्रण के कारण महान गौरव को क्षति पहुँची कुत्सित भावना में जागृत हुई। पुरुष देवता न रहा अपितु साधारण प्राणी हो गया। इसी कारण ठाकुर शैली के चित्रों में सामाजिक चित्रण अधिक पाया जाता है। कला और साहित्य पर समय का प्रभाव अवश्य पड़ता है। यह युग धार्मिक भावनाओं के लोप का युग है। इस युग में देवी देवताओं के चित्रों की मान्यता नहीं है। श्री अवनीन्द्र नाथ ठाकुर जो इस शैली के प्रवंतक है उन्होंने अपने चित्रों में संसार भर के विषयों को सम्मिलित कर दिया है। अतः बहुमुखी प्रतिभा है। लोक कला जिस को अब तक कोई स्थान प्राप्त न था एक मुख्य विषय बन गई।

ठाकुर शैली के इस चित्र में आकृतियाँ अधिक नहीं हैं। प्रायः दो तीन आकृति वाले चित्र ही पाये जाते हैं। एक चश्म पर ही अधिक बल नहीं दिया है सभी प्रकार की मुद्रा और चश्म के चित्र मिलते हैं। इसी चित्र में मछली वाली एक चश्म है तो खरीदार डेढ़ चश्म है। पूरे चित्र से समाज की एक

दशा व्यक्त होती है । साधारण रूप से लोग स्नान करने जाते हैं लौटते समय लोग सब्जी लेते चले आते हैं । यह काम प्रातः दस बजे तक समाप्त हो जाता है । अतः प्रातःकाल की सामाजिक दैनिक दिन चर्य्या का भी बोध होता है । स्नान के बाद पोशाक कितनी साधारण रहती है । पैसे रखने के लिए कहीं २ अन्टी में रखा करते हैं यहां एक बटुआ दिखाया गया है । पैरों में जूतों की आवश्यकता नहीं है, यह है साधारण व्यक्ति की वेश भूषा । चित्र से दोनों आकृतियों की अवस्था का भी बोध होता है । धार्मिक चित्रों में देवी अथवा देवता के भिन्न अवस्था के चित्रों की रचना नहीं होती थी । देवता अथवा देवी की प्रौढ़ावस्था नहीं होती अतः चित्रण में एक रूप के दिखाने में जो असाधारण योग्यता की आवश्यकता होती है वह इसमें आवश्यक नहीं । देवताओं के चित्रण में भी मुंह पर मूंछ नहीं दिखाई जाती । बंगाल में भी मूंछ दिखाने की प्रथा कम मालूम पड़ती है । जीवन की साधारण स्थिति और उसका प्रकृति से सामंजस्य, बड़े सन्तुलित हैं । आकृतियां प्रकृति से ली गई हैं । सब में विश्वासनीय स्वाभाविकता है । देखने से चित्त को प्रसन्नता होती है । भारतीय चित्रों में कल्पना की उड़ान बड़ी ऊँची होती है । यहाँ पर स्वाभाविकता को विशेष स्थान मिला है । यह पाश्चात्य प्रभाव है । सौन्दर्यात्मक अनुभूति होती है जो मन में उमंग उत्पन्न करती है ।

विशेष प्रकार से देखा जाय तो मूर्ति और चित्र में एक निश्चित विचार को ही व्यक्त किया जाता है । इस विचार में वास्तविकता, आदर्श और कल्पना को ही स्थान मिलता है । स्थान के सम्बन्ध के साथ आकृतियों को ऐसा संजोया जाता है कि केन्द्र की आकृति और आसपास की आकृतियाँ आनुपातिक और समेल रहती हैं । यहाँ कलाकार की साधना का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । इस प्रकार की ललित-कला में एक घटना का चित्रण पूरी कहानी का होता है और उसी के द्वारा इस घटना के पीछे तथा आगे का वृतान्त भली प्रकार जाना जा सकता है । चित्र की घटना से ही दर्शक उस

क्षण का अनुभव करके आनन्दित अथवा दुखी होता है। एक घटना ही बड़ा स्थायी प्रभाव डाल सकती है। रंग का सहयोग घटना की वृद्धि, आकर्षण और वास्तविकता को बल देने में अधिक सहायक होता है। मूर्तिकला तथा चित्रकला में विषय के अनुसार आकृति की कोमलता और दृढ़ता व्यक्त होती है। देवी के चित्रण में कठोर पत्थर से ही एक अनुपम स्वरूप वाली देवी को मूर्तिकार जन्म देता है। तूलिका के द्वारा सपाट कागज अथवा किरमिच पर कोमलता और कठोरता को कलाकार चित्रित करने में अधिक कुशलता का परिचय देता है। चित्रकला में कोमल भावनाओं को चित्रित करने में कलाकार अधिक सफल होता है।

मूर्तिकला में पुरुषत्व की भावना वाली कला आकृतियों को अधिक स्थान मिलता है। कलाकार कठोर पत्थर से वास्तविक हूबहूपन लाने में बड़ी चातुरी से कार्य करता है। इसका क्षेत्र सीमित रहता है और मूर्तिकार अधिक आकृतियों को एक साथ चित्रित नहीं करता। आकृतियों की संख्या की एक सीमा रहती है। चित्रकला में जहां आकृतियों की सीमा है वहां इसके विपरीत अगणित आकृतियों को भी चित्रकार चित्रित करता है। विवाह और युद्ध के चित्रों में आकृतियां अगणित होती हैं। चित्र में नारी पात्र को अधिक स्थान मिलता है। मूर्ति में रंग को अधिक स्थान नहीं दिया जाता। चित्र में रंग की विशेषता रहती है। भावों के व्यक्तिकरण में रंग प्रधान होता है। मूर्ति-चित्रण में वाह्य वातावरण अधिक रहता है। वह तूलिका के द्वारा सपाट स्थान पर छाया प्रकाश के द्वारा पूर्ण वातावरण को को अङ्कित करता है परन्तु भारतीय शैली में छाया प्रकाश को विशेष स्थान नहीं मिलता और रेखाओं के द्वारा ही समस्त भावों को कलाकार व्यक्त करता है। पूर्ण वातावरण चित्रित होता है।

अध्याय बारह

संगीत का अभिप्राय और कार्य

साहित्य संगीत कला विहीन मनुष्य बिना सींग पूंछ का पशु समझा जाता है ऐसी धारणा प्राचीन भारतीय विद्वानों की रही है।

साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनः।
तृणान्नखादन्नपिजीवमानः तद् भागधेयं परमं पशूनाम्॥

संगीत कला की व्याख्या अत्यन्त कठिन है। संगीत का प्रभाव जादू का कार्य करता है। आरोह और अवरोह के द्वारा ध्वनि की गति में परिवर्तन होता है, जो असम्भाव्य आनन्द दायक होता है। संगीत के साथ यदि काव्यत्व की विशेषता होती है तो सोने में सुगन्ध का कार्य करती है। ध्वनि में नियम बद्धता का प्रमुख स्थान रहता है और कला पारखी ही इसका अनुभव कर पाते हैं। संगीत मनुष्य को विभोर कर देती है। वह दुख सुख को बिल्कुल भूल जाता है। सत्य और असत्य में भेद जानना कठिन हो जाता है। संगीत की प्राचीनता निर्विवाद है। जन्म से ही बालक को संगीत

प्रभावित करता है। यह सार्वभौमिक है। कोई ऐसा प्राणी नहीं जिसको रोना और गाना नहीं आता।

ई होवर्ड ग्रिग्स का कथन है कि संगीत को कुछ लोग बहुत प्राचीन मानते हैं कुछ आधुनिक सभ्यता से ही इसका सम्बन्ध स्थापित करते हैं। कुछ प्रकार का संगीत प्राचीन काल से ही सम्बन्धित किया जाता है और वह संगीत सब देशों में पाया जाता है। परन्तु पिछले तीन सौ वर्षों में संगीत का अधिक विकास और उत्थान हुआ है। कोई गाना जो प्रिय होता है एक बार के सुनने से ही याद हो जाता है। प्रायः बच्चे और बूढ़े उन गानों को चलते फिरते गाते पाये जाते हैं। जीवन में यह एक समस्या है कि संगीत सरलतम है और कठिनतम है। क्योंकि असाधारण संगीत को समझने के लिए असाधारण योग्यता की परमावश्यकता है।

संगीत के प्रिय लगने में भिन्न २ प्रकार की धारणायें होती हैं। इसकी प्रियता का एक कारण नहीं हो सकता। किसी को ध्वनि प्रिय प्रतीत होती है, किसी को लय अच्छी लगती है, किसी को सामंजस्य पूर्ण संगीत में आनन्द प्राप्त होता है और कोई विरोधाभास को ही अपनाकर आनन्द लेता है।

लय का मुख्य स्थान है यह सर्वत्र पाई जाती है। लय का सम्बन्ध स्वांस के आवागमन हृदय की गति और रक्त-वहन से है। यही कारण है कि लय को सब प्रकार के संगीत में स्थान प्राप्त है। विवाह आदि उत्सवों पर जो बाजे बजते हैं वह किसको प्रभावित नहीं करते। किसी समय फौज का बाजा फौज के व्यायाम के लिए बजाया जाता है तो किस प्रकार फौज के सिपाही कदम-ब-कदम एक दूसरे के साथ चलते हैं वे किसके हृदय को आनन्दित नहीं करते। यह ताल प्रत्येक प्राणी को आनन्दित करती है। उस के हृदय में एक नवीन उमङ्ग को उत्पन्न करती है।

स्वर माधुर्य एक जटिल सिद्धान्त है। लय इसके अन्तर्गत आ जाती है। स्वर माधुर्य के लिए आरोह अवरोह, शब्द उच्चारण आदि की विशेष

आवश्यकता होती है। यही संगीत की आत्मा कही जाती है। स्वर माधुर्य ही एक प्रकार का संगीत माना जाता है। बिना स्वर माधुर्य के संगीत का अनुमान भी असम्भव है। अतः संगीत और स्वर माधुर्य को एक दूसरे से अलग नहीं कर सकते। वेगनर ने "आर्ट लाइफ एण्ड थ्यौरीज" में १७५ पृष्ठ पर संगीत के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करते हुए लिखा है 'कि संगीत का कोई सा भी भाग जिसमें स्वर माधुर्य नहीं है अनुपम कृति नहीं कहला सकता। वह भावनाओं को प्रभावित नहीं कर सकता।'

अनुरूपता संगीत का अनिवार्य तत्व है। इसका विकास हाल ही में अधिक हुआ है। परन्तु ग्रिग महोदय के इस सिद्धान्त से हम अधिक सहमत नहीं हैं। अनुरूपता के बिना कोई संगीत सफल नहीं हो सकता। यह सार्वभौमिक प्रशंसा से बहुत दूर है। इसको हृदयङ्गम करने के लिए अच्छी योग्यता की आवश्यकता होती है। संगीत की अनुरूपता और साधारण अनुरूपता में कुछ भेद है। संगीत की अनुरूपता एक टेकनीकल ज्ञान स्वीकार किया जाता है। साधारणतया अनुरूपता से तात्पर्य किसी वस्तु का दोनों अथवा चारों तरफ को एक ही प्रकार का होना स्वीकार किया जाता है। इस सम्बन्ध में दो सिद्धान्त नहीं हो सकते। इस प्रकार की स्वीकृति अनुरूपता के सम्बन्ध में समस्त ललित-कलाओं में स्वीकार की जाती है। संगीत में इससे भिन्न प्रकार की अनुरूपता मानी जाती है। स्वर अथवा ध्वनि का संयोग, उतार चढ़ाव, संगीत में अनुरूपता लाता है। सभ्यता की मुख्य ललित-कलाओं में इस सिद्धान्त के अनुसार संगीत का मुख्य स्थान है।

सब ललित-कलाओं में एक प्रकार की आकृति होती है। संगीत इसके विपरीत है। संगीत में ध्वनि की मुख्यता है। सब ललित-कलायें प्रकृति से आकृति प्राप्त करती हैं। जो वस्तु प्रकृति में पाई जाती है उसी की आकृति के अनुरूप मूर्तिकार अथवा चित्रकार मूर्ति अथवा चित्र की रचना करता है। संगीत को प्रकृति से ध्वनि प्राप्त होती है जिसकी कोई आकृति नहीं होती। अतः संगीत ही अमूर्त है। प्रकृति की ध्वनि में सामंजस्य होता है। भारतवर्ष

में जिस शीतल मंद सुगन्धित वायु का वर्णन है उसमें एक ध्वनि होती है, अनुरूपता होती है और स्वर माधुर्य होता है। इसी प्रकार झंझावत में भी एक प्रकार का स्वर होता है परन्तु वह स्वर प्रिय नहीं होता। विरोधाभास में हृ-तन्त्री को जागृत करने की भावना कम होती है। सामंजस्य इसके विपरीत अधिक प्रभावित करता है। संगीत में ध्वनि प्राप्त होती है जो प्रकृति में कहीं न कहीं अवश्य पाई जाती है। पहाड़ों पर देवदार के वृक्षों की शृङ्खला में वायु एक प्रकार की आह भरती है वह ध्वनि सुनने योग्य होती है, मैदानों में भी इसी प्रकार बागों में वृक्षों की कतारें जो स्वर गूंजता है एक प्रकार की ध्वनि को जन्म देता है। अतः संगीत का स्वर सर्वत्र वायु-मण्डल में अनुभव किया जाता है। वायु की तरंग में हलकी से हलकी ध्वनि भी एक लय उत्पन्न करती है। इन्द्रियों की यहायता से ही सूक्ष्म से सूक्ष्म ध्वनि का अनुभव मनुष्य करता है। अन्धकार से यकायक प्रकाश होता है एक प्रकार की तुरन्त ध्वनि होती है। सौरभ पूर्ण शाखाओं की गति, शाखा और वृक्षों के द्वारा अन्धकार, देवदार के वृक्षों के अतिरिक्त सघन बन के शान्तपूर्ण वातावरण का प्रभाव सब एक ही भावना को जागृत करते हैं। सबसे भिन्न २ तत्वों का ज्ञान भिन्न २ इन्द्रियों की सहायता से होता है जो प्रकृति के रहस्य का उद्घाटन करते हैं, आश्चर्य चकित कर देने वाले आकर्षण को प्रत्यक्ष करते हैं।

संगीत से एक प्रकार का अनुपम आनन्द प्राप्त होता है जिसको अपनी २ शक्ति के अनुसार सब अनुभव करते हैं। संगीत श्रोता को एक अनोखी मुद्रा में निमग्न कर देता है। वह आत्म-विभोर हो जाता है। असम्भूत शाँति और आनन्द का अनुभव करता है। विशेषता यह है कि जितने भी श्रोता संगीत का श्रवण करते हैं उतनी ही भावनाओं का जन्म होता है।

समुद्र के किनारे पर पहाड़ की चट्टानों से जब लहरें टकराती हैं एक भिन्न प्रकार की ध्वनि उत्पन्न होती है। समुद्र के किनारे के निवासी अथवा जिनको

उसे अधिक अनुभव करने का अवसर प्राप्त होता है वे इस इन्द्रिय जनित सुख का अनुभव करते हैं। मन में कितने प्रकार की भावनायें उठती हैं कौन कह सकता है। थके पथिक को उन हिलोरों से उत्पन्न हुई ध्वनि के आनन्द को अनुभव करने दो, जो भावनायें उसके मन में उत्पन्न होती है बिल्कुल इसके विपरीत आनन्द उस व्यक्ति को प्राप्त होगा जिसका उद्देश्य सिर्फ आनन्द-लाभ के लिए समुद्र के किनारे आना है। भावुक की भावनायें भिन्न होंगी। जिस प्रकार की भावना भावुक की होंगी उसी प्रकार के विचारों का अनुमान वह उस संगीत से लगावेगा।

चिड़ियों की चहचहाट से एक प्रकार की ध्वनि का जन्म होता है उसमें स्वाभाविक संगीत का अनुभव होता है। इसमें लय और ताल स्पष्ट होती है। एक पक्षी की विशेष प्रकार की ध्वनि होती है। एक मुसलमान भक्त उसकी आवाज़ को सुनकर अर्थ लगाने लगा, 'सुभान तेरी कुदरत' थोड़े समय बाद एक पहलवान उसी वृक्ष के नीचे होकर निकला और उसने भी उस पक्षी की ध्वनि को ध्यान से सुना। उसने अनुमान लगाया, 'दण्ड, कसरत, मुकदर।' इसी प्रकार एक काछी सागपात बेचने वाला वहां होकर निकला। उसने अनुमान लगाया, 'मूली गाजर अदरक।' इस प्रकार से जितने प्रकार के व्यवसायियों ने उस पक्षी की ध्वनि सुनी उतने प्रकार की भावना ही मन में जागृत हुई। यह है भावना की बात। ध्वनि से भिन्न २ प्रकार की भावनाओं का जन्म स्वाभाविक है। यही विचार चित्र अथवा मूर्ति के सम्बंध में होता है। यदि आपका चित्त उदास है तो मूर्ति अथवा चित्र की चितवन से आपको उदासी का समर्थन मिलेगा, यदि प्रसन्न है तो प्रसन्नता का। यह मूर्ति नहीं अपितु भावना है जो भिन्न २ प्रकार के विचारों को जन्म देती है। प्राकृतिक अथवा पशु पक्षियों की ध्वनि में शास्त्रीय, सामंजस्य तो होता नहीं है परन्तु यह सामंजस्य उससे बढ़कर है क्योंकि इसकी गतिविधि स्वच्छन्द है। अतः इस प्रकार के स्वाभाविक और प्राकृतिक संगीत में एक भिन्न प्रकार की लय, एक रूपता और आनन्द होता है। भिन्न २ प्रकार के

पशु, पक्षी जो ध्वनि करते हैं वह ईश्वर प्रदत्त है और ईश्वर प्रदत्त वस्तु में भावनायें महान होती हैं। इस प्रकार की ध्वनि में भी आरोह अवरोह होता है। ध्वनि उसी प्रकार एक दूसरे से भिन्न होती हैं जिस प्रकार भिन्न २ प्रकार के संगीत के यन्त्र पाये जाते हैं। इस प्रकार की ध्वनि में भिन्नता होती है जो डरा देती है, रुला देती है, आनन्द विभोर कर देती है, कठोर अथवा कोमल हृदय बना देती है। यह सब संगीत की भिन्न २ प्रणाली हैं जिनसे ही समस्त संगीत का जन्म हुआ है। बैथोविन की देहाती स्वर समता इस कला का अनुपम उदाहरण है। वेगनर की कुछ कृतियों में भी इस प्रकार के उदाहरण पाये जाते हैं।

संगीत के द्वारा प्रकृति की सुदृढ़ ध्वनियाँ भावात्मक तत्वों में परिवर्तित होती हैं। तत्पश्चात् मानव बुद्धि और ज्ञान के द्वारा वही ध्वनियाँ एक ताल, एक लय में मिल जाती हैं। अतः संगीत में इस प्रकार भिन्न २ प्रकार के ध्वनियों के माप बन जाते हैं। ग्रीक के संगीत में भारतीय संगीत से भिन्न प्रकार की ध्वनि का प्रतिपादन होता है। इसी प्रकार चीन के संगीत के सम्बन्ध में भी ग्रिग महोदय का यही विचार है। चीन का संगीत पाश्चात्य संगीत प्रेमियों को रुचिकर प्रतीत नहीं होता। भारतीय संगीत और पाश्चात्य संगीत अथवा नृत्य से यह धारणा अधिक स्पष्ट होती है। प्रत्येक देश वासी को अपना संगीत प्रिय लगता है।

अन्य ललित-कलाओं की भांति संगीत में प्रकाशन की मौलिकता अधिक है। इसमें अनुकरण की भावना अधिक नहीं है। आकृतियों से स्थान के सम्बन्ध को ध्यान में रखकर मूर्तिकला की संगीत से अधिक तुलना की जा सकती है। मूर्तिकला का सम्बन्ध स्थान से उतना ही है जितना संगीत का समय की आकृति से पाया जाता है। मूर्तिकला के द्वारा नेत्रों को जो तृप्ति होती है संगीत के द्वारा कानों को उससे कम नहीं होती। गायक की ध्वनि से श्रोता इतना एक रूप हो जाता है कि कभी २ तो श्रोता उसको ताल देने लगता है। अस्पताल में रोगी अपनी पीड़ा को भूल जाता है। युद्ध में

सिपाही अपने परिवार को बिल्कुल भुला देता है और विभोर हो जाता है। इस दशा में भी उसको सौन्दर्यात्मक अनुभूति होती है जो उसके हृदय में तद्रूप भावनाओं को जन्म देती हैं।

स्थापत्य अथवा गृह-निर्माण-कला का भी संगीत में मेल है। वृक्षों के तनों के द्वारा प्रागैतिहासिक-काल के कला मर्मज्ञों को भवनों के खम्भों का ज्ञान हुआ होगा। कन्दराओं में स्वत: ईश्वर प्रदत्त एक प्रकार की छत होती है। उस छत का अनुकरण करके कलाकारों ने गृहों की छतों की रचना की। भिन्न २ स्थानों पर भिन्न २ प्रकार के साधनों का प्रयोग होता है। जिस स्थान पर जो सामिग्री उपलब्ध होती है उसी के द्वारा भवन-निर्माण किया जाता है। जहां पत्थर होते हैं ईंट का प्रयोग नहीं होता। जहां पत्थर नहीं होते लकड़ी तथा ईंटों की सहायता से छत तैयार की जाती है। पाश्चात्य विद्वानों की धारणा है कि रोम के महराबों से छत की रचना हुई होगी। वृक्षों की सघनता से भी एक प्रकार की छत बन जाती है अत: यह विचार इस प्रकार भी परिपक्व हो गया होगा। स्थापत्य में अनुकरण की भावना अधिक नहीं है। संयोगवश सहायता ली जा सकती है। कला के सिद्धान्त और तत्वों की रचना प्रकृति के अनुकरण से ही हुई परन्तु उन सब में मौलिकता है। भावनात्मक तत्वों के द्वारा रेखा, अनुपात आदि की सहायता से बुद्धिमानों ने नवीन प्रणाली और उपायों का प्रयोग किया। स्थापत्य और संगीत में अङ्कगणित का अधिक उपयोग है। प्रत्येक वस्तु नपी-तुली है। सूक्ष्म से सूक्ष्म अन्तर भी बड़ी से बड़ी दुर्घटना का कारण हो सकता है। शताब्दियों से यह धारणा प्रचलित है कि संगीत में समय का वही सम्बन्ध है जो स्थापत्य में स्थान का है। भारतीय संगीत के अनुसार तो भिन्न २ ऋतुओं तथा समय के भिन्न २ राग हैं और उन सब की अपनी विशेषता है। स्थापत्य में भी भिन्न २ प्रकार की रचनाओं का अपना महत्व है। ग्रिग महोदय ने तो स्थापत्य को ठण्ड से जमा हुआ संगीत कहा है। मिलन के चर्च, खजुराहों के मन्दिर, आगरा का ताजमहल आदि विशाल

भवनों को देखकर किसके मन में महान भावनाओं का जन्म नहीं होता। उनकी रेखा, अनुपात और रंग योजना में एक प्रकार इन्द्रिय जनित आनन्द होता है। एक सौन्दर्यात्मक अनुभूति होती है। जैसे ही कोई दर्शक किसी विशाल भवन की ओर दृष्टिपात करता है एक निश्चित प्रकार की विचार धारा का सृजन होता है। रहीम कवि का कथन है कि:—

नाद रीझ तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु ते अधिक, जे रीझंहु कछु न देत॥

नाद पर रीझकर मृग अपने प्राणों को न्योछावर कर देता है। कहा जाता है कि मृग का शिकार करने के लिये जब सब उपाय असफल हो जाते हैं तब एक ही उपाय सफलता देने वाला दिखाई देता है और शिकारी मृग को बुलाने के लिए बीन बजाने लग जाते हैं। मृग बीन की ध्वनि पर मुग्ध हो जाता है और यह भूल जाता है कि उसका शिकार हो जायगा, यदि वह बीन की ध्वनि को सुनने वहाँ जायगा। जैसे ही मृग ध्वनि को सुनने वहाँ आता है और ध्वनि में विभोर हो जाता है शिकारी बाण का प्रहार करता है और मृग उसका शिकार हो जाता है। यह है नाद अथवा ध्वनि का मूल्य। जहां ध्वनि पर पशुओं की यह दशा होती है। मनुष्य का क्या कहना है। अतः ध्वनि और उसकी व्यवस्था से इन्द्रिय सम्बन्धी आनन्द प्राप्त होता है। उसके क्रम और मेल से सौन्दर्यात्मक अनुभूति होती है।

काव्य और संगीत में सीमा की भी एक विशेषता होती है। बहुत से संगीत थोड़े से व्यक्तियों को प्रभावित करने वाले होते हैं। बड़ी समाज में उनका प्रभाव साधारण होता हैं। संगीत की विशेषता ही यह है कि वह श्रोता को विभोर कर दे। समस्त श्रोताओं की भिन्न २ भावनायें जागृत होंगी। भिन्न प्रकार का आनन्द प्राप्त होगा। किसी संगीत को सुनते समय एक प्रकार की भावुकता का जन्म होता है। जिस प्रकार की भावना, ज्ञान और अनुभव श्रोता को होता है वैसी भावनायें बनती हैं।

अध्याय तेरह

कविता का उद्देश्य और अभिप्राय

एक विद्वान का कथन है कि "वाक्यं रसात्मकं काव्यं।" जिन वाक्यों में रस होता है काव्य कहलाते हैं। यह काव्य हृ-तन्त्री को कितना जागृत करते हैं यह काव्य की विशेषता पर निर्भर रहता है। पश्चिमी विद्वानों के विचारानुसार काव्य भी एक ललित-कला है। अतः कवि को भी कलाकार कहा जाता है। नाटककार भी इसी प्रकार कलाकार है। कला का गुण गति प्रदान करना है। जो कला जितनी गति प्रदान कर सकती है वह उतनी ही महान कला है। संगीत ध्वनि के द्वारा समय के सम्बन्ध से गति प्रदान करता है। मूर्ति और चित्रकला इसके विपरीत स्थान के संयोजन से मूर्त पदार्थ के द्वारा वही गति प्रदान करती है। यद्यपि दोनों माध्यम भिन्न हैं परन्तु उद्देश्य एक ही है। काव्य में आश्चर्य चकित कर देने वाली सम्पति है। यह सम्पति अन्य कलाओं में नहीं पाई जाती।

काव्य के द्वारा भी मूर्ति का निर्माण होता है, परन्तु उसमें मूर्तिकला के साधनों के उपयोग की आवश्यकता नहीं। काव्य के द्वारा विद्वानों को निश्चित विचार धारा का ज्ञान होता है। स्थान तथा आकृति के द्वारा एक दृढ़ धारणा बनती है। इङ्गलैण्ड के एक प्रसिद्ध कवि शैले की एक कविता मिश्र का "ओजीमैंडियास" से भाव स्पष्ठ होते हैं:—

Ozymandias of Egypt.

"I met a traveller from an antique land
Who said : Two vast trunkless legs of stone
Stand in the desert. Near them on the sand,
Half sunk, a shatter'd visage lies, whose frown
And wrinkled lip and sneer of cold command
Tell that its sculptor well those passions read
Which yet survive, stamp'd on these lifeless things,
The hand that mock'd them and the heart that fed;
And on the pedestal these words appear:
My name is ozymandias, king of kings:
Look on my works, ye Mighty, and despair!'
Nothing beside remains. Round the decay
Of that Colossal wreck, boundless and bare,
The lone and level sands stretch far away"

—P. B. Shelley.

इन पंक्तियों पर विचार करें तो काव्य के अभिप्राय का एक विशेष भाव स्पष्ट होगा। संगीत को थोड़े समय के लिए अलग कर दिया जाय तो स्पष्ट है कि विचार के लिए इसमें पर्याप्त सामिग्री है। यह एक भग्नावशेष मूर्ति के

विषय में कहा गया है। मूर्ति-कला में भी इस प्रकार की मूर्ति का वर्णन आ सकता है। मूर्ति में आन्तरिक भाव देखने से मालूम पड़ते हैं काव्य में सुनने अथवा पढ़ने से काव्य की विचार धारा का ज्ञान होता है। कवि जो विचार व्यक्त करना चाहता है यदि काव्य के द्वारा पाठक उसको समझ सका तो काव्य रचना की सफलता पूर्ण हो गई। जहां काव्य में वर्णन की विशेषता और प्रचुरता होती है वह वर्णनात्मक कविता स्वीकार की जाती है। इस प्रकार की कविता में विशिष्ट प्रकार की विलक्षणता, सुझाव पूर्ण प्रत्यभिज्ञान और आकृतियाँ होनी चाहियें जिससे पाठक काव्य को पढ़ने पर ही समस्त भाव को चित्रवत देख सकें। कवि को ऐसी दशा में बड़ा सजग रहना चाहिये, कारण बहुत सी विशेषतायें और आकृतियां भाव का लोप कर देंगी। शैले ने भी Vast, trunk less legs of stone, a shaltred visage with frown and wrinkled up and sneer of cold command' आदि शब्दों को प्रयोग करके कविता के भाव को स्पष्ट करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। भग्नावशेष मूर्ति के प्रति भावों को जागृत करने में बड़े सहायक प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार have boundless, the love and level sands 'Stretch far away' आदि शब्दों के द्वारा ऐसा प्रतीत होता है कि कोई विशाल मूर्ति एकान्त रेतीले मैदान में पड़ी अपनी हीनता का अनुभव कर रही है।

कविता में शक्ति प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि उसका अधिक से अधिक संसर्ग और अनुमति का अधिक से अधिक उपचार हो। कवि को सुन्दर प्रत्यभिज्ञान और प्रभावशाली आकृतियों को चुनना आवश्यक है, तभी वह अपने काव्य में सफलता का अनुभव करेगा। होमर की परम्परागत विशेषता इसी बात में है। इलियड का वातावरण सुन्दर, प्रभावशाली नाम और प्रत्यभिज्ञान पर ही अधिक आधारित है।

महाकवि कालिदास के मेघदूत में इस भावना को इस प्रकार स्पष्ट किया है:—

दीर्घी कुर्वन् मदरलं कूजितं सारसानां ।
प्रत्युषेषु स्फुटित कमला मोद मैत्री कषायः ।।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरति ग्लानिमंगानुकूलः ।
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थना चाटुकारः ।।
अथस्मिन जलधर महाकालमासाद्य काले ।
स्थातव्यं ते नयन विषयं यावदत्येति भानुः ।।
कुर्वन्सन्ध्यावलि पटहतां शूलितः श्लाघनीयां ।
आमंद्राणां फलमविकलं लप्स्यते गर्जितानाम् ।।

अर्थात्—जहां सारसों के स्पष्ट मस्त मधुर कूजन को लम्बा करते, प्रातःकाल फूले कमल के गंध के सम्पर्क से कषाययुक्त शिप्रा नदी का वायु प्रार्थना के लिए चाटुकारी प्रियतम की तरह अंगानुकूल हो, स्त्रियों के सुरत खेद का अपहरण करता है।

हे मेघ, दूसरे काल में भी महाकाल को पाकर जब तक सूर्य चला नहीं जाये, तब तक तुम नयन के विषय रहना (तव) त्रिशूलधारी की प्रशंसनीय संध्या कालीन पूजा के नगारे का रूप ले, कुछ गम्भीर गर्जनों का पूरा फल तुम पाओगे।

सारसों की पंक्ति जब मधुर स्वर कर रही हो तब कषाययुक्त वायु उस मधुर स्वर को अधिक विस्तृत कर देगी। वह वायु विरहणी नायिका के लिए उस प्रकार सुख देने वाली होगी जिस प्रकार चाटुकार प्रियतम के अङ्गों के प्रति सेवा।

मेघ महाकाल के मन्दिर पर तब तक मंडराते रहें जब तक सायंकाल को भगवान महाकाल की पूजा के समय नगारों की ध्वनि न हो और उस समय उस जयघोष में स्वयं नगारों का रूप धारण कर सायंकाल की पूजा अर्चना में सहयोग दें और उस समय उस आनन्द का अनुभव करें।

भारतीय काव्य में संगीत का प्रमुख स्थान है। यहाँ मघदूत के प्रसिद्ध श्लोकों में संगीत का पूर्ण प्रवाह है। साथ ही जो भावना चित्र से व्यक्त

होती है उसी भावना को काव्य के द्वारा बड़े सफल रूप से व्यक्त किया है। भावना में कवि विभोर होकर तूलिका के कार्य को लेखनी के द्वारा व्यक्त करने लगता है। जिस भाव को चित्र में व्यक्त हुआ हम देखकर अनुभव करते हैं उस भाव को क्रमानुसार एक के बाद दूसरा हम काव्य द्वारा अनुभव करते हैं यही समय और स्थान का अन्तर हमें काव्य और मूर्ति अथवा चित्रकला में प्राप्त होता है। मूर्तिकला तथा चित्रकला में वाह्य चक्षु के द्वारा ज्ञान चक्षु उस इन्द्रिय जनित आनन्द को प्राप्त करते हैं जो काव्य के द्वारा श्रवेरणेन्द्रिय अथवा चक्षु की ही सहायता से ज्ञानेन्द्रियाँ प्राप्त करती हैं। होवर्ड ग्रिग महोदय के विचार में मूर्तिकला अथवा चित्रकला में जहां आकृति और रंगों के द्वारा भाव व्यक्त किये जाते हैं काव्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होते हैं। इन्द्रिय जनित सुख बड़ा गतिशील है और परोक्ष है। काव्य का इन्द्रिय जनित सुख आध्यात्मिक तत्वों से बंधा नहीं है। मूर्ति और चित्रकला में यह अधिक मात्रा में प्राप्त होता है। परन्तु समानता और सामंजस्य में सौन्दर्यात्मिक अनुभूति जिसके द्वारा विचार व्यक्त किये जाते हैं वह उतनी ही महान है जितनी अन्य कलाओं में दृष्टिगोचर होती है।

मूर्ति की अपेक्षा काव्य के अन्तर्गत स्थान में आकृतियाँ सीमित हैं। इन आकृतियों के साथ काव्य की समपूरक महानता है। इस महानता का तात्पर्य मानव भावना को जागृत करना है। मूर्तिकला के द्वारा मूर्ति प्राप्त होती है। काव्य के द्वारा भी मूर्ति प्राप्त होती है परन्तु काव्य की मूर्ति अमूर्त रूप में होती है। दोनों का सम्बन्ध सावभौमिक विचारों से सम्बन्धित है। अतः काव्य के द्वारा चित्र रचना भी होती है। प्रायः वर्तमान में लोग उसे लेखनी चित्र कहते हैं। साथ साथ काव्य में मूर्ति की रचना करने की शक्ति भी है।

जहां कवि सांसारिक वस्तुओं का शाब्दिक चित्रण करता है उस चित्रण में एक एक क्षण में भिन्न २ पंक्तियों में उस वस्तु सम्बन्धी पूर्ण भावनायें

कवि व्यक्त कर देता है। चित्रकार उसी भावना को एक चित्र के द्वारा पूर्ण रूप से व्यक्त कर देगा। वर्डसवर्थ की एक कविता "Up on the west minister Bridge" के अध्ययन से यही बात भली भाँति स्पष्ट होती है कि कवि ने एक विशाल सूची देकर चित्र की पूर्णता को सफल बनाया है। सफल कवि में अपनी कृति से विचारों और चित्त वृति को सफल प्रदर्शित करने की शक्ति होती है। वर्णनात्मक प्रत्यभिज्ञान और वाक्यांश चित्रित वस्तु के देखने का लाभ ही नहीं होता अपितु मानव भावना और चित्त वृति से सम्पर्क होता है। सारांश यह है कि काव्य के द्वारा आकृति का प्रत्यक्ष अर्थ स्पष्ट होता है। मानव की भावना और उसके संसर्ग का अनुभव होता है।

लैसिंग महोदय के मतानुसार काव्य के द्वारा वस्तु का वर्णन उसका फल नहीं होता बल्कि एक नियमित माध्यम होता है। लेसिंग ऐसा समझने में कुछ हद तक ठीक भी है। काव्य का उद्देश्य वस्तु अथवा दृश्य का मूल्यांकन मानव विचार के अनुसार होता है। समय के सम्बन्ध में वस्तु की विशेषता और सम्पर्क उस विचार का निखार होता है। चित्र और मूर्ति का उद्देश्य लेसिंग महोदय के अनुसार काव्य से अलग है। मूर्ति और चित्र में रंग और आकृति के द्वारा नेत्रों को आनन्द प्राप्त होता है। कोई कला किसी दूसरी कला का स्थान ग्रहण नहीं कर सकती परन्तु उसका कार्य दूसरी कला के कार्य को पूर्ण करना अवश्य है।

यदि एक कार्य दो कलाओं के द्वारा पूर्ण हुआ है तो उस तुलना से अन्तर स्पष्ट हो जावेगा। फ्लोरेन्स की कला गैलरी में एक चित्र में फ्रा लिप्पो लिप्पी लुक्रेजिया बूटी से प्रेम प्रदर्शित करता दिखाया गया है। इस चित्र की रचना प्रसिद्ध चित्रकार केसटाग नोला द्वारा हुई है। एक बालिका चर्च की कुवारियों की पोशाक में एक कुर्सी पर विराजमान है। चित्रकार ने उस चित्र में नायिका को पीछे को सरकती हुई, भयभीत सी चित्रित की है। परन्तु आकर्षण बहुत है। देखने में बड़ी सुन्दर प्रतीत होती

है। इस चित्र में वृद्धावस्था तथा युवावस्था का संघर्ष चित्रित किया है। इस प्रकार के चित्र का भाव किसी कविता में इस प्रकार एक बार में व्यक्त होना सरल कार्य नहीं है। राबर्ट ब्राउनिंग ने अपने नाटकीय आत्मगत भाषण में इसी भाव को व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। परन्तु वह वास्तविकता नहीं आ सकी है। कवि ने जीवन की घटनाओं का वर्णन किया है इस प्रकार वह कला और जीवन का सब युगों का सम्बन्ध स्थापित कर सका है।

संगीत का काव्य से घनिष्ट सम्बन्ध है। कोई कविता संगीत का सहारा छोड़कर वास्तविक रूप से अपना प्रभाव नहीं रख सकती। प्राय सभी: काव्य ध्वनि से पढ़े जाते हैं और ध्वनि का प्रभाव होता है। परन्तु जब कभी कोई कविता धीमी आवाज़ में अथवा मन ही मन में पढ़ी जाती है तो वह भी संगीत से वंचित नहीं होती है। अत: काव्य का मूर्तिकला अथवा चित्रकला से इतना घनिष्ट सम्बन्ध नहीं जितना संगीत से है। कविता कैसी भी हो सगीत के तत्त्व उसमें अवश्य विद्यमान होंगे। प्रत्येक छन्द, पद में लय, स्वर माधुर्य और गति में आरोह अवरोह अवश्य विद्यमान होगा। संगीत के साथ स्वर भेद का विशेष स्थान होगा। काव्य में विषय के साथ संगीत की गम्भीरता और सरलता का प्रभाव भी होगा। काव्य को ध्वनि के साथ पढ़ने से एक वर्गीय मुद्रा जागृत हो जाती है। चित्र की शृङ्खला का जन्म होता है और जैसे २ कविता का पाठ होता है एक चित्र के पश्चात् दूसरा चित्र उपस्थित होता चला जाता है। बुद्धि को एक निश्चित धारणा मिलती है। उस दशा में काव्य संगीत से परे चला जाता है। नरोत्तम कवि के सुदामा चरित्र को पढ़ने से अथवा सूर के भगवान कृष्ण के बाल-जीवन पदों को पढ़ने से निश्चितः एक सजीव चित्र मस्तिष्क में स्थान ग्रहण कर लेता है। महान कवियों की कृतियों में यह संगीत की सजीवता स्पष्ट विद्यमान रहती। शैले के काव्य में वही आनन्द विद्यमान है जो वर्डसवर्थ की कविता में प्राप्त होता है।

इन्द्रिय सुख के साथ २ सौन्दर्य का आनंद जो काव्य से मिलता है उसमें संगीत, विषय के साथ पूर्ण सामंजस्य और शान्ति की मुद्रा का आभास होता है। काव्य से सुनने वालों को भावुकता प्राप्त होती है। इस प्रकार काव्य के द्वारा संगीत के सहारे पर आकृति, प्रतिच्छाया और भाव प्राप्त होते हैं जिन सब का सीधा सम्बध मानव भावनाओं से ओत प्रोत है। प्राय कभी २ ऐसी कविता हमको सुनाई जाती है जिसको हम समझ नहीं पा रहे हैं। उस कविता में भी हमको आनंद प्राप्त होता है। यह आनंद ध्वनि का ही है। भाव का तो अभाव हो जाता है। परन्तु कविता का मूल उसको प्राप्त हो जाता है। यह कविता में संगीत का प्रभाव है। कुछ कविताओं में संगीत का प्रमुख प्रभाव होता है। एलिजाबेथ के प्रेम गीत इसका उदाहरण हैं। शैले काव्य संगीत के द्वारा ही भावनाओं को जागृत करता है। दान्ते की कविता में दृश्य चित्रण प्रथम होता है संगीत का स्थान साधारण है। मिल्टन के काव्य से ऊँचे शब्दों के काव्य का भाव जागृत होता है। वह भावनाओं को चित्रित करता है। ब्राउनिग की कविता सिद्ध पुरुषों के वाक्य हैं। टेनीसन की कविता में संगीत है। शेक्सपीयर की कविता में कल्पना की उड़ान है। स्पेन्सर का काव्य स्वर संगीत काव्य है। तुलसी का काव्य अनेक गुणों से ओत प्रोत है। सूर में संगीत तथा लालित्य है। इस प्रकार विचार करने पर यह स्पप्ट है कि समस्त ललित-कलाओं में कविता का विचार अधिक है। अधिक सार्वभौमिकता है। मानवीय भावनाओं का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करती है। कला के विस्तार में इसकी प्रमुखता है।

पद्य में संगीत का पूर्ण आनन्द है। गद्य में वह आनन्द उस मात्रा में नहीं प्राप्त होता है। परन्तु गद्य का क्षेत्र विशाल है। उपन्यास ऐसा महाकाव्य नाटक है जिसमें जीबन की समस्या का पूर्ण समाधान है। गद्य में भी संगीत है परन्तु उसको असाधारण रूप से समझना पड़ता है। काव्य के सभी कार्य गद्य में भी पाये जाते हैं परन्तु काव्य साहित्य का सबसे विशाल अङ्ग है। इसमें कला के सब कार्य पूर्णतया विद्यमान हैं।

हिन्दी के रीतिकालीन काव्य को तत्कालीन चित्रकारों ने तूलिकाबद्ध किया है। पहले तो विहारी के दोहे ही असाधारण काव्य का उदाहरण है परन्तु जब चित्रकार की तूलिका ने उन समस्त भावों को एक ही स्थान पर जिस दक्षता से चित्रित किया है कहने का विषय नहीं, अनुभव गंम्य है। समस्त ललित-कलाओं के काव्य भिन्न २ हैं परन्तु कोई ललित-कला किसी से बड़ी नहीं कही जा सकती। किसी को चमेली का फूल अधिक प्रिय है तो किसी को चम्पा। इसी प्रकार कोई कमल को प्रमुखता देता है तो कोई गुलाब को; परन्तु यह कोई नहीं कह सकता कि दूसरे की अपेक्षा अमुक फूल श्रेष्ठ है। प्रत्येक कला अपने क्षेत्र में महान है। सब का उद्देश्य मानव जीवन को व्यक्त करना है।

अध्याय चौदह

चित्र रचना का सिद्धान्त

अनुष्य का मन सदैव चञ्चल रहता। कोई भी प्राणी यह दृढ़ भावना से नहीं कह सकता कि मेरा चित्र एकाग्र है। जब चित एकाग्र रहता है योगी की दशा को वह प्राणी प्राप्त हो जाता है। मस्तिष्क में सदैव उथल पुथल होती रहती है। जब शान्ति का संचार होता है तो एक ही भावना रह जाती है जो अपना आधिपत्य अन्य सब भावनाओं पर डालती है और प्राणी इतना विभोर हो जाता है कि अपने आस्तित्व को खो बैठता है। इस स्थिति में मस्तिष्क पूर्ण हो जाता है। साधारण मस्तिष्क इसका अनुभव नहीं कर पाता। इस विभोर दशा को अनुभव भी नहीं कर पाता। एक महान भावना का जन्म होता है। प्राणी की गति अवरोधित होती है। एक विशेष गुण का साकार रूप बनता है जिसमें एक प्रकार के माप, आकृति और रंग का जन्म होता है। एक

निराकार आकृति की भावना जागृत होती है जो सदैव अमूर्त रहती है। इस प्रकार की आकृति की कोई निश्चित सीमा नहीं रहती है। कुछ धुंधली सी झलक अनुभव होती है। जिस व्यक्ति ने मस्तिष्क में इस प्रकार की रंग योजना को अनुभव किया है कि किस प्रकार एक धुंधली काली आकृति धीरे धीरे सफेद होती जाती है और कोई रूप दृष्टिगोचर ही नहीं रहता उस दशा में चित्र का विकास होता है। जिस व्यक्ति का रेटीना भली प्रकार विकसित होगा चित्र तथा रंगों की विभिन्नता उसको प्रिय मालूम होगी। इसी प्रकार जिसके कान के पर्दे अधिक स्पष्ट तथा पैने होंगे उसको ध्वनि की लहरें अधिक स्पष्ट सुनाई पड़ेंगी।

वाह्य वस्तुयें चित्र की रचना में सलाह और सहयोग प्रदान करती हैं। साधारणतया हम हर एक वस्तु को देखते हैं और अनुभव करते हैं परन्तु हम एक वस्तु का दूसरे से सम्बन्ध स्थापित नहीं करते। जब मस्तिष्क में दृढ़ता होती है किसी वस्तु के निरीक्षण में हम दृढ़ होते हैं तो विरोधी भावनायें अपना प्रभाव नहीं डालती। जो मस्तिष्क अधिक परिपक्व होते हैं वे भिन्न प्रकार की वस्तुओं को अलग २ समुदाय में अधिक उत्तमता से विभाजित कर पाते हैं। उच्च विचारधाराओं में एकता तथा समीकरण की भावना जागृत होती है और वे कला कृति को उत्तम बनाती हैं। डाक्टर अथवा वैद्य जब किसी रोगी को देखता है, जब उसके रोग का निदान करता है उस समय वह रोग के साथ २ नाड़ी के द्वारा उसके प्रभाव को अनुभव करता है। उसके शरीर के किन २ भागों में कहां क्या २ प्रभाव पड़ता है इसे अपने स्वस्थ शरीर से रोगी शरीर की तुलना करके अधिक उत्तमता से रोग का निदान कर पाता है। यह जो कुछ भी जिसके द्वारा होता है वह है नाड़ी प्रणाली जो पूर्ण निदान में पूर्णतया सहायक होती है। इस क्रिया को कौन कितना अधिक जानता है वह है उसकी साधना का फल। यही बात चित्र की रचना के सम्बन्ध में भी घटित होती है।

तर्क-शास्त्र में मस्तिष्क की अपनी मुख्यता है। मस्तिष्क की परिपक्वता अन्तर्ज्ञान की परिपक्वता है। अन्तर्ज्ञान के द्वारा हम आभ्यन्तर और बाह्य दोनों का अनुभव करते हैं। यह अनुभव अपने अपने क्षेत्र में सभी को होता है।

चित्र दर्शन की एक पद्धति है जिसको चिन्ह और रंगों के द्वारा व्यक्त किया जाता है। मनोविज्ञान और अध्यात्म-विद्या के अन्तर्गत दार्शनिक मस्तिष्क के परिवर्तनों को भिन्न २ स्थितियों में चरम सीमा तक व्यक्त करने का प्रयत्न करता है। तर्कना में एक के बाद दूसरी तर्कना के द्वारा अपने विचारों की पुष्टि करता है। इस प्रकार एक निश्चित धारणा तक पहुंचने का प्रयास करता है। कभी २ सीधी तर्कना करता है परन्तु जब सीधी तर्कना की स्थिति पार कर लेता है तो संकेत विधि के द्वारा उस विचार को व्यक्त करता है जिसको पाठक स्वयं सोच लेता है। चित्र का अभिप्राय और कार्य भी वही है। सब विचारधारा तथा ध्वनियों के प्रभाव जो चित्रकार के मस्तिष्क में उत्पन्न हुए हैं कुछ रेखाओं के द्वारा व्यक्त किये जाते हैं। इस प्रकार जब वास्तविक गुणों के द्वारा अपने भावों को व्यक्त करने की सीमा को पार कर लेता है तो भावात्मक विधि के द्वारा संकेतों के सहारे उच्चतम विचारों को व्यक्त करता है। अतः चित्रकला रंग और आकृति के माध्यम से मनोवैज्ञानिक भावों को व्यक्त करने की एक पद्धति है। वास्तव में चित्रकला और दर्शन में कोई विशेष अन्तर नहीं है। परन्तु यह नियम उच्च श्रेणी के चित्रों पर विशेष लागू होता है।

भिन्न प्रकार के व्यक्तियों के वार्तालाप द्वारा रचित कविता उच्च भावनाओं को व्यक्त करती है। संगीत में ध्वनि के द्वारा वही कार्य होता है जो आकृति और रंग के द्वारा चित्रकला में व्यक्त किया जाता है। अतः ललित-कला के द्वारा सौन्दर्यात्मक अनुभूति होती है। मनुष्य में अति मानव की भावना का सृजन होता है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि चित्र के द्वारा एक संतोष होता है। निम्न श्रेणी के चित्रों से यह भावना ठीक हो

सकती है परन्तु उच्च कृतियाँ संतोष से भी अधिक कार्य करती हैं। आकृति और रंगों के अतिरिक्त दर्शक चित्र के आन्तरिक पक्ष में प्रवेश करता है और उच्च जीवन और उच्च भावना का अनुभव करता है। इस प्रकार साकार से निराकार का अनुभव करता है। चित्र के साथ एकाकार हो जाता है। महेन्द्रनाथ दत्त के कथनानुसार कुछ लोगों का मत है कि अनुभव और निरीक्षण के द्वारा मन की शक्ति विकसित होती है,परन्तु साधारण अनुभव और निरीक्षण के द्वारा उसको साधारण भावों का ज्ञान होता है। परन्तु महानतम विचारों में जब मनुष्य का एकाकार हो जाता है उसकी दशा विदेह की सी हो जाती है। एक मौलिकता का विकास होता है। जब तक व्यक्ति अनुभव पर आधारित रहता है मध्य श्रेणी का माना जाता है परंतु जब दर्शक और दृष्टा का एक रूप होता है मौलिकता का जन्म होता है। चित्रकार का मस्तिष्क मनोवैज्ञानिक पद्धतियों का अनुकरण करता है परन्तु उसको इसका ज्ञान नहीं होता। वह जितना आदर्श की ओर अग्रसर होता है उतना ही साधना के द्वारा सफल होता है। इसी कारण चित्रकार चित्रों को निर्जीव, सजीव और उच्चतम चित्र की श्रेणी में विभाजन करते हैं। ललित कला की दक्षता ईश्वर-प्रदत्त है। यह गुण साधन से पूर्ण नहीं होता है। ईश्वर कृपा से ही बिरलों को प्राप्त होता है।

ललित कला का सम्बन्ध धर्म से विशेष रहा है। विश्व की ललित कला में धर्म-निरपेक्ष की भावना नहीं पाई जाती है। परन्तु आज ललित कला धर्म-निरपेक्ष है। धर्म से विमुख होने के कारण पवित्रता की भावना का लोप हो गया है। बौद्ध भिक्षुओं के द्वारा चित्रकला में धर्म का भली प्रकार प्रतिपादन हुआ है। कलाकार के गुणों में श्रद्धा, मान, पवित्रता और आदर्श के प्रति प्रगाढ़ प्रेम अत्यावश्यक है। मन की चंचलता, आदर्श को जानने की उत्कट इच्छा कलाकार की मानसिक परिस्थितयाँ हैं। कलाकार बनने के लिए सन्त बनना आवश्यक है। कलाकार इसी कारण योगी कहा गया है।

मुद्रा

प्रत्येक वस्तु अथवा पदार्थ में शक्ति की कुछ न कुछ मात्रा अवश्य होती है। वह शक्ति या तो स्वतः उसमें विद्यमान होती है अथवा किसी अन्य पदार्थ से वह शक्ति प्राप्त करता है। वह शक्ति समीप की वस्तुओं को प्रभावित करती है। जब हम किसी वस्तु को देखते हैं तो उस वस्तु से एक आकर्षण उत्पन्न होता है। जिस वस्तु से जितना अधिक आकर्षण उत्पन्न होता है वह वस्तु उतनी ही अधिक प्रिय होती है। दर्शक उसको बारम्बार देखने की इच्छा प्रगट करता है। दर्शक उस वस्तु की मुद्रा पर प्रभावित होता है और उस मुद्रा में वह विभोर हो जाता है। उस वस्तु और दर्शक में एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। आरम्भ में ही पूर्ण पदार्थ के देखने से एक भावना का जन्म होता है। इस समय वह वस्तु की विशेषताओं को अनुभव नहीं कर पाता। शनैः शनैः उस पदार्थ के प्रति उसकी भावना गहन होती जाती हैं और वस्तु की सूक्ष्म से सूक्ष्म विशेषताओं का ज्ञान बढ़ता जाता है। अन्त में एक ऐसी दशा होती है जब कि सर्वोच्च विशेषताओं का ज्ञान हो जाता है और कलाकार की एकाकार दशा वस्तु की वास्तविक दशा को प्रत्यक्ष कर देती है। कलाकार वस्तु की आत्मा को जान लेता है। यह विषय गहन विचार का है।

दृष्टा को किसी वस्तु के दो पक्ष दिखाई देते हैं। एक पक्ष वस्तु की आत्मा दूसरी वस्तु का वाह्य रूप। अतः प्रत्येक वस्तु में चाहे वह सजीव हो अथवा निर्जीव दो ऊपर लिखित सत्ताओं का प्रभाव रहता है। एक सत्ता दूसरी सत्ता की गतिविधि को देखती रहती है। यह दोनों सत्ताओं का एक दूसरे से संघर्ष नहीं होता अपितु गहन मेल रहता है। इसी प्रकार मस्तिष्क के भी दो भाग होते हैं। प्रत्येक भाग की अपनी एक सत्ता है। निम्न भाग की सत्ता वस्तु के वाह्य रूप को अनुभव करती है। वस्तु के प्राण को अनुभव करने वाली अपर सत्ता है। किसी व्यक्ति की मुखाकृति, गति, गुनगुनाहट, भिन्न मुद्रायें यदि ध्यान से देखी जायें तो अनुभव होगा कि प्रत्येक में भिन्नता

है। प्रत्येक वस्तु की एक विशेष मुद्रा अधिक प्रभावशाली होती है। इस मुद्रा का ज्ञान और सूक्ष्म विवेचन ही विशेष साधना के द्वारा होता है। कलाकार के ध्यानावस्थित होने पर एक शान्ति मन में उत्पन्न होती है। जिस मुद्रा पर वह प्रभावित होता है वह उसके मस्तिष्क में भ्रमण करती रहती है। अन्त में तूलिका द्वारा वह प्रत्यक्ष कर देता है। मनोवैज्ञानिक रूप से हम किसी के मस्तिष्क को समझ नहीं सकते परन्तु जब वह अपने भावों को तूलिका अथवा लेखनी द्वारा व्यक्त करता है तो भावना का ज्ञान होता है।

उच्चतर चित्रों में जहाँ विषय की गम्भीरता और महान स्वर का चित्रण है मस्तिष्क के निम्न भाग का स्थान कम है। चित्र की गूढ़ता के कारण वाह्य भाग जिसमें रसिकता का विशेष स्थान रहता है लोप हो जाता है। साधारण व्यक्ति साधारण गम्य वाला उसको सरलता से समझ नहीं पाता। इस प्रकार के चित्र में बल, मनोभाव और उच्चतर जीवन की प्रकृति चित्रित की जाती है। इस श्रेणी के चित्रों के अध्ययन में मुखाकृति, तत्सम्बन्धी रेखाओं द्वारा विचित्र रचना और एक विशेष भावना का व्यक्तिकरण होगा। आगे चित्र को अधिक गहन रूप से अध्ययन करें तो प्रमुख रेखायें जो आरम्भ में दिखाई दी थीं लोप हो जावेंगी और दूसरी प्रकार की रेखाओं का जन्म होगा जो अब तक अप्रत्यक्ष थी। भाव के प्रभाव से पहली आकृति से अब आकृति भिन्न दृष्टिगोचर होगी। इस तरह चित्र से परिचय अधिक बढ़ जाता है तो दूसरी प्रकार की रेखाओं का भी लोप हो जाता है और तीसरे प्रकार की रेखायें प्रत्यक्ष होने लगती है। इस दशा में हम चित्र के वास्तविक स्वभाव से परिचित हो जाते हैं। प्रत्येक अध्ययन में पहली रेखाओं का समूह लोप होता जाता है नवीन प्रकार की रेखाओं का जन्म हो जाता है और अन्त में एक वह दशा होती है जब दृष्टा और दृश्य एक रूप हो जाते हैं। वही पूर्णता की दशा है। जिस चित्र का प्रभाव मन पर अधिक पड़ता है और जो स्मृति में जितना अधिक रहता है वही उतना

उत्तम कहलाता है। यहां तक कि बहुत से चित्र ऐसा प्रभाव मन पर डालते हैं कि वह प्रभाव जीवन पर्यन्त रहता है।

श्रेष्टतम चित्रों में पवित्र अथवा महान विचारों का दार्शनिक चित्रण होता है। चित्रकार साकार रूप से निराकार में परिवर्तित हो जाता है। उसके वातावरण की भावना, समय, उसका युग और स्वयं की शारीरिक आकृति बदल जाती है। उसका कोई अस्तित्व नहीं रहता। जितना चित्रकार निराकार से साकार की ओर अग्रसर होता है उतना ही उसका व्यक्तित्व निखरता है। इस स्थिति में जब कोई कलाकार को पाता है तो वह स्वयं उसको नहीं समझ पाता, यह चित्रकार की तन्मयावस्था होती है। मन बड़ा चंचल है जैसा पहले बतलाया गया है परन्तु जब वह एकान्त में, शान्त होकर मन को एकाग्र करता है तो स्वयं में एक नवीन ओज अनुभव करता है।

रंग

अणु सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ को कहा जाता है। इस अणु में देखने, सुनने, स्पर्श और चखने की पूर्ण शक्ति होती है। बहुत से अणु मिलकर ऐन्द्रिक पदार्थों का निर्माण करते हैं। इस प्रकार अणु और ऐन्द्रिक पदार्थ सर्व शक्ति से पूर्ण होते हैं। अतः प्रत्येक का एक अलग कार्य होता है। जब किसी स्नायु पर किसी आन्तरिक अथवा वाह्य पदार्थ का प्रभाव पड़ता है तो समस्त शरीर में एक लहर दौड़ जाती है। जब इस लहर का प्रभाव गहन रूप से शरीर में होता है तो मस्तिष्क के उच्चतर कार्य विकसित होने लग जाते हैं। साधारणतया हम वस्तु को रेटीना के द्वारा देखते हैं। उस वस्तु की बहुत सी आकृति हमारे मस्तिष्क पर प्रभाव डालती हैं। परन्तु वे सब एक के बाद एक करके विलीन होती चली जाती हैं। जब हम गहन रूप से उस पर विचार करते हैं तो विशेष प्रकार की स्नायु कार्य करने लगती है। इस दशा में हम वस्तु के आन्तरिक में देखते हैं। आरम्भ में एक धुंधली आकृति का जन्म होता है। हम उसे इसी रूप में सर्व प्रथम देखते हैं।

धीरे धीरे जैसे २ हमारी अधिक शक्तिशाली स्नायु अपना प्रभाव डालती है हमको वस्तु अधिक स्वच्छ दृष्टिगोचर होती है। इस दशा में हमारी कल्पना उस वस्तु के सम्बन्ध में एक विशेष प्रकार की आकृति, माप और रंग का अनुभव करती है। यही किसी वस्तु की तीन विशेषतायें होती हैं जो सदैव हमारे सम्पर्क में आती हैं। आकृति और माप सर्व प्रथम हमारे मन में स्थान ग्रहण करते हैं परन्तु शक्ति और उत्साह की मात्रा के द्वारा ही रंग के प्रभाव का ज्ञान होता है। चित्रकार सूक्ष्म निरीक्षण के कारण उस मुद्रा का अनुभव करता है। गुणों तथा रंग पर तूलिका के द्वारा प्रकाश डालता है। प्राय: लोग दो प्रकार के रंगों से प्रभावित होते हैं वह है हलका और गहरा। कोई गहरे रंग को अधिक रुचिकर समझता है। कोई हलके रंग में अपनी रुचि दिखलाता है। असीत कुमार हलदार का कथन है कि चित्रकार को अपनी शैली और रंग की रुचि को अपने शिष्यों पर नहीं थोपना चाहिये। यही कारण है कि हलदार महोदय कलाकार को स्वतन्त्र रूप से प्रगतिशील होने का आदेश देते हैं। बहुत से व्यक्ति रंग के अन्धे होते हैं। वे वस्तु के वास्तविक रंग को नहीं समझ पाते। प्राय: देखा जाता है कि आदमी बड़े जोश में आकस्मिक प्रभाव दिखाता है। इस दशा में ऐसा मालूम पड़ता है कि वह कानों से देख रहा है और आंखों से सुन रहा है।

बालकों को चमकदार रंग की तस्वीर अधिक प्रिय लगती है। साधारण प्रकार के चित्र प्राय: इसी प्रकार के होते हैं। जन साधारण को जो विज्ञापन चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं उनमें भी चटकदार रंगों का प्रयोग होता है। यह चित्र पोस्टर रंगों से अधिक सुन्दर बन सकते हैं। जब किरमिच पर अधिक चटकीले रंगों के चित्र बनाये जाते हैं तो उस समय मनोविज्ञान के नियमों का पालन पूर्णतया नहीं किया जाता है। चित्र की आकृति मुख, नेत्र आदि में प्रतिनिधित्व होता है। जिस भावना को व्यक्त करना हो उसका प्रतिनिधित्व हो यह आवश्यक होता है। रंगों का प्रभाव भी चित्रानुकूल होना

चाहिए। इस प्रकार के चित्र साधारण व्यक्ति को प्रभावित कर सकते हैं परन्तु यह अमनोवैज्ञानिक चित्र कहे जायेंगे। उत्तम प्रकार की कृतियों में चटकदार रंगों का प्रयोग कम होता जाता है। उच्च भावना को चित्रित करने में अधिकाधिक कुशलता और दक्षता का प्रयोग होता है। मुद्रा का विशेष महत्व होता है। बाह्य संसार में जिन चटकीले रंगों का प्रयोग अधिक प्रभावित करता है वह भावना के अनुसार प्रयोग किया ही जाता है।

प्रत्येक प्रबल आवेग समस्त स्नायु-मण्डल को बदल देता है। अतः प्रत्येक मुद्रा में उसके अनुरूप रंग दिखाई देते हैं। अलङ्कार शास्त्री तथा कवियों ने रंगों की भिन्नता का सदैव वर्णन किया है।

यह विषय जीवन-विद्या का है अतः चित्रकला से इसका घनिष्ट सम्बन्ध है। उत्तेजना वाह्य अथवा आभ्यांतारिक सर्व प्रथम वक्षस्थल में स्थान ग्रहण करती है तत्पश्चात् भुजाओं की ओर अग्रसर होती है। भुजाओं से मस्तिष्क में पहुँचती है और पैरों से होती हुई नेत्रों में स्थान ग्रहण करती है महेन्द्रनाथ दत्त का ऐसा मत है। कुछ का विचार इससे भिन्न है। साधारणतया उल्लास, अथवा भावावेश का प्रभाव सर्व प्रथम गालों पर होता है। गालों की दशा दुख और सुख, हर्ष और शोक, क्रोध और भय में बदल जाती है। सूक्ष्म विवेचक उस समय रंग परिवर्तन का अनुभव करता है। कवि आकृति के भिन्न २ रंगों से भिन्न २ प्रकार के भावावेश को लेखनी वद्ध करते हैं, चित्रकार तूलिका वद्ध करता है और मूर्तिकार छैनी वद्ध करता है। जैसे ही खून का उबाल हृदय में आता है वक्षस्थल का रंग बदल जाता है। पैरों के व्रतों में, अंगुली के पोटुओं पर, कानों के शिरों पर यहां तक कि मस्तक पर भी रंग परिवर्तन की पूर्ण झलक दिखाई देती है। इसी समय स्वाभाविक रंग और भावुक रंग का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। उत्साह की दशा में सब स्नायु एक साथ कार्य करती है उनका कार्य भिन्न होता है। उच्चतम प्रकार के चित्रों में जहां तत्व अथवा भाव का विवेचन

करना है उसे तूलिका से व्यक्त करता है आत्मा का साकार रूप चित्रित किया जाता है। वहीं जीवन होता है। पतली से पतली स्नायु, तन्तु, मांस पेशियां बड़ी बुद्धिमत्ता से प्रत्यक्ष की जाती है तभी आत्मा का सच्चा प्रतिनिधित्व हो सकता है। किसी के हाथ अथवा पैर का चित्र ही बनाना है तो जोड़ों की भिन्न आकृति, जोड़ों के बीच की माँस पेशियां सफल साधक के द्वारा ही व्यक्त की जा सकती है। किसी की हथेली से उसके मस्तिष्क को जान लेते हैं। ज्योतिषी अथवा हस्त रेखा विशारद हाथ की हथेली से भाग्य को प्रत्यक्ष करते हैं। कुशल साधक रेखा चित्र के द्वारा बिना रंगों के प्रयोग के पूर्ण भाव व्यक्त कर सकता है। चित्रकार संकेतात्मक चित्रों में इतना विभोर हो जाता है कि वह अपने अस्तित्व को भूल जाता है। उस समय सूक्ष्म विवेचन की पराकाष्ठा हो जाती है। उसके मस्तिष्क में जो स्थायी वारीक बात जम जाती है उसी को व्यक्त करने में वह तल्लीन हो जाता है और अन्य को छोड़ देता है। इस प्रकार के चित्र मनोवैज्ञानिक चित्र कहलाते हैं जो विचारों के स्वामी हैं उनके लिए मनोवैज्ञानिक शैली का विशेष महत्व है। साधारण जनता को यह प्रिय नहीं होगा। प्रकृति तथा मनोविज्ञान के समस्त नियमों को यदि अनुकरण किया जाय तो मनोवैज्ञानिक शैली के चित्रों की सफल रचना हो सकती है।

संसार के समस्त धर्मों में ऊषा का एक प्रमुख स्थान है। सबसे आनन्द दायक यह समय स्वीकार किया जाता है। हिन्दू धर्म शास्त्र इसे ब्रह्म महूर्त कहते हैं। संत महात्माओं के यह उपासना का समय है। पवित्रतम भावनाओं के जन्म का यही समय है। कवि इसी बेला को लेखनी वद्ध करता है और चित्रकार को इस बेला में रंग सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान हो सकता है। जैस २ सूर्य की किरणों का प्रभाव बढ़ता है सांसारिकता का प्रभाव बढ़ता जाता है। अतः ऊषा के चित्रण में चित्रकार को पूर्ण सामंजस्य का अनुभव होता है। चित्रकार जीवन का अनुभव करता है। कारण वाद से उसका सम्बन्ध कम रहता है। वह अपने आपको पहचानता है। प्रत्येक

वस्तु, बादल का प्रत्येक भाग, और इसी प्रकार समस्त सांसारिक वस्तुओं में वह अपने आपको देखता है। सब वस्तुओं में उसे पूर्ण सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है।

प्रत्येक विचार का एक विशेष रंग होता है। जब एक विचार प्रमुख होता है तो कुछ सहायक विचार गौण रूप से उसकी सहायता करते हैं। अगर हर विभिन्न राष्ट्रों के भाव पूर्ण चित्रों का अध्ययन करें तो रंगों की भिन्नता दृष्टिगोचर होगी और उसके द्वारा हमको राष्ट्र का ज्ञान भी होगा। सुन्दरता का कोई माप नहीं है। भिन्न २ देशों के लोग वस्तु की सुन्दरता को भिन्न २ माप से अनुमान करते हैं। कलाकार देश काल के प्रभाव से सदैव प्रभावित होते हैं। विदेश के लोगों की रंग योजना और सुन्दरता के मूल्यांकन को हम पूर्णतया स्वीकार नहीं कर पाते, कारण यह है कि प्रत्येक देश की कला और तत्सम्बन्धी मान्यतायें होती हैं वे मान्यतायें उस राष्ट्र के लोगों के रेटीना पर सूर्य की भिन्न प्रकार की प्रतिछाया के आधार पर स्वीकार की जाती हैं। उन मान्यताओं में सामाजिक प्रभाव भी रहता है। ऋतुओं का प्रभाव अपनी विशेषता रखता है। अगर हम को रंग के प्रभाव का कारण ज्ञात हो जाय तो निश्चय ही हम उस देश की रंग सम्बन्धी मान्यता का मूल्यांकन कर सकते हैं। भिन्न २ देशों की उच्चतम कला-कृतियों का मूल्यांकन हम उचित रीति से नहीं कर पाते यही इसका मुख्य कारण है। भारतवर्ष विशाल देश है। एक स्थान पर जो सुन्दरता का माप है वह दूसरे स्थान पर नहीं है। पंजाब क्षेत्र की वेष भूषा, बंगाल तथा राजस्थान से भिन्न है। अतः वहाँ की सुन्दरता का भी मूल्यांकन भिन्न प्रकार होता है। पंजाबी को राजस्थान की महिलाओं की पोशाक इतनी प्रिय नहीं प्रतीत होगी, यही बात राजस्थान के व्यक्ति के लिए भी कही जा सकती है। विवाह के समय किसी भारतीय समाज में काली पोशाक को स्थान नहीं है। भारतीय आध्यात्मिक विद्या विशारदों ने एक विशेष प्रकार के रंग को पवित्र मानकर उसी को प्रयोग करने का आदेश दिया है।

अलङ्कार शास्त्री भी इसी प्रकार भिन्न २ मुद्राओं में भिन्न २ रंगों का प्रयोग बतलाते हैं। वसन्त ऋतु में पीले रंग का प्रयोग किया जाता है। टेसू के फूल के रंग में एक स्वास्थ्य वर्द्धक शक्ति होती है जो उस ऋतु में अधिक प्रभाव रखती है। यही कारण है कि वसन्त पञ्चमी से होली तक टेसू के फूल के रंग को कई बार धार्मिक कृत्य कह कर प्रयोग करते हैं। इन सब बातों के आन्तरिक में सूर्य का प्रकाश, आकाश की तदनुसार स्वच्छता, पृथ्वी का स्वाभाविक प्रभाव और अपने चारों ओर के वातावरण का मुख्य प्रभाव है। इन सब का प्रभाव रेटीना पर पड़ता है। डारविन के प्रयोग और अप्रयोग के प्रभाव से सभी परिचित हैं। अगर किसी वस्तु का कम प्रयोग होता है तो वह अधिक प्रयोग होने पर संकट में पड़ जावे ी। गर्मी के दिनों में ठण्डे कमरे से यदि कड़ी धूप में निकलना पड़ता है तो चकाचौंध मालूम पड़ता है। गर्म देश के लोग सूर्य की कड़ी चमक को जिस प्रकार सहन करते हैं ठण्डे देश के रहने वाले नहीं कर सकते। शरीर के रंग को देश काल के अनुसार पाते हैं। अफ्रीका के निवासी भारत से भिन्न हैं और भारत के योरुप से। यह सब रंग का प्रभाव देश काल तथा ऋतु के अनुसार है। इसी प्रकार रंग की रुचि का भी होता है। कलाकार और अध्यात्म विद्यानुरागी के लिए रंग एक चिन्ह है। पूजा के समय कलाया पीले और लाल रंग के रंगे धागों का ही प्रयोग किया जाता है। योरुप में रात्रि की पोशाक दिन की पोशाक से भिन्न है। जैसे २ उच्च भावनाओं का सृजन होता जाता है रंग भी बदलता जाता है और हम अधिक प्रभावशाली रंगों का प्रयोग करने लगते हैं। पापी, हत्यारा और घृणास्पद विचार वाला सदैव नीच विचार का होता है। यह स्नायु-मण्डल के निम्न श्रेणी के विचार हैं इनमें प्राय: गहरे काले, नीले और कभी २ घोर काले रंग का प्रयोग किया जाता है। आनन्द, उल्लास के समय पीला, नारंगी, सुनहरी, केशरिया रंगों का प्रयोग किया जाता है। चोचलेपन में, नखरा करने में, प्रेम प्रदर्शन में नीला, बेंगनी, नील के रंग का प्रयोग किया जाता है। लाल रंग क्रोध का सूचक है।

प्रणयशीलता में लाल रंग का प्रयोग होता है परन्तु यह लाल रंग सिंदूरी रंग से भिन्न होता है। मातृ-प्रेम और उच्च विचारों में हरे रंग को प्रतीक माना जाता है। ईश्वर-भक्ति का प्रतीक सफेद रंग है जो स्वच्छता का भी द्योतक है। जब व्यक्ति उच्च भावनाओं में लीन होता है तो उसे चित्रकला प्रिय लगती है। कलाकार के स्वभाव का प्रभाव भी रंग बतलाते हैं। प्रसन्न चित्त व्यक्ति हलके रंगों को पसन्द करते हैं। पीला, नारंगी, सुनहरी आदि उस श्रेणी में आते हैं। गम्भीर प्रकृति के लोग गहरे रंगों का प्रयोग करते हैं। लाल और काले रंग आदि इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं। वैराग्य अथवा वृद्धावस्था होने पर गेरुआ अथवा मटीला और सफेद रंग अधिक रुचिकर होता है। भिन्न २ राष्ट्रों की भिन्न २ पोशाकें होती हैं। राष्ट्र के स्वामी की पोशाक उसका प्रतीक होता है। वह पोशाक वहाँ के रंग को उचित रूप से बतलाने में बड़ी हितकर होती है। भारतीय हाथी दाँत के समान सफेद अथवा दूध के समान सफेद रंग की पोशाक को विशेष महत्व देते हैं। पाश्चात्य प्रभाव के कारण बर्फ के समान सफेद रंग रुचिकर प्रतीत होने लगा है।

योरुपीय देशों में शोक के समय काली पोशाक का प्रयोग होता है। मृतक के जलूस के समय सब प्राय: काला वस्त्र धारण करते हैं। जिसके यहाँ यह घटना होती है उसको भी काला वस्त्र पहनना पड़ता है। मनोवैज्ञानिक तथा योरुपीय विचार वेत्ताओं के मतानुसार वह परिवार अपवित्र माना जाता है। काला रंग अशुद्धि का द्योतक है। इसके विपरीत भारतीय प्रणाली में सफेद रंग का प्रयोग किया जाता है। भारतीय धारणा यह है कि जो व्यक्ति दाह-संस्कार करता है वह ब्रह्मचारी के समान हो जाता है। उसकी वेष भूषा, भोजन और दैनिक जीवन एक सन्त का जीवन होता है। उसके भोजन में हलदी तक का प्रयोग नहीं होता। यह समस्त सांसारिक सुखों से वञ्चित हो जाता है। अतः उसका जीवन पवित्रतम होता है। सफेद रंग पवित्रता का द्योतक है।

रंगों की भिन्नता और उनका भिन्न २ प्रयोग शक्ति की गति के अनुसार है। रंग का सम्बन्ध रेटीना के प्रभाव पर अधिक आधारित है। उसी के अनुसार मन पर उसका प्रभाव पड़ता है। स्त्रियां पुरुष की अपेक्षा रंग की विशेषता को अधिक महत्व दे सकती हैं स्त्रियां प्रायः हलका रंग अधिक पसन्द करती हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में कोई निश्चित मत नहीं दिया जा सकता।

मूर्छना (Cadence)

जब कलाकार किसी आकृति अथवा वस्तु का मन में चित्रण करता है तो वह मनोवैज्ञानिक होता है। तूलिका से व्यक्त करने पर चित्र बन जाता है। इस प्रकार चित्रकार सर्व प्रथम मस्तिष्क से कार्य करता है। तत्पश्चात् वह हाथ द्वारा व्यक्त करता है। पूर्ण चित्र में एक केंद्रीभूत वस्तु होती है वही वस्तु पूर्ण-चित्रण का प्रतिनिधित्व करती है। सर्व प्रथम कलाकार एक विशेष बात पर बल देता है। कभी २ वह चित्र में एक, दो, तीन विशेष बातें निश्चित कर लेता है और तूलिका द्वारा सब पर समान बल देने लगता है। दर्शक का मन प्रभावित हो जाता है, एकाकार हो जाता है और एक ऐसे क्षेत्र में तैरने लगता है जहां वह उसे अव्यक्त किया हुआ पाता है। जब दर्शक अपनी साधारण दशा में आता है तो उसको प्रत्येक वस्तु में ही केंद्र प्रतीत होता है। उसके भाव उस समय उच्च होते हैं। वह सब वस्तुओं में समान स्वरूप का अनुभव करता है। इस दशा में वह चित्रकार के विचारों से इतनाप्रभावित होता है कि जिस भावना को चित्रकार ने व्यक्त किया है वह उसे पूर्णतया समझ लेता है। यह चरम सीमा होती है।

चित्रकार न पूर्ण मनोवैज्ञानिक होता है न पूर्ण मुखलक्षण विशेषज्ञ परन्तु अभ्यास के द्वारा वह व्यवहारिक ज्ञान में दक्ष होता है। रीढ की हड्डी के द्वारा ही वह मुद्रा का अनुभव कर लेता है। झुकना, टेढ़े होना, घूमकर

जाना, सीधा रहना, कुछ बेसुध हो जाना, कूबड़ निकालना, यहां तक कि सीधे अथवा बायें को मुड़ना, सीधे खड़े रहना आदि सब मस्तिष्क की दशा के बोधक होते हैं। आँख की पुतली जिस मुद्रा को प्रदर्शित करती है रीढ की हड्डी उसी के अनुसार कार्य करती है। परन्तु इन सब प्रकार की मुद्राओं में सजीवता अवश्य होती है। आकृति, रंग और अनुपात, साधारण सामंजस्य और ताल का प्रतिनिधित्व करते हैं। घुंघराले, झबराले, चटाई सदृश, तार के समान, सन के समान मुलायम, गेहूँ के समान भूरे, बादामी, कुछ रक्त वर्ण, गाजर के समान, नीले रंग की झलक वाले, सफेद, स्याह काले आदि मनुष्य के स्वभाव के द्योतक हैं जो मस्तिष्क के विप्लव को प्रदर्शित करते हैं। गूंथे हुए अथवा चुन्नटदार बाल, सीधी प्रकार कंघे द्वारा कढ़े हुए, बिखरे हुए, बंधे हुए, आधे बंधे हुए, मुंडे हुए, ठीक प्रकार छटे हुए, फसल की तरह उगे हुए आदि एकता और ताल के द्योतक हैं इन्हीं के द्वारा भिन्न २ प्रकार के भावों को कवि अथवा चित्रकार प्रदर्शित करते हैं। मनुष्य का जीवन एक काव्य है। प्रत्येक अङ्ग का वर्णन कवि लेखनी द्वारा करता है, चित्रकार तूलिका द्वारा। ताल की हर दशा में प्रमुखता रहती है। बेताल की दशा अखरती है। उच्च प्रकार की कृतियों में भाव मुख्य होते हैं और विधि गौण रूप धारण करती है। काव्य में इस दशा को चित्रमय काव्य कहेंगे। चित्रकार यदि उसी भाव को रेखा और रंगों में, व्यक्त कर देता है। तो वह ताल का ठीक निर्वाह कर देता है। यही भाव मस्तिष्क को शान्ति प्रदान करता है और सुन्दरता का द्योतक होता है।

चित्र की रचना में यदि प्रत्येक अङ्ग का सविस्तार विवरण चित्रित किया जाय तो एक अङ्ग का दूसरे अङ्ग से जो सम्बन्ध होगा वह एक दूसरे से संयुक्त होगा। इन सब के मेल से एक महान चित्र की रचना होगी। प्राचीन काल से यह देखा जाता है कि वदना कृति चित्रण में चित्रकार अपनी२ विशेषताओं के लिए विख्यात रहे हैं। उदाहरण के लिए नाक चपटी, झुकी हुई, पैनी, भद्दी, कुक्करीय, मोटी, मोथरी, छोटी मोटी आदि। ओष्ठ—

मोटे, कटे हुए, आगे निकले हुए, दबे हुए, चिड़चिड़े, मुंह फुले आदि वर्णन और चित्रण में अपनी विशेषता रखते हैं। इसी प्रकार लम्बी, गहरी छोटी, गोल, ठोड़ी का इनका सम्बन्ध है। इस प्रकार की आकृतियों के कुछ स्वभाव अथवा गुण भी हैं जैसे छोटी ठोड़ी वाला मूर्ख, अथवा मनसुखा। नाटक के जोकर बनने के लिए भी ठोड़ी को दबा लेते हैं। घोड़े के समान ठोड़ी वाला व्यक्ति अपनी भूख के लिए प्रसिद्ध माना जाता है। नीचे की जाबड़े की हड्डी, गाल की हड्डी, मोटाई में भिन्न प्रकार की होती हैं इनके भी भिन्न २ प्रकार के भाव होते हैं।

वदना कृति चित्रण की सबसे बड़ी विशेषता है। फौज में प्रत्येक सिपाही के अलग नम्बर डाल दिये जाते हैं। गर्दन कट जाने पर धड़ों से व्यक्ति को नहीं पहचाना जा सकता। अतः नम्वर मुखाकृति का कार्य करते हैं। विचार मग्न और भक्ति भावना से पूर्ण व्यक्ति की मुखाकृति अंडे के समान होगी। धार्मिक कविता के पाठ करने पर वह प्रभावित होकर सुबकने अथवा रोने लगेगा, इस प्रकार की भक्ति रुग्ण भक्ति कही जावेगी। यदि किसी व्यक्ति का मुख गोल और चपटा है वह भक्त होगा परन्तु उसका स्वभाव गम्भीर होगा। उसमें बहुत फुर्ती होगी। यदि किसी व्यक्ति का मुंह गोल और भरा हुआ होगा तथा आंख, नाक, ओष्ठ, ठोड़ी और भौंह सुडौल और व्यवस्थित हों तो उसका मस्तिष्क बड़ा शक्तिशाली होगा, असाधारण विचार उसके ही मन में उत्पन्न होंगे। ऐसा व्यक्ति नवीन खोजक, नेता, हर कार्य में अग्रसर होगा। वह एक भावुक संसार में भ्रमण करता है। इसी प्रकार मस्तक—चपटा, निकला हुआ, छोटा, चौड़ा आदि भिन्न २ प्रकार के भावों के सूचक हैं। वक्षस्थल और कंधे—चौड़े, छोटे, टेढ़े, सपाट, कबूतर के समान, आगे को झुके हुए,, पीछे को झुके हुए आदि भिन्न २ भावों को व्यक्त करते हैं। नाखून और अंगुलियों को विशेषता दी जानी चाहिये। अंगुलियाँ भी भिन्न प्रकार की होती हैं। लम्बी, छोटी, मोटी, नौकदार, शुण्डाकार आदि। स्त्री और पुरुष की अंगुलियों में भी अन्तर होता है। पुरुष की अपेक्षा स्त्री

का अंगुली पतली होती हैं। कलाकार इन सबको कलात्मक नियमों द्वारा न व्यक्त करके उसके गुणों से परिचित होकर वदनाकृति चित्र लक्षण के अनुसार चित्रित करता है। नाखून—गोल, कोणदार, नौकदार, लाल, दमकदार, सफेद, पीले सफेद, सूखी हड्डी के समान सफेद सब भिन्न २ स्वभाव के बोधक हैं। चपटा कोणदार, सफेद नाखून सबसे खराब होते हैं। नाखून—पतले, नौकदार, कान्तिहीन मन की अस्थिरता, मानसिक भ्रम के बोधक हैं। थोड़े गोल और अण्डाकार नाखून, रोली के समान रंग वाले, चमकदार सतह वाले दृढ़ प्रतिज्ञता के सूचक हैं। प्रत्येक अंग का अपना महत्व है। चित्रकार अथवा मूर्तिकार इन गुणों से परिचित भावात्मक चित्रण में सफल होगा। यदि चित्रण विधिवत है तो किसी एक के चित्रण से ही उसके स्वभाव का ज्ञान हो जाता है। यह विषय बड़ा विशाल है यहां उसका थोड़ा सा विवरण इस विषय में अधिक जानकारी की रुचि उत्पन्न करने के लिए दिया गया है।

प्रत्येक चित्रण में कुछ विशेषताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। चित्रकार रेखा और रंगों के द्वारा वाह्य आकृति का चित्रण करता है। चित्रकार सूक्ष्म विवेचन करता है और अधिक साधना के फल स्वरूप चित्र के भाव को व्यक्त करने में सफल होता है। मन की एकाग्रता उसको विभोर कर देती है। जो जितना कुशल कलाकार होता है वह उतना ही अल्प समय लगाकर पूर्ण भाव को व्यक्त कर देता है अथवा समझ लेता है। कलाकार कितनी साधना द्वारा अपने भाव व्यक्त करता है इस बात को दर्शक अनुभव नहीं करता और यह कलाकार का दुर्भाग्य होता है उसको उन व्यक्तियों की आलोचना का शिकार बनना पड़ता है जिनको उसका अल्प ज्ञान होता है। कलाकार कुछ व्यंजक संकेतों द्वारा कला में दक्ष होने के कारण तूलिका की चोटों के द्वारा भावात्मक चित्रण में जो कुशलता प्रदर्शित करता है उसको साधारण व्यक्ति अनुभव ही नहीं कर पाता। मूर्छना के साधारण नियमों के द्वारा कलाकार चित्र, मूर्ति और संगीत के विचारों की शृङ्खला उत्पन्न कर

देता है और कभी २ नकारात्मक संकेतों द्वारा चित्र को पराकाष्ठा पर पहुँचा देता है । इस स्थिति में कलाकार यह व्यक्त करता है कि वह स्वीकारात्मक विधि द्वारा भावों को व्यक्त करने में असमर्थ है ।

साधारण कलाकार वस्तु चित्रण के द्वारा यह ज्ञान प्राप्त करता है। उसके आरम्भ के लिए वह कुछ वाह्य वस्तुओं को चित्रण करता है, उसके मस्तिष्क के परिपक्व होने पर वे स्थूल वस्तुयें उसको अवास्तविक प्रतीत होती हैं । साधारण और असाधारण विचारों में अपने को विभोर करता हुआ वह भिन्न २ गतियों, भावनाओं स्नायु-मण्डलों के अन्तर का अनुभव करता है । इस प्रकार मूर्छना के वास्तविक भाव को समझ लेता है। जो कलाकार चित्र के भाव के साथ एकाकार हो जायेगा, और अपने स्नायु-मण्डल में उन भावों का अनुभव करेगा, वह सफल चित्रकार होगा। इस परिवर्तन के द्वारा वह आन्तरिक बातों को अधिक महत्व देकर चित्रण करेगा। चित्र के प्रथम अध्ययन में वाह्य बातों को विशेष महत्व देते हैं परंतु गहन रूप से अध्ययन करने पर आन्तरिक और वाह्य दोनों भाव उसको समान प्रतीत होते हैं प्रत्येक भाग का एक दूसरे के साथ घनिष्ट सम्बन्ध और एक रूपता होती है।

जब कलाकार उच्चतम कृति बनाने के योग्य होता है उस समय वाह्य वस्तुयें वह भूल जाता है। प्रत्येक वस्तु मानसिक होती है। प्रतीक का रूप हो जाती है और उसी में वह सजीवता का अनुभव करता है। उसके विचार व्यक्ति का रूप धारण कर लेते हैं और उसको चलते, खेलते, सुबकते आदि अनुभव होते हैं। इस दशा में चित्रकार दार्शनिक हो जाता है। उसके मन में पवित्रतम भावनाओं का जन्म होता है जो फलती फूलती है। हास्योत्पादक चित्र (Cartoon) अपने में पूर्ण होता है परन्तु उसमें बिकृत आकृति के द्वारा चित्रकार मूर्छना को तोड़ देता है। कलात्मक विधि से कलाकार वास्तविक आकृति को विकृत रूप देकर चित्र में परिहास का सृजन करता है। आरम्भ में आनुपातिक चित्रण करना चाहिए। परिपक्व की दशा में ही

हास्योत्पादक चित्र की रचना करनी चाहिये। कलाकार योगी का सच्चा स्वरूप है। हास्यास्पद चित्रों की रचना असाधारण नहीं है, असाधारण है आध्यात्मिक चित्रों की रचना। प्राकृतिक वस्तुयें जैसे पेड़, पशु, पहाड़ आदि में मूर्छना वस्तु के प्रभाव पर दृष्टिगोचर होती है। वस्तु का रूपान्तर करके मूर्छना का ठीक ज्ञान होता है। वस्तु में मुसकराहट, शोक, दुख, सुख आदि कलाकार के मस्तिष्क की उपज होती हैं। उस दशा का वास्तविक चित्रण कलाकार तभी कर पाता है जब अपने आपको उस स्थिति में अनुभव करता है।

पृष्ठभूमि

जिस प्रकार समय की तीन स्थिति होती हैं भूत, भविष्य, वर्तमान उसी प्रकार चित्र में भी पृष्ठभूमि, मुख्य चित्र और अग्रभूमि होते हैं। इन सब का एक दूसरे से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। किसी चित्र में उसकी भिन्न २ स्थितियों तथा मुख्य चित्र का गौण चित्रों से सहयोग प्रदर्शित करने के लिए चित्रकार पृष्ठ और अग्रभूमि के द्वारा पूर्ण करता है। पृष्ठभूमि और अग्रभूमि के द्वारा समय का अनुमान लग जाता है चित्र को उभार मिलता है। छाया प्रकाश के द्वारा पृष्ठभूमि में कलाकार ऋतु, समय और उससे सम्बन्धित वस्तुओं को चित्रित करता है। भारतीय संगीत में ताल, स्वर, अवसर, वातावरण, समय और ऋतु आदि में विभाजित करके संगीत की पृष्ठभूमि का सृजन किया है। संगीत में हर ऋतु और समय का संगीत है और वह समयानुकूल ही गाया जाना शुभ माना जाता है। नर्तकी इस बात का विशेष ध्यान रखती हैं। प्रातः, दोपहर, सायंकाल, रात्रि के संगीत से भिन्न २ प्रकार की भावनाओं का जन्म होता है। इसी सिद्धान्त के द्वारा संगीत की भिन्न २ प्रवृतियों को हम समझ पाते हैं। संगीत में यही पृष्ठभूमि है।

चित्रकार पृष्ठभूमि के द्वारा रंग के भिन्न २ प्रभावों से मुख्य चित्र को पूर्ण करता है। समयानुकूल रंगों के प्रयोग से दर्शक को चित्र

का वास्तविक ज्ञान करा देता है। कवि काव्य में शब्दों के द्वारा वही भाव व्यक्त करता है।

चित्रकार किसी निश्चित माह अथवा वर्ष के किसी निश्चित समय को व्यक्त करना चाहता है जब वह घटना हुई है जिसको वह चित्रित करना चाहता है, अतः मुख्य आकृति तथा उसकी मुद्रा पर विचार कर तुरन्त शरीर रचना के सिद्धान्त के अनुसार वह आकृति को सोचता है और ठीक भाव को व्यक्त करने के लिए उसी के अनुसार पृष्ठभूमि को व्यक्त करता है। स्थानीय वातावरण को जब कवि अथवा चित्रकार व्यक्त करता है वह एक भिन्न स्थिति बन जाती है। इस प्रकार के चित्र बड़े महत्व के होते हैं। यह ऐतिहासिक चित्र कहलाते हैं। इन्हीं के द्वारा तत्कालीन राष्ट्रीय जीवन की झलक मिलती है। पृष्ठभूमि के विभिन्न तत्वों में जहां चित्रकार रीतिरिवाज, व्यवहारिक जीवन को व्यक्त करता है चित्र की विशेषता को ही नहीं बढ़ाता बल्कि समाज के धार्मिक, आध्यात्मिक और चारित्रिक-जीवन को व्यक्त करता है। भिन्न २ शताब्दियों में प्रत्येक राष्ट्र अथवा समाज की एक भिन्न प्रवृति और विशेष लक्षण होता है चित्रकार उसी युग की समस्त बातों को जैसे—वेष भूषा, गहने, वस्त्र, सभ्यता यहां तक सूक्ष्म विवेचन के लिए अङ्ग प्रत्यङ्ग का वर्णन करता है अजन्ता की गुफाओं की वेष भूषा, बाल आदि को देखने से उस युग का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। नाटककार नाटक की वेष भूषा में उस युग का पूर्ण प्रतिपादन करता है इसी प्रकार चित्रकार उस युग का महान दार्शनिक, सन्त, नाटककार, इतिहासकार और सार्वभौमिक अध्यापक होता है जो तत्कालीन समाज का व्यक्तिकरण बड़ी सफलता से करता है।

पृष्ठभूमि सदैव चित्र की सुन्दरता में वृद्धि करती है। सदैव चित्रकार चित्र को सुन्दर बनाने के लिए पृष्ठभूमि के विरोधी अथवा एक रूप रंगों से चित्रित करता है, परन्तु यह सदैव चित्र-सौन्दर्य की वृद्धि करती है। सहायक आकृतियां जिस प्रकार मुख्य आकृति को सुन्दरता प्रदान करने में सहायक

होती है उसी प्रकार पृष्ठभूमि अथवा अग्रभूमि भी रहती है। पृष्ठभूमि अथवा सहायक आकृतियों को चित्र के भाव सामंजस्य करती हुई जब चित्रकार व्यक्त करता है तो चित्र में दर्शक को भाव समझने में कठिनता नहीं रहती। मुख्य आकृति का स्थान भी विशेष प्रकार से सुरक्षित रहता है।

मुख्य आकृति तथा सहयोगी आकृति आदि के मध्य में रंग, आकार और कल्पना के द्वारा मूर्छना चित्र में सामंजस्य व्यक्त करती है। असामंजस्य पर प्रायः लोग बड़बड़ाते हैं। उनको कोई बात अखरती है परन्तु वे उसे व्यक्त नहीं कर पाते। चित्र के पढ़ने की मुख्य विधि यह है कि जैसे ही कोई व्यक्ति किसी चित्र को देखता है उसका मन किसी एक वस्तु विशेष की ओर आकर्षित होता है वहीं से वह समस्त चित्र में भ्रमण करता है और उसका मूल्यांकन करता है। सब भिन्नता, अनुपात और रंगों का विभिन्न सम्बन्ध बदल जायगा यदि उसको आनुपातिक फासले से देखा जायगा। उस समय उसके रेटीना पर समय के अनुसार प्रभाव पड़ेगा। चित्र कोई पहेली नहीं है परन्तु कभी २ चित्रकार के मन का भाव साधारणतया जाना नहीं जा पाता। यहां दर्शक की गति का प्रश्न है। पण्डित वही है जो सब में अपना ही स्वरूप देखे। यहाँ चित्रकार सब भावनाओं को अपनी भावना समझकर उनको व्यक्त करता है। नारी चित्रकार अपने चित्रों में कोमलता, दया, नम्रता अवश्य व्यक्त करेगी। क्योंकि यह उसका स्वाभाविक गुण है। पुरुष चित्रकार इसके विपरीत भाव व्यक्त करते हैं। भयानक, वीरत्व पूर्ण और शक्तिशाली आकृतियां पुरुष चित्रकार चित्रित करते हैं। कभी २ तो पुरुष चित्रकार का हृदय कोमल है तो उसके चित्र में नारीत्व भावनायें स्वाभाविक रूप से व्यक्त होंगी। मुगल काल में कुछ शहज़ादे चित्रकार भी थे उनके चित्रों में न झुकने के भाव व्यक्त होते हैं।

नारी चित्रकार अधिकतर गहरे रंगों को अधिक पसन्द करती हैं। वे मुद्राओं पर अधिक बल नहीं देतीं। रंग प्रियता के समक्ष मुद्रायें उनके लिए

विशेष महत्व नहीं रखतीं। सांवरे रंग की स्त्रिया भी गहरे रंग के वस्त्र अधिक चाहती हैं। उनके मस्तक का बिन्दा यदि हलके रंग का हो तो अधिक सुन्दर प्रतीत होगा परन्तु गहरे रंग की प्रियता उनका स्वाभाविक गुण है। अतः वह सुन्दरता भयंकरता में परिवर्तित हो जाती है। कुछ पुरुष चित्रकार भी गहरे रंगों को अधिक पसन्द करते हैं।

प्रवृति (Tone)

मानसिक शक्ति, बलवती धारणा और विचारों की महानता किसी चित्र की प्रवृति कहलाती है। प्रायः चित्रों में सूक्ष्म से सूक्ष्म चित्रण रेखाओं की सजगता और रंगों का आनुपातिक प्रयोग होता है परन्तु उसमें कभी २ प्रवृति इतनी निम्न श्रेणी की होती है कि चित्र में अस्वस्थता, धुंधलापन और हास्यास्पद पतन का अनुभव होता है। कभी २ इस दोष के कारण चित्र उत्तम नहीं कहा जाता। कोई बात खटकती है कहां खठकती है, यह समझ में नहीं आता यह कहकर बात समाप्त कर देते हैं। यह चित्र का कोमलतम अङ्ग है जो चित्रकार की शक्ति, विशाल अथवा उदार विचार, विवरण तथा स्पष्ट ज्ञान का सूचक हैं और जिसका अभाव किरमिच पर तूलिका से चित्रण करते समय छूट गया है। यहाँ चित्र की परीक्षा न होकर चित्रकार की परीक्षा रह जाती है। रंग, परिमाण, अनुपात और वस्तु जिस पर चित्र का निर्माण होना है चित्र रचना के लिए कच्चे माल का कार्य करते हैं। इस समस्त सामग्री के मेल से एक उच्च भावना को चित्रकार जन्म देता है। प्रत्येक चित्र में एक व्यंजनात्मक भावना होती है जो चित्र की मुख्य वस्तु कहलाती है। चित्र में रेखा, झुर्री, फुर्ती आदि को पूर्ण व्यक्त किया गया हो परन्तु मुख्य संकेत का अभाव, पूर्ण चित्र को अपूर्ण कर देगा। यदि चित्रकार रंग, परिमाण और अनुपात आदि के द्वारा वाह्य रूप को व्यक्त करके तूलिका को विश्राम दे देता है तो यह कला की पीठ में मृत मूक जमा देता है। व्यंजना के द्वारा ही वह कला कृति को पूर्ण कर सकता है। कवि किसी उच्च भावना से प्रभावित होकर किसी कविता की रचना करता

है। इसी प्रकार कोई मूर्तिकार अथवा चित्रकार किसी मूर्ति अथवा चित्र की रचना करता है परन्तु वह जो भाव सोच रहा है उसे व्यक्त नहीं कर पाया तो यह उसकी अपरिपक्वता है। उसमें साधना का अभाव है। उसका भावना के प्रति एक रूप हो जाना ही मुख्य है।

साधारणतया जब कोई चित्रकार प्रकृति चित्रण में वस्तु को वैसा ही चित्रित करता है या उसकी प्रतिलिपि करता हैं तो वह वाह्य रूप को चित्रित करता है। अतः वहां सजीवता का अभाव रहता है इस प्रकार की कृति फोटो कहलावेगी वह भी साधारण प्रकार का। इस कृति में जीवन का अभाव होगा। जब हम किसी चित्र की प्रवृति का अनुभव करेंगे तो उसमें हमें उसके राष्ट्र, युग, स्वभाव का ज्ञान होगा। योरुप के पुनुरुत्थान काल के चित्रकार ईश्वरत्व का प्रदर्शन आवेश में किया करते थे। उनको शारीरिक कष्ट और दुख का अनुभव होता था अतः ईश्वर शरण ही उनकी सांत्वना का साधन था। इस युग की प्रवृति ईश्वर की एक झलक और आत्म-समर्पण था। ईश्वरेच्छाधीनता को तत्कालीन चित्र कार विशेष महत्व देते थे।

इस युग के पश्चात् आगे के युग में शारीरिक प्रदर्शन, माँस पेशियों का सुन्दर गठित दिखाना, चित्र में गहराई का अभाव, सूअर आदि का शिकार तथा इसी प्रकार के दृश्य चित्रण चित्रित किये जाते थे। वर्तमान युग में प्रवृति का स्तर निम्न है। गुप्त प्रणय, शारीरिक भोग विलास, हलकापन, साँसारिक आनन्द की लालसा आदि वर्तमान युग की प्रवृति समझी जाती हैं। अतः उच्च भावनाओं का अभाव है, मानव जीवन का निम्न पक्ष—भ्रष्टता और शारीरिक सुख में रंग रेलियाँ की ही पराकाष्ठा है।

भारतीय चित्रकला में जहां ज्ञान की झलक मनुष्य को मिलती हैबौद्ध-युग कहा जाता है। सदा से भारतीय चित्रकला ही नहीं अपितु कला ही धर्म विशेष रही है। यहाँ की प्रत्येक बात में धर्म की प्रधानता है तभी यहाँ का

जीवन आदर्श धार्मिक रूप से माना जाता है। यहां का धर्म आत्मा से विश्व में ग्रहण किया गया परन्तु कुछ ने धर्म को स्वार्थ वश भले ही ग्रहण किया हो अन्यथा नहीं। बौद्ध काल में बौद्ध भिक्षु रेखाओं के द्वारा भगवान बुद्ध के समस्त जीवन को संसार को बतलाया करते थे। संसार ने उसे स्वीकार भी किया। पूर्वी देशों में भारत की धाक रही उस समय कला ही भाषा थी। परन्तु धर्मनिरपेक्ष की भावना आने पर जीवन का पक्ष ही बदल गया और चित्रकार की तूलिका भी नवीन मार्ग की खोज में संलग्न हो गई। जिस स्वर को बौद्ध कलाकारों की तूलिका ने सुदूर पूर्व तक पहुंचाया। वह बाद में वदल गई और उसका उद्देश्य भी बदल गया।

भारतीय कला काल्पनिक है अतः चित्रकार उच्चतम विचारों को व्यक्त करने के प्रयत्न में संलग्न रहा। अधिकतर चित्रकारों ने चित्र में व्यक्तित्व को व्यक्त करने का पूर्ण प्रयत्न किया परन्तु इतने पर भी कला में व्यक्तित्व न रह सका और सार्वभौमिकता ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया। भारतीय चित्रकार चित्र में ईश्वरत्व की भावना अथवा प्राण भिन्न प्रकार से संचरित करते हैं। उनका विश्वास है कि प्राणों का संचार अपने आपको संचरित करना है। युगयुगान्तरों से निर्मित मूर्ति आज भी भारतीय कला के गौरव का बिगुल बजा रही है। भारतीय चित्रकार माँस,हड्डी, चमड़ा आदि चित्रित करके ही चित्र को पूर्ण नहीं कर लेता बल्कि वह मस्तिष्क के प्रभाव को इनके द्वारा व्यक्त करना चाहता है इसमें वह पराकाष्ठा कर देता है। ग्रीक अथवा आधुनिक स्कूल के चित्रकार इससे भिन्न २ विचार प्रतिपादित करते हैं।

एक सन्त दूसरे सन्त का निर्माण करता है। इसके विपरीत कार्य नहीं हो सकता। जब चित्रकार किसी भावना से प्रभावित होकर किसी चित्र में उस भावना को व्यक्त करता है तो उसके शरीर के अङ्ग प्रत्यंग में उस भावना का प्रभाव फैल जाता है। जब तक उसके समस्त शरीर में बड़े वेग

से वह भावना नहीं जगती है वह तूलिका का कितना ही प्रयोग करे रचना सफल नहीं होगी। सुन्दरता के सम्बन्ध में चित्रकार और दार्शनिक भिन्न मत होते हैं कुछ का मत है कि सुन्दरता तड़क भड़क के द्वारा आती है। परन्तु वह उच्च जीवन की द्योतक नहीं है। यह सदैव ध्यान रखना चाहिये कि चटकीले रंग ही सुंदरता के द्योतक नहीं हैं। रंग ही सुंदरता का तत्व नहीं है। कुछ का मत है कि सुडौलपन, उचित अनुपात आदि सुंदरता की माप है। परंतु सुडौल मृत शरीर में अनुपात आदि के होने पर भी सुंदरता का अभाव है। इस प्रकार के शरीर से घृणा और दुख प्रगट होता है। कुछ का मत है कि भिन्न २ प्रकार के अंग में सामंजस्य सुंदरता का द्योतक है। है। संगीतज्ञ स्वर समता पर बड़ा बल देते हैं। भारतीय परम्परागत प्राचीन संगीत को वे बड़े परिश्रम से प्रदर्शन करते हैं परंतु वे श्रोता को प्रभावित नहीं कर पाते कारण श्रोता की गम्य नहीं है और वह कृति श्रोता की स्नायु-मण्डल को प्रभावित नहीं कर पाती। कुछ का मत है कि किसी वस्तु से अधिक संसर्गित रहने से भी वस्तु की सुंदरता का आभास होता है परंतु यह सुंदरता का उचित माप नहीं है। सुंदरता की भावना का मन में स्वतः ही जन्म होता है। कहते हैं लैला काली थी परंतु मजनू को बड़ी प्रिय मालूम पड़ती थी यह है भावनात्मक सुन्दरता। कुछ पाश्चात्य विचार वेत्ताओं का मत है कि सौंदर्य के माप के लिए भिन्न भिन्न चित्रकारों के भिन्न २ जीवन के अनुभव और इन सब के समन्वय को समझना चाहिये श्री महेन्द्रनाथ दत्त इस विचार के पूर्ण समर्थक हैं। परंतु यह सर्व मान्य नहीं है। उच्च विचार वेत्ताओं का मत है कि सुन्दरता सिर्फ अनुभव की वस्तु है ईश्वर प्रदत्त एक रत्न है जिसको देखकर आनन्दित होने में ही सार है। उसे देखकर भगवान की महिमा का वर्णन करना श्रेयस्कर होगा। भारतीय विचारधारा यह है कि जितने

प्रकार सुन्दरता के माप के सम्बन्ध में बतलाये हैं वे अपने क्षेत्र में ठीक हैं परन्तु यह सब मिम्न श्रेणी के कहे जाते हैं। ईश्वर का प्रत्यक्ष स्वरूप जहाँ २ दृष्टिगोचर होता है वहीं सौंदर्य है और उसी का चिन्तन दार्शनिक का ध्येय है। कलाकार का ध्येय उसी का चित्रण है। जो भावना मनुष्य को उच्चातम लोक में पहुँचा देती है जहाँ मनुष्य परमानन्द में लिप्त हो जाता है वही सुन्दरता की सीमा है।

भगवान कृष्ण और भगवती राधा को आधार मानकर रीतिकाल तथा राजपूत काल के चित्रकारों ने भिन्न २ प्रकार के चित्रों की रचना की है। परन्तु उन सबमें भावनाओं की चरम सीमा है। आत्मा का परमात्मा से मेल है। चित्रकार अपने चित्र द्वारा उस पवित्र और उच्च भावना का सृजन करता है जिसका दर्शक को इसके पूर्व अनुभव न था। यही चित्र की सुन्दरता है।

अध्याय पन्द्रह

प्रकृति और कला में सुन्दरता

संसार में सुन्दरता कला और प्रकृति के ही अन्तर्गत है। प्रकृति ईश्वर की महान कला कृति है और मनुष्य के सर्वोच्च स्वभाव का चित्रण ही कला है। प्रत्येक की एक विशेष महत्ता है। प्रकृति में तत्व और आकार इतने अद्भुत हैं कि मानव की कला का कोई स्थान नहीं रहता। यही सर्वज्ञ और अल्पज्ञ का अन्तर है। प्रकृति द्वारा निर्मित जो वस्तु हमें दृष्टिगोचर होती है वही वस्तु यदि कला कृति के रूप में देखते हैं तो अपार अन्तर मालूम पड़ता है। जिस प्रकार हम प्रकृति के रहस्य को उद्घाटित नहीं कर पाते उसी प्रकार कला कृति के रहस्य को भी बहुत स्थानों पर नहीं अनुभव कर पाते। प्रसाद जी की "कामायनी" की पंक्ति इस भेद को प्रत्यक्ष करती है—

वह विराट था हेम घोलता,
नया रंग भरने को आज।
कौन ? हुआ यह प्रश्न अचानक,
और कुतूहल का था राज॥

सर्व शक्तिमान की अलौकिक कृति को देखकर कलाकार भूरि २ आनंदित होने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर पाता।

प्रकृति में क्षण २ में परिवर्तन होता है। चित्रकार किसी एक क्षण को ही व्यक्त कर सकता है। जिस समय वह चित्रित कर रहा होता है प्रकृति में परिवर्तन होता रहता है वह उस परिवर्तन के साथ नहीं चल सकता। रेमब्रेन्ट, रैफल और टाइटन की महान कृति किसी एक क्षण को ही व्यक्त कर पाई हैं। प्रातःकाल की लालिमा, मध्यान्ह की सुन्दरता, सायंकाल का प्रकाश, तारागण से भरपूर रात्रि की शान्ति आदि प्रत्येक क्षण अपार सौंदर्य के प्रदर्शक हैं। मानव भावनाओं की प्रकृति के प्रत्येक क्षण आश्चर्य चकित करके आनन्द विभोर कर देते हैं। ग्रीस देश की मूर्तिकला बड़ी विख्यात है परन्तु ईश्वर की कृति उससे कहीं ऊपर है। विलियम वर्डसवर्थ प्रकृति का बड़ा कवि माना जाता है। उसके समान भाव एक हिन्दी कवि के वास्तविकता को व्यक्त करते हैं।

मैं ढूँढता तुझे था जब कुँज और वन में।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में॥

वर्डसवर्थ ने भी यही भाव व्यक्त किये हैं।

Love had he found in huts where poor men lie;
His daily teachers had been woods and rills,
The silence that is in the starry Sky,
The sleep that is among the lovely hills.

प्रकृति के अवलोकन में हम इतने विभोर हो जाते हैं कि जीवन की समस्याओं को बिलकुल भूल जाते हैं। इससे हमारे सम्बन्ध विश्व के प्रति

बड़े उदार और महान हो जाते हैं। प्रकृति ने हमको सब प्रकार का आनन्द प्रदान किया है। हम उसको क्यों नहीं भोग पाते यह हमारा दुर्भाग्य है। आवश्यकता इस बात की है कि हम उस प्रकृति के सौन्दर्य का अवलोकन करें। गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

"सकल पदारथ हैं जग माहीं। कर्महीन नर पावत नाहीं ॥"

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम प्रत्येक प्राकृतिक दृश्य को देखकर प्रकृति के वास्तविक रहस्य को जानने में प्रयत्नशील न हों। वर्डसवर्थ का कथन है—

One impulse of vernal wood,
Would teach **us** what the sages can.

समस्त दर्शन प्रकृति में है। जहाँ वस्तु की उपयोगिता में अधिक विश्वास रखते हैं सौंदर्यात्मकता का अभाव रहता है। प्रकृति अपार और अथाह है उसके अवलोकन में सिवाय आनन्द के हमको और कुछ नहीं प्राप्त होता। काली रात्रि में किसी पुल पर कुछ दूर बैठकर उसके ऊपर से गुजरने वाली रेलगाड़ी के दृश्य के अवलोकन से जो आनन्द प्राप्त होगा वह अपार हर्ष का कारण होगा जबकि आनुपातिक महत्व को दर्शक भूल जाता है।।

कभी कलाकार के साथ यात्रा का अवसर मिले तो अनुभव होगा कि बहुत से प्रकृति के रहस्य जो साधारण प्राणी नहीं जान सकता प्रत्यक्ष होते हैं। ग्रिग महोदय का मत है—किसी प्राकृतिक दृश्य को नीचे स्थान से खड़े होकर ऊपर की ओर देखें तो उस दृश्य को समझने में सहायता का आवश्यकता होगी परन्तु यदि किसी पहाड़ी पर से नीचे का दृश्य देखें अथवा समुद्र के किनारे से समुद्र का दृश्य देखें तो प्रकृति के रहस्य का स्पष्ट निरूपण हो जावेगा। रेखा के ऊपर से नीचे तक खींचने में भी यही बात होती हैं। प्रायः लम्बवत् रेखायें ऊपर से नीचे की ओर खींची जाती हैं। इसके विपरीत खींचने में कठिनता रहती है। शायद इसी

आधार पर ग्रिग महोदय दृश्य निरीक्षण की बात का समर्थन करते हों।

सौन्दर्य अनुभूति के लिए कोई निश्चित माप नहीं है। न हो सकता है। वस्तु सान्दर्य निरोक्षण में वातावरण का गहन प्रभाव पड़ता है। ग्रामीण जीवन में पास के दृश्य ही आनन्द दायक होते हैं। ग्रामीण पोशाक, मुस्कराहट और छवि ही दर्शक को विभोर कर देती है। प्रकृति के साधारण रंगों से पाठ लेकर ग्रामीण महिला और पुरुष अपनी सुन्दरता में चार चाँद लगाते हैं यही कारण है कि हरे और लाल, पीले और नीले रंगों का देहात में अधिक प्रयोग होता है। कोई देहाती व्यक्ति नगर में पहली बार आता है तो वह वहां के सौन्दर्य से अधिक प्रभावित होता है। यहाँ उसको कृत्रिम सौन्दर्य की अधिक झलक मिलती है। यहाँ लोग प्रकृति के अधिक उपासक न होकर भौतिकता में अधिक लीन रहते हैं। पनघट पर पानी खींचते अथवा वर्तनों को लेकर जाती हुई गजगामिनी की सुन्दरता देहाती को जितना अधिक प्रभावित करती है नागरिक को नहीं। नागरिक प्रकृति के सौन्दर्य का कम आनन्द अनुभव करता है। वह सासारिकता मे अधिक लिप्त है।

वस्तु के निरीक्षण में आनन्द का अनुभव कर लेना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उस आनन्द को जब तक मनुष्य व्यक्त नहीं करता वह पूर्ण नहीं है। जब कोई कहता है कि वह अमुक वस्तु के सम्बन्ध में सब कुछ जानता है परंतु वह उसे कह नहीं सकता तो वास्तविक बात यह है कि उसको स्पष्ट ज्ञान नहीं है। बौद्धिक अथवा कलात्मक रूप से जब तक हम किसी विचार अथवा भाव को व्यक्त नहीं करते वह पूर्ण नहीं है। उसको किसी भी प्रकार अथवा माध्यम से व्यक्त कीजिये। यही कारण है कि आध्यात्मिक विचारधारा विचार-विनमय से वृद्धि पाती है।

साहित्यकार, कलाकार देश की महान निधि हैं उनके विचार तत्कालीन देश काल की प्रवृति के प्रतिनिधित्व करते हैं। अतः उन प्रवृतियों का किसी

भी माध्यम के द्वारा व्यक्त होना परमावश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति में कलात्मक गुण होते हैं किसी में थोड़े किसी में अधिक। उन गुणों की अभिव्यंजना ही सौन्दर्य अनुभव की विशेषता है। यही सहकारिता और स्कूल शिक्षा में कला के अध्ययन का उपयोग है।

यह आवश्यक नहीं कि सब कलाकार बनें न इस बात की किसी देश को आवश्यकता है परन्तु यह अत्यावश्यक है कि देश का प्रत्येक पुरुष और स्त्री को आकृति, रंग के सूक्ष्म निरीक्षण का ज्ञान हो। उसको वस्तु की सुन्दर और असुन्दरता का अनुभव हो। हमें सौन्दर्यात्मक अनुभूति हो जिससे हम सफलता की दौड़ में किसी से पीछे न रहें। हम परम्परागत रूढ़ियों से परिचित हों उनका मूल्यांकन करे यह सामाजिक सुन्दरता है जो जीवन को प्रगति प्रदान करती है।

कला की एक सर्व सम्बन्धी विशेषता है। यदि कलाकार वस्तु आकृति तथा प्राकृतिक आकृतियों को नहीं समझ पाता तो उसकी कला अधूरी है। कला गतिहीन मालूम पड़ती है। कला में गति होती है और कलाकार ही उस गति को संचारित करने वाला होता है। कलाकार की एक कला कृति होती है जो यद्यपि प्रकृति से उत्साहित की गई है परन्तु वह कृति उस रूप की स्थायी सम्पत्ति है। अतः इस दृष्टिकोण से वह कृति प्रकृति से परे समझनी चाहिये।

ललित कला की अपेक्षा साहित्य और ललित कला के अन्तर्गत काव्य सुगम है। संगीत, मूर्ति और चित्रकला की सीमायें हैं उन सीमाओं के अंतर्गत ही उनको अनुभव किया जा सकता है परन्तु साहित्य में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कृति सरलता से प्राप्त हो सकती है। सदैव प्रयोग होने वाली बहुत सी पुस्तकें प्रायः सभी सभ्य गृहस्थों के घर में प्राप्त होती हैं परन्तु कला कृतियां नहीं। हम प्रकृति के सौन्दर्य तथा साहित्यक आनन्द में विभोर होकर कला कृति का अनुभव नहीं करते। कला के मूल्यांकन के साधनों का बड़ा अभाव है। जन साधारण क्या धनी मानी लोग भी विरले ही मौलिक कला कृतियों क

संग्रह करते हैं अन्यथा पत्रिकाओं की तस्वीरें काटकर ही गृह सुसज्जित करते हैं। भारत में तो सार्वजनिक स्थानों पर भी कला कृतियाँ मौलिक रूप में नहीं पाई जाती। हस्पताल, पुस्तकालय, कचहरी आदि स्थान यदि कला कृतियों से सजाये जायें तो अवश्य ही हृत्तन्त्री में सौन्दर्य की अनुभूति होगी। नगरों में कला कृति संग्रहालयों का अभाव है। भारतीय संगीत और मूर्ति धर्म प्रधान अधिक है, यद्यपि उच्च भावना की द्योतक है परन्तु आस्था के अभाव में मूल्यांकन भी उचित रूप से नहीं हो पाता। सांस्कृतिक विचारों के आदान प्रदान में यात्रियों का आना जाना स्वाभाविक है। यात्रियों का कला संग्रहालयों में साधारण तया एक स्थान से दूसरे स्थान तक चले जाने मात्र से साँस्कृतिक उत्थान नहीं होता। वर्तमान में साहित्य का गहन अध्ययन न होकर चलते फिरते पठन पाठन से साहित्य और कला के सच्चे सौन्दर्य का अनुमान नहीं कर पाते। सुन्दरता के अनुभव करने के लिए प्राकृतिक के अतिरिक्त सामाजिक, सांस्कृतिक केन्द्रों का अभाव भी है। कला कृति के मूल्यांकन करने के लिए कला और राष्ट्रीय भावनाओं का जानना भी आवश्यक होगा। भिन्न २ शैली को तभी समझा जा सकता है जब उस शैली के सम्बंध में साहित्यक ज्ञान हो।

संगीत से प्रेम स्वाभाविक है। प्रत्येक प्राणी रोना और गाना जानता है। संगीत अप्रत्यक्ष है। सुन्दर आनन्द अनुभव किया जाता है। जिसको संगीत से प्रेम नहीं होता वह इसके आनन्द का अनुभव नहीं कर सकता। काव्य को श्रवण करके हृदयङ्गम करने से भावनाओं का जागरण होता है। सिनेमा के बहुत से गाने इस कारण ही एक वार में याद हो जाते हैं क्यों कि उनका मन पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

अंग्रेजी कवि पालग्रेव की "गोलडिन ट्रेजरी" को अथवा हिन्दी की कविता "कौमुदी" का अध्ययन किया जाय, कविता के विषय, शैली अलंकार आदि को अनुभव करें उनका भावनाओं से सम्बन्ध स्थापित करें, तत्कालीन प्रभाव और कलाकार की भावनाओं को समझे, विचारें तो

संसार की वह सम्पति हमको हस्तगत होगी जिसको हम अनुमान भी नहीं कर सकते। नवीन सौन्दर्य मिलेगा, नवीन अर्थ का ज्ञान होगा।

प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर ईश्वर की व्यापकता का जो अनुभव होता है वह पुस्तकों से परे है। प्राकृतिक सौन्दर्य से सद्भावनाओं का संचार होना स्वाभाविक है। कुछ कवि चन्द्रिका पूर्ण रात्रि देखकर प्रेम विभोर हो गये हैं परन्तु यह युग का उन पर प्रभाव रहा है। वास्तव में सुन्दरता का अध्ययन भिन्न २ साधनों से होता है परन्तु होता है विचारधारा के अनुसार। कला कृति का सौन्दर्य कलाकार की शैली, विषय आदि के अध्ययन से अधिक ठीक हो सकता है।

अध्याय सोलह

सुन्दरता और जीवन का मूल्यांकन

जीवन की सार्थकता वस्तु अथवा प्राणी के दोष निरूपण में नहीं अपितु उसकी विशेषता जानने में है। भारतीय साहित्य में दोष निरूपण का स्थान मूल्यांकन की अपेक्षा कम है। समालोचना में अधिक विश्वास है। आलोचना में कम। यदि गहन रूप से विचार किया जाय तो स्पष्ट है कि जीवन की सार्थकता वस्तु के मूल्यांकन में है। इसके विपरीत जीवन कितना शुष्क होगा। मनुष्य का यह स्वाभाविक गुण है कि वह वस्तु की अच्छाई बुराई को भली भाँति जान लेता है। प्रायः यह देखा गया है कि हम सिद्धान्तों से परिचित नहीं है परन्तु संगीत का आनन्द ले लेते हैं। चित्र अथवा मूर्ति की सुन्दरता का अनुभव करके उससे आनन्द लाभ कर लेते हैं। थोड़े समय के सम्पर्क से हम किसी व्यक्ति को भला समझ लेते हैं परन्तु उसके चरित्र का हमको ज्ञान नहीं होता। अधिक तर्कना वस्तु के मूल्यांकन में बाधक होती

है। जीवन में ज्ञान कम और जिज्ञासा अधिक होनी आवश्यक है। यही सुन्दरता के मूल्य के जानने के लिए पर्याप्त होगा।

मनुष्य को अपने पिछले जीवन का अनुभव तब होता है जब वह उसे भोग लेता है। हम संसार के सिद्धान्तों से बाद में उनकी तुलना करते हैं। संसार की असारता का ज्ञान संसार को भोगने के पश्चात् ही होता है ग्रीस की नैतिक अवस्था का ज्ञान अरस्तू को हुआ जब ग्रीक साहित्य का उत्थान हो गया और पतन की ओर जाने लगा। कहते हैं राजा भोज के समय में सब संस्कृत बोलते थे। एक समय देश की भाषा संस्कृत थी परन्तु संस्कृत के मूल्य को आज जितना हम करते हैं कालिदास के समय में नहीं। सबसे बड़ी वस्तु विश्वास है। "विश्वासः फलदायकः" विश्वास ही फल देता है। मनुष्य जीवन में विश्वास को अधिक महत्व देने पर ही अधिक सफल होता है। प्रायः मनुष्य किसी एक सिद्धान्त अथवा विचार से प्रभावित हो जाता है उसी को अपना आधार मान लेता है परन्तु अन्य विचारों को भी स्थान देता है।

कोई व्यक्ति आधुनिक काव्य से अधिक प्रभावित है वह प्राचीन काव्य को अधिक मूल्य न देगा। इसके विपरीत प्राचीन काव्य का प्रेमी आधुनिक कवियों को कवि की श्रेणी में ही स्थान न देगा। जहाँ कोई प्रकृतिवाद पर बल देता है वास्तविकता का पुजारी होगा परन्तु कल्पना को भी उचित स्थान देगा। अंग्रजी कवि वर्ड्सवर्थ डैफोडिल के फूलों से कितना प्रभावित हुआ कि ध्यानावस्थित दशा में उस आनन्द की तुलना महान सन्तों के उस ध्यान से कर बैठा जो साधारण बात नहीं है। यह कवि का प्रकृति प्रेम है। यदि कोई वैज्ञानिक उसी डैफोडिल के फूल समूह को देखे तो वह उसके विश्लेषण में डूब जाता है। उसके भौतिक ढाँचे और इतिहास की खोज करता है। एक पुजारी अथवा भगवत् भक्त उन्हीं पुष्प समूह को भगवान को अर्पण करके आनन्दित होगा आदि आदि। इस प्रकार आनन्द का अनुभव भिन्न

प्रकार का है। यह आवश्यक है कि जब हम किसी आदर्श को हृदङ्गम करते हैं तो हमारा उसके प्रति प्रेम स्वाभाविक है।

टामस हिल ग्रीन का कथन है कि अधिकतर लोग प्रकृतिवाद को बाध्य होकर स्वीकार करते हैं। परन्तु ब्राउनिंग और टैनीसन के काव्य में अधिक आस्था रखते हैं अतः यहां एक दूसरे में विरोधाभास है। प्रकृतिवाद और भौतिकवाद का स्पष्ट विरोध है। परन्तु वास्तव में वह अधिक सफल होगा जो सब सिद्धान्तों का मेल अनुभव करके काव्य का आनन्द लेगा। गोस्वामी तुलसीदास जी के महानतम काव्य 'रामचरितमानस' में यह भावना अधिक प्रतिपादित हुई है। शैव, वैष्णव और शाक्त भक्त और वेदान्ती सब एक ही घाट पर विचरण करते हैं। चित्रकला में ऐलीफेन्टा की गुफाओ को विषय की दृष्टि से देखने पर इस भाव की कुछ पुष्टि होती है।

ज्ञान और पाण्डित्य के दो भिन्न २ क्षेत्र हैं। यद्यपि एक दूसरे का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। सत्य का अनुभव बुद्धिमानी से अधिक किया जा सकता है परन्तु उस बुद्धिमानी में सत्यता होनी चाहिये। ज्ञान का आधार तथ्य है बुद्धिमानी का सत्य। तथ्य में से सत्य के पुष्प खिलते हैं। सत्य की आत्मा तथ्य है परन्तु इन सब बातों के लिए ज्ञान पूर्ण जीवन का दृष्टिकोण, उसका ठीक प्रतिपादन और एक दूसरे से सम्बन्ध आवश्यक है। प्रायः देखा गया है कि लोग बहुत जानते हैं परन्तु बुद्धिमान नहीं होते। इसके विपरीत लोग बड़े बुद्धिमान होते हैं परन्तु साधारण ज्ञान से शून्य होते हैं। बालक अबोध होता है परंतु अवस्था के अनुसार उसका ज्ञान ठीक होता है। महापुरुष ईसा का कथन है कि 'हे प्रभो मैं तेरा बड़ा आभारी हूँ कि तूने बुद्धिमान लोगों से उन वस्तुओं को छिपा लिया है जो बच्चों के लिए सुलभ हैं।' सत्य को जानने के लिए मनुष्य को सत्य का अक्षरशः पालन करना चाहिये। शिक्षित और अशिक्षित सभी में सत्य को पालन करने वाले मनुष्य मिलते हैं। कला सत्य का प्रतीक है यथार्थ की रूपरेखा में इसका पालन होता है। यही इसका दर्शन है।

सांसारिकता में असत्याभास की झलक ज्ञान प्राप्त करने पर ही होती है। तुलसीदास जी के शब्दों में संसार में जो आया है वह अवश्य जायगा यही अस्थायी दशा है।

धरा को प्रमाण यही तुलसी,
जो फरा सो झरा, जो वरा सों वुताना।

इतना ही नहीं

चेतु रे चेतु अजों चित अन्तर,
अंतक लोक अकेले ही जै है।

यह भाव इस बात के प्रमाण है कि सत्य के अनुसरण से ही जीवन का लाभ है। यही जीवन का सौंदर्य है इसी का सच्चा मूल्यांकन जीवन को सार्थक बना सकता है। कलाकार इसी सार्थकता को अपने अनुभव से जानने का प्रयत्न करता है। वह जीवन की रंगीनता को आकृति में व्यक्त करता है। वह सच्चाई के चाप को व्यक्त अवश्य करता है परन्तु व्यक्त करते समय लापरवाह होता है। जीवन के मूल्यांकन में प्रेम, ज्ञान, विश्वास, और सुंदरता का प्रमुख स्थान है। संसार की परम्परा रही है कि कलाकार बड़ा दार्शनिक भी होता था। ग्रिग महोदय का यह कहना बिल्कुल सत्य है कि प्लेटो, स्पिनोज़ा आदि बड़े २ दार्शनिक थे साथ ही साथ कलाकार भी थे। बौद्धकला के युग में भिक्षु कलाकार तथा दार्शनिक होते थे और जीवन की समस्या का तूलिका द्वारा भगवान बुद्ध के उपदेशों के सहारे बड़ा सुंदर समाधान करते थे। प्लेटो और स्पिनोज़ा ने जहाँ आध्यात्मिक विद्या की गहराई को स्पष्ट किया है वहीं जीवन की बुद्धिमानी पर भी उतना ही बल दिया है। सब दर्शनों का यही मत है कि जीवन ही मूल है। बिना जीवन के किसी दर्शन का सार क्या? कला के प्रत्येक सच्चे कार्य में ऐसा अंश अवश्य है जो अनन्त शेष के रूप में जीवन को गौरव प्रदान करता है। वह छोटे बड़े सबके लिए समान है और सबको व्यक्तित्व प्रदान करता है। वही सुंदरता का रूप है।

सौंदर्य की व्याख्या प्लेटो से आज तक बड़े २ दार्शनिकों ने की है परन्तु उसकी परिभाषा अभी अपूर्ण है। अधिकतर दार्शनिक यह प्रयत्न करते रहे कि सौंदर्य के पक्ष और सम्बंध की व्याख्या करें। सौंदर्य के मूल्यांकन में आचारिक तत्व विद्यमान रहते हैं। जिन आचार विचारों से हम पूर्व से ही प्रभावित हैं उनके तत्व हमारे समक्ष आते हैं तो हम उनको शीघ्रता से स्वीकार कर लेते हैं। भिन्न २ जातियों ने आकृतियों को भिन्न २ प्रकार से सुंदर स्वीकार किया है। अफ्रीका की सुंदरता इंगलैण्ड की सुंदरता से भिन्न है। अंतर्राष्ट्रीय सौंदर्य प्रतियोगिता में जो संसार सुंदरी स्वीकार की जाती है उसको सब स्वीकार नहीं करते। यदि वैधानिक रूप से स्वीकार भी करली जाती है तो आत्मा में सुंदरता का भिन्न माप होने के कारण मन उसे स्वीकार नहीं करता। काश्मीर की सुंदरता मद्रास की सुंदरता से तुलना करने पर सुंदर असुंदर का भेद स्पष्ट हो जावेगा। परन्तु सुंदर दोनों स्वीकार की जाती हैं। कुछ समय किसी एक वातावरण में रहने से उस वातावरण की वस्तु भी सुंदर मालूम पड़ने लगती है। योरुप निवासी जब कुछ समय अफ्रीका में रहे तो उनका सुंदरता का माप भिन्न हो गया होगा। स्टेनले महोदय के मतानुसार यह बात सत्य है। इन सबसे परे प्रकृति की सुंदरता है।

सब सुंदरता को परखने वाले समान रूप से एक-सा मूल्यांकन नहीं करते। वे जहाँ वातावरण से प्रभावित और संस्कारिक सुंदरता को अधिक महत्व देते हैं वहाँ सर्व श्रेष्ठ सुंदरता प्रकृति की स्वीकार करते हैं। यही समन्वय है जो कला और प्रकृति की सुंदरता में मेल कराता है। प्रकृति की सुंदरता पूर्णतम है और आकृतिक सुंदरता उसका अंश मात्र है। प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण निम्न पंक्तियों में है।

बीती विभावरी जाग री!
अंबर पनघट में डुबा रही
तारा घट ऊषा नागरी।
खग-कुल-कुलसा बोल रहा;

किसलय का अंचल डोल रहा
लो यह लतिका भी भरलाई
मधु-मुकुल नवल रस गागरी ॥

प्रकृति की एक वस्तु में सुंदरता नहीं है। दृश्य की सुंदरता झील, नदी, जंगल, पहाड़ और आकाश में नहीं है बल्कि इन सबसे मिलकर जो प्रकृति का एक स्वरूप बनता है उसमें है। नंदलाल बसु, असीत कुमार हल्दार के किसी चित्र का मूल्यांकन करते समय यदि हम उसकी सुंदरता को व्यक्त करें तो वह उसकी किसी एक आकृति में नहीं पाई जावेगी बल्कि पूर्ण चित्र में प्राप्त होगी। कोरट के चित्रों को देखें तो दृश्य और उस में चित्रित नृत्य की आकृति के सम्पूर्ण भाव में सुंदरता का आभास होगा।

प्राकृतिक संसार और ज्ञान शक्ति के मध्य में एक लय है। जो जितना उस लय को समझ पाता है उतना ही प्रकृति में सौंदर्य निरूपण कर सकता है। हमारी ज्ञान शक्ति संसार के साथ कदम मिला कर चलती है। समस्त कलाओं का सम्बंध प्रकृति से है। जिसका प्राकृतिक संसार से जितना अधिक सम्बंध होगा उतना वह सुंदरता का मूल्यांकन कर सकेगा। परन्तु सबसे परे ज्ञान है। ज्ञान के द्वारा मनुष्य प्रकृति के रहस्य को जान सकता है। कलाकार एक चित्र चित्रित करता है। वह किसी नवयुवती को चित्रित करता है। उसने बहुत बार उस युवती को देखा है इतना ही नहीं वह उसकी आराध्य देवी है। उसी से प्रेरणा ग्रहण करता है। परन्तु इतना होने पर वह उसको चित्रित नहीं कर पाता। यह है प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का अभाव है एक चित्र में आकृति की तेवरी चढ़ी हुई हैं। कलाकार को वह चित्र अथवा भाव प्रिय मालूम पड़ता है। अतः भावावेश में उसे चित्रित करता है परन्तु सफलता नहीं पाता। यह इसी कारण है कि उसकी ज्ञान शक्ति अभी विकसित नहीं हो पाई है। प्रायः रंग का धोखा बहुत होता है। रात्रि में निर्जन स्थान पर बैठकर प्राकृतिक सौंदर्य को अनुभव कीजिए। बड़ा प्रिय लगेगा परन्तु उसको जब निरूपण करने बैठे तो रंग का ज्ञान भी सरल कार्य नहीं। नगर से बाहर

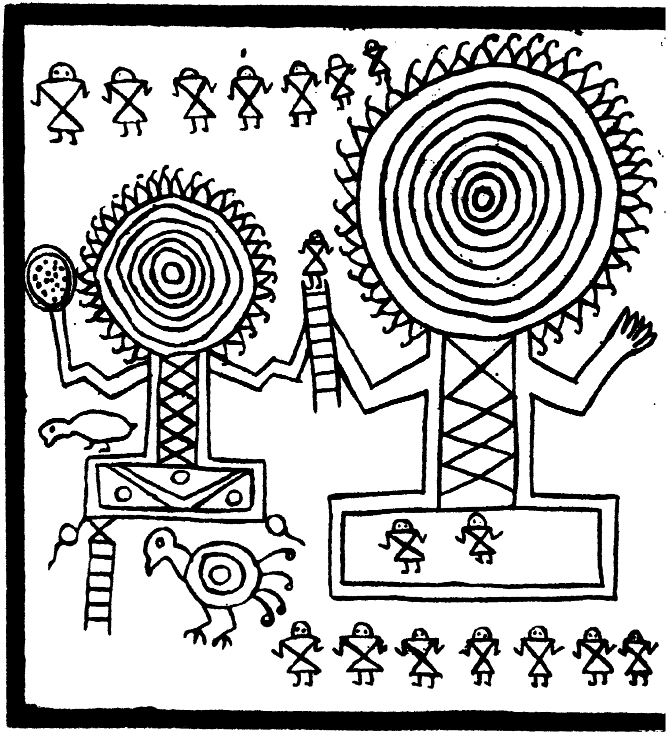
किसी एकान्त स्थान पर बैठकर रात्रि में नगर की ओर जो भिन्न २ प्रकार के बल्व जलते हैं उनके रंग का अनुभव करें तो बहुत समय के लिये वह वाद-विवाद का विषय बन जावेगा। विकास के माध्यम के द्वारा प्रकृति के रंग और आकृति का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जो मुख्य जीवन की स्थितियाँ हैं उनका जीवन से घनिष्ट सम्बंध है। प्रकृति भावात्मक है और उसके निराकार स्वरूप का ज्ञान कलाकार के सहारे आकृति और रंग के द्वारा हो सकता है।

हमारी ज्ञान-शक्ति का विकास हमारे चारों तरफ के वातावरण के अनुसार होता है। हम समस्त प्रकृति से परिचित नहीं होते। यही कारण है कि कलाकार असीम को ससीम के द्वारा व्यक्त करता है। जितने जीवन से उसका परिचय है उसी की विशालता के अंतर्गत वह अपने भाव व्यक्त करता है। अतः सौंदर्य के तत्व को भिन्न २ विचारक अपने वातावरण के अनुसार व्यक्त करते हैं यही मूल्यांकन का माप है परन्तु इससे पूर्ण मूल्यांकन नही हो पाता। सौंदर्य विशाल है और उसकी परिभाषा भी सरल नहीं है। जीवन की सुंदरता जीवन के सच्चे मूल्यांकन में है।

अध्याय सत्रह

—लोक कला की उत्पत्ति और उसके अवयव—

कला अनुभूति की अभिव्यक्ति को कहते हैं। यही कला का व्यापक अर्थ है। सृष्टि के साथ ही कला का जन्म स्वीकार किया जाता है। किसी देश के सांस्कृतिक विकास में कला का एक विशेष स्थान है। पाश्चात्य इतिहास कार एम. सी. वर्किट ने अपनी पुस्तक "मोस्ट प्रिमीटिन आर्ट" में यह स्पष्ट कहा है कि किसी देश अथवा जाति की सभ्यता के सम्बध में पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए कला की सहायता अत्यावश्यक है। डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "लोक शब्द का अर्थ जनपद अथवा ग्राम नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिनके व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियां नहीं हैं.....................। ये लोग सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं। श्री शैलेन्द्रनाथ सामन्त के अनुसार लोक कला जन सामान्य, विशेषतया ग्रामीण जन समुदाय की



करवा चौथ

सामूहिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। वारसा से प्रकाशित 'फोक आर्ट इन पोलेन्ड' में कला को अशिक्षा आधृत बताया गया है और ग्रामीण किसान वर्ग को इसके कलाकार के रूप में स्वीकार किया है। साथ ही लोक कला को वर्तमान शास्त्रीय और व्यावसायिक कला को पृष्ठभूमि के रूप में मान्यता भी दी गयी है।

प्रोफेसर हरबर्ट रीड ने "दी मीनिंग आफ आर्ट" पुस्तक में वर्णन किया है कि उनको कला का ज्ञान नीग्रो और बुशमैन जातियों के सम्बंध में विशद अध्ययन के पश्चात हुआ है। श्री जीं. ए. स्टीवेंस ने अपनी एक पुस्तक एजूकेशनल सिग्नी फिकेंसा ऑफ इंडिजिनअस अफ्रीकन आर्ट में लोक कला की शुद्धता और भावनापूर्ण विशेषता का वर्णन किया है। उनका कथन है कि लोक कला धार्मिक भावनाओं और आध्यात्मिक अनुभवों पर विशेष आधारित है। इसकी सृष्टि कलाकारों के नाम पर नहीं होती। इसमें स्वाभाविकता का गहन पुट है। इसमें चातुरी प्रदर्शन अथवा प्राविधिक प्रयोग का कोई स्थान नहीं है।

कलकत्ता विश्व विद्यालय के प्रोफेसर एस. के. सरस्वती के मतानुसार "लोक कला जन समुदाय के सामाजिक जीवन में व्यवहृत सहकारी कला है। इसकी जड़ें धरती में काफी गहराई तक गई हैं। यह लोक में प्रचलित रीति रिवाजों और विश्वासों से सम्बंधित है...........।' लोक कला की परम्परा रूढ़िगत हैं। उसकी उन स्वीकृत परम्परा के विपरीत जाना असम्भव है।

श्री स्टीवेंस का कथन लोक कला के सम्बन्ध में बड़ा ही स्पष्ट है। इनके विचार में आदि युग के मानव के साथ लोक कला का गहरा सम्बन्ध है। आदि युग का सीधा-सादा मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति, अपनी सामाजिक, धार्मिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति अपने ही हाथों करता था, और उससे कला का जो रूप मिलता था उसकी विकसित शृङ्खला के रूप में महारी वर्तमान लोक कला है। कला का जन्म स्वाभाविक है। आदि काल

का सम्बन्ध आदि काल से है। आदि काल में अपनी दिनचर्या के बाद जब मनुष्य विश्राम की खोज में निकला तो उसे विश्राम कहीं प्राप्त न हुआ अतः उसने कन्दराओं में ही आश्रय लिया। उन कन्दराओं को अपनी आवश्यकतानुसार उचित व्यवस्था दी। औजार, बर्तन, आभूषण, वस्त्र और खेल खिलौनों आदि का निर्माण किया। यही कला के विकास का आरम्भ है। यह लोक कला कब से चली आ रही है और इसका यह रूप विकसित है अथवा आरम्भ के समान ही है इसमें अभी कोई निश्चय नहीं हो पाया है। योरुप में लोक कला की खोज *एक शताब्दी पूर्व ही हुई है, ऐसा *कैरेल सूरेक का मत है। इस खोज में भी राष्ट्रीय अभिलाषा के जागरण की बात छिपी है। जनता का विशाल दृष्टिकोण सर्वतोमुखी विकास का कारण बना। नृवंश विद्या की खोज पर अधिक बल दिया गया। जन समाज में सांस्कृतिक भावना को विकसित करने पर अधिक बल दिया गया और दिया जा रहा है। हर सांस्कृतिक कार्य अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण कर रहा है और समाज का उसमें पूर्ण सहयोग है।

विश्व की लोक कला की खोज के सम्बन्ध में अभी बहुत शोध की आवश्यकता है। कैरेल सूरेक का मत है कि इसकी सर्व प्रथम खोज योरुप में हुई। बोहेमियाँ राज्य में जैकोस्लेविया के कलाकार जोसैफ़ मैनस ने इस महत्वपूर्ण खोज को आरम्भ किया। यह कहना चाहिये कि मैनस ने लोक कला को अमरत्व प्रदान किया। राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व का अनुभव हुआ। लोक कला के परिचय का कारण सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन की सफलता है। लोक गीत, लोरियां, लोक कथा ही नहीं अपितु लोक सम्बन्धी समस्त ज्ञान उसका कलात्मक बोध, सांस्कृतिक प्रयत्न सब ज्ञान वान् समाज के प्रमुख अङ्ग बन गये। यही राष्ट्र की अमूल्य निधि है और राष्ट्रीय कला यही है क्योंकि यह एक राष्ट्र की पूर्ण सांस्कृतिक ध्वनि है। संस्कृति की यह रीढ की हड्डी है।

---

*—Folk art in Pictures—Karel Sourek.

लोक कला की व्युत्पत्ति और उसके विकास का कोई शृङ्खला-बद्ध और व्यवस्थित इतिहास नहीं प्राप्त होता। तो भी इसका विकास मानव के विकास के साथ अवश्य हुआ। आधुनिक लोक कला आदि कला का ही विकसित रूप है। मेलबोर्न विश्वविद्यालय के प्रोफेसर ल्योनहर्ड एँडम के अनुसार इसका उदभव-काल २० हजार से १० हजार वर्ष ईसा पूर्व के बीच ही है। भारतीय इतिहास के विदेशी विद्वानों के अनुसार भारत की* आदि कला ईसा पूर्व ८ हजार वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं है, परन्तु भारतीय विद्वानों का मत इसके विपरीत है। वे इस बात को पक्षपात पूर्ण बतलाते हैं। भारत की आदि कला का काल १० हजार वर्ष ईसा पूर्व से अधिक ही है। श्री शैलेन्द्रनाथ सामन्त के विचार में लोक कला का जन्म और उसकी अवस्था के सम्बन्ध में कोई निश्चय नहीं है।

साधारणतया लोक कला को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) धर्मानुप्राणित।
(२) उपयोगितावादी।
(३) व्यक्तिवादी।
(४) मनोविनोदार्थ।

(१) धर्मानुप्राणित—कला में धर्म का प्रमुख पुट है। वास्तव में लोक कला में धर्म की प्रधानता है। ईश्वर और उससे सम्बंधित महान शक्ति की अर्चना, पूजा, व्रत आदि साथ २ धार्मिक विश्वास आदि पर आधारित कला धर्म प्रधान है। देवताओं की मूर्तियाँ, स्वस्तिक (卐), अल्पना आदि इसके उदाहरण है।

भारतवर्ष की लोक कला में धर्म की अत्यधिक प्रधानता है। भारत के समस्त त्यौहारों में जहां कला का किञ्चित मात्र भी स्थान है धर्म अपना

---

* नवभारत टाइम्स—२० दिसम्बर १९५९, (लोक कला और उसके अवयव) ईश्वरदेव मिश्र।

विशेष स्थान ग्रहण किये हुए है। करवा चौथ, अहोई अष्टमी, बालक के जन्म के समय सतिये, चौक पूरना, देवउठान पर गेरु खड़िया के द्वारा चित्रित फर्श पर भिन्न २ प्रकार के नमूने—सबका धर्म से विशेष सम्बंध है। कोई नारी इसके विपरीत नहीं चलती, कारण कि इसमें सर्वहित के साथ स्वहित गहन स्थान ग्रहण किये है। मैंने अपनी थीसिस में धर्मानुप्राणित को अनुष्ठानिक रूप दिया है। भाव दोनों का एक ही है।

(२) उपयोगितावादी–प्रत्येक कला में उपयोगिता होती है। परन्तु किसी में उपयोगिता की प्रधानता होती है। वहाँ सत्य और सुन्दर गौण रूप धारण करते हैं। इस कला द्वारा आवश्यकता की पूर्ति अधिक होती है। गुफायें, बर्तन, वस्त्र, हथियार, औजार आदि की गणना इस श्रेणी में की जा सकती है।

(३) व्यक्तिवादी–जो कला मनुष्य की व्यक्तिगत भावनाओं की अभिव्यक्ति करती है, जिससे निजी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है वह व्यक्तिवादी कला है। विवाह के समय दरवाजे पर शोभार्थ एक प्रकार की आलेखन-क्रिया की जाती है। चावल के बने चिरवे, बतासे, फूल आदि से जूड़ा, मुकुट आदि की रचना, भिन्न २ प्रकार के गहने और प्रायः मन्दिरों में भगवान् के फूल बंगले श्रावण के महिने में बनाये जाते हैं। उनमें हर कार्य व वस्तु फूल के द्वारा ही रची जाती है। इसको अलंकारिक भी कह सकते हैं। स्त्रियाँ भिन्न २ प्रकार के कसीदा काढ़ती हैं। लीला गुदवाती हैं। इसमें प्रेम की भावना छिपी है।

(४) मनोविनोदार्थ—इस कला के अन्तर्गत वे आकृतियां सम्मिलित हैं जो मन के विनोद के लिए चित्रित की जाती है। स्त्रियाँ मेंहदी रचाती हैं। भिन्न २ प्रकार के आलेखनों को जन्म देती हैं। हाथों पर अथवा पैरों पर मेंहदी और महावर के द्वारा आलेखन की रचना होती है। झाँझीं में भिन्न २ प्रकार के आलेखन बनाये जाते हैं। मोती, सितारे आदि के द्वारा कपड़ों पर काढ़कर आलेखन बनते हैं।

सामग्री के आधार पर लोक कला का वर्गीकरण निम्न प्रकार हो सकता है।

पोशाक—विकास से पूर्व मनुष्य कन्दराओं में रहा होगा। कन्दराओं से गुफाओं और फिर झोंपड़ी बनाकर आवास का प्रबंध किया होगा। पर्णकुटी की व्यवस्था का वर्णन रामायण में भी आता है। पर्णकुटी और झोंपड़ी के बाद कच्चे मकान और फिर पक्के मकानों की व्यवस्था रही होगी। निवास के बाद पोशाक का प्रश्न है। मनुष्य को ज्ञान होने पर तन ढकने की आवश्यकता पड़ी जिसकी व्यवस्था उसने पत्तों द्वारा की होगी। पत्तों से पशुओं की खाल के प्रयोग का पता चलता है। चमड़े के वस्त्रों के बाद सूत के कपड़े की व्यवस्था रही होगी। सिले हुए वस्त्र कम पहने जाते थे। यही कारण है कि पुरुष एक धोती और दुपट्टे से समस्त शरीर ढक लेता था। और स्त्री के लिए भी एक धोती पर्याप्त होती थी। स्त्री के वस्त्रों में पुरुष की अपेक्षा कम वृद्धि हुई है। लोक जीवन के पहनावे पर दृष्टि डालें तो भिन्न २ देशों में भिन्न २ प्रकार के पहनावे पाये जाते हैं। उन पहनावों पर देश काल और वातावरण का अधिक प्रभाव है। भारत के लोक जीवन की पोशाकों में चुनरी, धोती, लुंगी, लंगोटा, चोली, झूला, जामा, कुरता, सेहला, अंगरखा, दुपट्टा, तहवन, कंटोंप, चोटी-बऊखा, लुधियाना, चमऊधा, जूता, खड़ाऊँ, खरपटी, वधऊरा आदि की गणना की जा सकती है। स्त्रियां गरमी में जाड़े के दिनों की रुई को कात लेती हैं। गांव का कोरी जिसे जुलाहा भी कहते हैं उस रुई का गाढ़ा तैयार करता है। गांव का रंगरेज उसी गाढ़े की सुन्दर साड़ी बना देता है जो चुनरी भी कहलाती है। कुछ लोग पोमचा भी कहते हैं। उसमें गुलाबी, हरा, पीला, लाल, नारंगी आदि सभी प्रकार के रंगों का प्रयोग किया जाता है। बड़ा ही सुन्दर वस्त्र तैयार होता है। वर्तमान साड़ी में भी इन सब रंगों का सुन्दर प्रयोग होता है। अतः वर्तमान की साड़ी प्राचीन चीरा, चुनरी का रूप है। इसमें आलेखन-अलंकारिक और मनोविनोदार्थ—कितने प्रकार के दिखाये जाते हैं, कहते नहीं

बनता। झूला भोजपुरी क्षेत्र की एक पोशाक है। वर्तमान में उसी का नाम जम्फर है। व्रज में अंगिया के साथ लंहगा फरिया का भी प्रयोग होता है। अंगिया छोटे २ टुकड़ों को जोड़कर बनाई जाती है। वर्तमान की वह बौडी कहलाती है। सेहला, अंगरखा विवाह के शुभ अवसर पर पहने जाते हैं। जामा, अंगरखा, कुर्ते के प्राचीन रूप हैं। कंटोप जाड़े के दिनों में पहना जाता है। चोटी, बोरला-बऊखा, फलेना, चुटीला बालों को सजाने के लिए प्रयोग किए जाते हैं। चमऊधा, जूता, खड़ाऊँ, चटाकी आदि जूते के स्थान पर प्रयोग किये जाते हैं। वर्तमान के समस्त पहनावे प्राचीन पहनावों के रूप हैं।

आभूषण—असम और नेफा के क्षेत्रों में ही अब कौड़ियों और गुरियों आदि के आभूषण प्रयोग किये जाते हैं। फैशन के प्रभाव से लोक प्रचलित आभूषण लोप हो रहे हैं और उनका स्थान नवीन आलेखन के नवीन युग के आभूषण ग्रहण कर रहे है। जहाँ प्राचीन में स्त्रियों पर सेरों चाँदी और सोना होता था अब वह तोलों में बदल गया है। मंगटीका, कर्णफूल, नथ, बुलाक, विशेष प्रकार की छूछी, कण्ठा, हंसली, हमेल, हलका, कड़ा, गोडहरा, बाजू, बंगरी, कंकनी, झूमका, टड्डे, अन्त आदि गहने अब भी भिन्न २ क्षेत्रों की ग्रामीण नारियां पहनती हैं। मंगरी मांगलिक आभूषण है जो विवाह के समय अवश्य प्रयोग किया जाता है। वर्तमान में जो इयररिंग पहने जाते हैं वे ही पहले कर्णफूल और झूमका कहलाते थे। नथ, बुलाक, छूंछी और नकवली नाक में पहनने के आभूषण हैं। बाजू, बांगुरी, कङ्कनी, भुजादण्ड आदि बाहों की शोभा बढ़ाने के लिए हैं। लहठी के गहने देहात में आज भी बड़े चाव से पहने जाते हैं। चूड़ियों का रूप बड़ा बदल गया है। कांच के ही नहीं सोने की चूड़ियां आज सभ्य समाज में खूब प्रचलित हैं।

मूर्ति और बर्तन—मूर्ति और बर्तनों के लिए हम भारतीय कुम्हार को भूल नहीं सकते। भिन्न २ देवी देवता और नाना प्रकार के बर्तन इसके

हाथों की उपज है। भारतवर्ष की दिवाली त्योहार पर मिट्टी, चीनी, खांड के नाना प्रकार के बर्तन कोने २ में पाये जाते हैं। धूंचा, मेटा, कलसी, गगरी, भाँड, कूँडा, सुराई, नाँद, मंगल कलश, नदिया, थपुआ, मटकी, गुल्लक, ढिबरी आदि सब मिट्टी से ही बनाये जाते हैं। कांच और चीनी मिट्टी के बर्तन, वलिया के लोहे के गगरे, मिर्जापुर और काशी के पीतल के और मुरादाबाद के कलई के बर्तन बड़े विख्यात हैं। इन पर जो आलेखन के नमूने चित्रित किये जाते हैं वे देशकाल से प्रभावित हैं और लोक कला के अद्भुत नमूने हैं।

जिन देवताओं का लोक जीवन में अधिक प्रभाव है उन देवताओं की उतनी ही अधिक संख्या में मूर्तियां पाई जाती हैं। लोक कलाकारों ने मिट्टी और धातु की मूर्तियां अवश्य बनाई हैं परन्तु वे सब अधिकतर देवी देवताओं की ही मूर्तियां हैं। विशेष कर गणेश, शंकर जी, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, विष्णु, कृष्ण, राम-हनुमान, भैरों, काली, बुद्ध, महावीर स्वामी आदि की मूर्तियां अधिक पाई जाती हैं। भारतीय धर्म में गाय, बैल, हंस, मोर आदि का भी महत्वपूर्ण स्थान है। प्रायः सभी पशु किसी-न-किसी देवता के वाहन होने के कारण पूजनीय हैं। कुछ पक्षियों को देखकर ही आनंद होता है। तोता को प्राय शौक में पाल लेते हैं। 'सुआ पढ़ावत गणिका तारी'—अतः सुक का बड़ा महत्व है। लोक कल्याण की अपार भावना है। बसौडे का एक विशेष प्रकार देवता होता है। शीतला देवी की बड़ी पूजा अगरा जिला में होती है। वहां कला कृतियां सुडौल न होने पर भी लोक कल्याण की भावना से ओत-प्रोत हैं। चौराये वाला भी देवता होता है। सकोरे पर एक प्रकार का लाल सिदूर से आलेखन चित्रित करके कुछ मिठाई फूल आदि के साथ चौराहे पर रखकर पूजा जाता है। इस प्रकार के स्थान अपना अलग इतिहास रखते हैं और लोक कला के नमूने हैं।

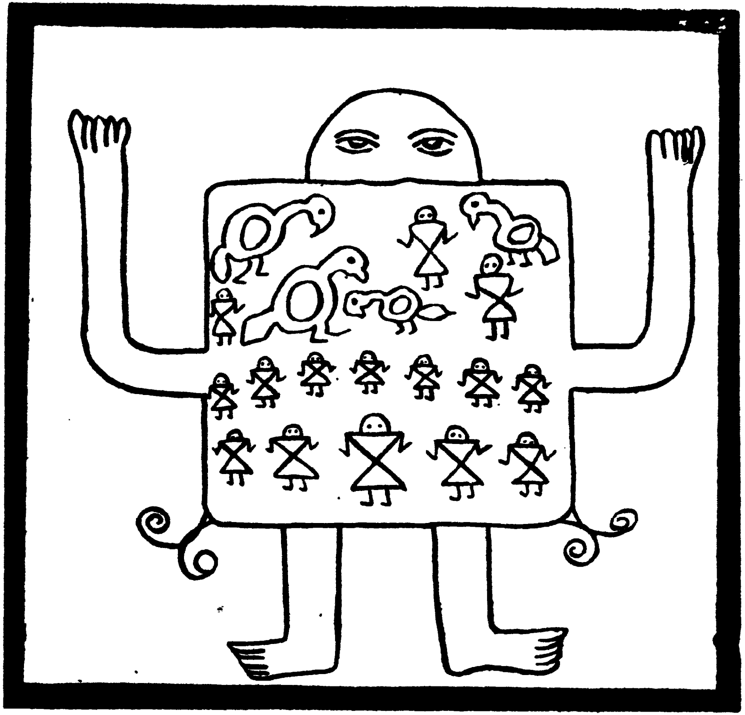
वाद्य यंत्र—लोक वाद्य जीवन गति के प्रतीक हैं। यही वाद्य हमारी संस्कृति की गतिविधि का परिचय देते हैं। इनके प्रकार चार हैं।

(१) फूँक कर बजाये जाने वाले वाद्य:—सर्वप्रथम भगवान् कृष्ण की प्रिय बाँसुरी, इसके बाद धुधुरु या सींगा फिर शहनाई का नाम उल्लेखनीय है। असभ्य जंगली पशुओं के सींगों को भी बजाते हैं। देहातों में ताड़ के पत्ते अथवा ज्वार की पत्तियों का चौंगा अथवा पीपनी बना कर बजाते हैं आम की गुठली का पपइया बनाकर देहात में बड़े चाव से बजाया जाता है। तुरई का भी इन्हीं वाद्यों में स्थान है।

(२) तारों द्वारा बनाये जाने वाले वाद्य:—किंगीरी इस श्रेणी का मुख्य वाद्य है। इसका निर्माण सूखी लौकी को खोखला कर के उस में तार लगा कर किया जाता है। इसका विकसित रूप सारंगी है। तम्बूरा अथवा तान पूरा भी इस श्रेणी का वाद्य है। सितार और वीणा इसी श्रेणी के सर्वाधिक लोक प्रिय वाद्य हैं।

(३) चमड़े से मढ़े जाने वाले वाद्य:—तबला, ढोलक, मृदंग, डमरू, उफली, अलगोंछा, खंजरी, ढप आदि को इस श्रेणी में गिना जा सकता है। पौराणिक कथा है कि ब्रह्मा ने ढोल को जन्म दिया। त्रिपुर दैत्य के चमड़े से ब्रह्मा ने ढोल मढा और जिस समय तांडव नृत्य हो रहा था उस ढोल को गणपति को बजाने के लिये दे दिया। डमरू भगवान शंकर का अत्यन्त प्रिय वाद्य है। भगवान् शंकर को प्रसन्न रखने के लिए रावण स्वयं मृदंग बजाया करता था। चमड़े और लकड़ी का अधिक प्रयोग इन्हीं वाद्यों के निर्माण के लिए होता था।

(४) ठोस वाद्य:—लोक कला के आदि रूप की झलक ठोस वाद्यों में दृष्टिगोचर होती है। झाँझ, झाल, मंजीरा, करताल, डेढ़ ताल, वाणी आदि मुख्य हैं। इन वाद्यों का प्रयोग धार्मिक कृत्यों में अधिक होता रहा है। आनंद के लिये महापुरुषों के द्वारा कुछ वाद्य प्रयोग किये जाते थे परन्तु उनमें भी धार्मिकता का प्रभाव ही था। शंख, घंटी, घण्टा, बेला, आदि पूजा-पत्री के समय अधिक प्रयोग किये जाते हैं।



अहोई अष्टमी

वाद्य के साथ २ रक्षा के लिये कुछ वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। भारत में हथियार शरीर शक्ति से प्रयोग किये जाते हैं।

हथियार—लाठी का स्थान सर्व प्रथम है। इसके दोनों सिरों को चाँदी, पीतल आदि की मूठ से मढवा लेते हैं। सुंदर आलेखन उन मूठों पर चितेरे चीत देते हैं। गुर्देल धनुष के आकार का होता है उसमें प्रत्यंचा मिट्टी की गोल गोल गोलियाँ रखकर लक्ष्य बँधा जाता है। ढेल बाँस भी इसी के समकक्ष हैं। यह रस्सी की बनी होती है, और ढेला रख कर फेंका जाता है। ब्रज में इसको गिलोल कहते हैं। तीर, धनुष, बर्छी, भाला, कृपाण, कटारी, बघनखा, छुरा, चाकू, कैंची, आदि कुछ ऐसे नमूने हैं जो हथियार के रूप में प्रयोग किये जाते हैं।

व्यवसायिक औजार—मशीन के युग से पूर्व भारत में प्रायः देशी औजारों का ही प्रयोग होता था जिनको यहाँ के लोग स्वयं बना लेते थे। भारतीय कृषि में हल रीड की हड्डी है। कुदाल, देंगा, पटेला, हाथा, खुरपी, खुरपा. फावड़ा, गडसा, गडासी, ढेकचा, ढेकली, मौंट आदि का सबका अलग २ महत्व है। इनकी भिन्न २ प्रकार की शक्ल और उनमें भी आलेखन उपयोगिता के साथ सुंदर बनाते हैं। सुनार, लोहार, बढ़ई, चमार, जुलाहा, कुम्हार के औजार, छैनी, हथोड़ा, हथोड़ी, चीमटा, फूंकनी, बसूला, रुखनी आरी, आदि भी काफी महत्व पूर्ण हैं। सुनारों के ठप्पे, बारीक से बारीक नक्काशी किया करते हैं। लोक कला के भिन्न आलेखन जो इन के द्वारा निर्मित होते हैं आदर्श हैं। लकड़ी पर खुदाई, गहनों पर चिताई आदि बड़े उत्कृष्ट नमूने हैं।

लोक चित्रकारी—यह कला सार्वजनीन कला है और इसके माध्यम भिन्न २ हैं। काढने अथवा लिखने:—पतले रंगो से, चीतने गोबर आदि से, खोदने, लकड़ी, मिट्टी के बर्तन आदि पर, भरने-सूखे रंगो से, गोदने, चिपकाने, आदि।

काढने अथवा लिखने की चित्रकारी—इस प्रकार की कला के अंतर्गत धार्मिक चित्र जो भारतीय नारी काढती है, आते है। रक्षाबंधन के चित्र में श्रवण कुमार के अन्धे माता पिता को कंधे पर चित्रित किया जाता है। इससे पितृभक्ति का उपदेश मिलता है। यह गेरु से दीवार पर एक दिन पहले काढे जाते हें। इनको ब्रज में सौना कहते हैं। नाग पञ्चमी के चित्र में काले कोयले को पीसकर दीवार पर गोबर से लीपकर सांप चित्रित किये जाते हें। सांपो की पूजा भारतीय उदारता की पराकाष्टा है। इसे प्रत्येक भारतीय बड़े प्रेम से करता है। सांप अवसर पाने पर काटने में चूकता नहीं है परन्तु भारतीय सांप को नागपञ्चमी के दिन जंगल में दूध पिलाते हैं। दीवार पर सांप की दूध, घी से पूजा करते हें। दिवाली पर भी इसी प्रकार काढा जाता है। देवठान और इनसे भी अधिक महत्वपूर्ण करवा चौथ और अहोई आठें हैं जो क्रमशः गेरु, खरिया और चावल के आटे से काढी जाती है। इन सब कला कृतियों में सर्व हित की भावना छिपी है। धामिकता का महान पुट है।

चीतने की चित्रकारी—प्राकृतिक पदार्थों की सहायता से भारतीय सदैव लोक कला का प्रदर्शन करते रहे। कागज का प्रयोग ही नहीं हुआ था। दीवार को कागज़ के स्थान पर प्रयोग किया गया। नव दुर्गा में जो आश्विन के शुक्ल पक्ष में होती है, दीवार पर नौरता व कोट काढा जाता है। कौडी की बड़ी सुंदर आलेखन बनाई जाती है। पितृ पक्ष में गोबर के भिन्न २ प्रकार के चित्र बनाये जाते हैं। प्रतिदिन एक चित्र दीवार पर गोवर से चीता जाता है। बच्चा होने पर छः दिन बाद चरुआ रखा जाता है, सतिये गोबर से उस कमरे की दीवार पर बनाये जाते हैं। गोबर से गोवरधन व भैय्या दोज बनाई जाती है।

खोदने की चित्रकारी—पृथ्वी को खोदकर भिन्न २ प्रकार के सूखे रंगों की सहायता से आलेखन बनाये जाते हैं। इनका धार्मिक महत्व इतना नहीं है जितना मनोविनोदार्थ रचना का महत्व है। प्रायः चौक—आंगन कच्चे हुआ करते थे। उनमें समय २ पर आलेखन बनाये जाते थे। लीपने में गोबर की

सहायता से हाथ के ऐसे वक्र दिये जाते थे कि लोक कलाकार की प्रशंसा के अतिरिक्त और कुछ नहीं कह पाते थे ।

भरने की चित्रकारी— भरने की कला का सम्बंध भी व्यवहारिक कृत्यों से है । सबसे प्रचलित भरने की कला का प्रयोग शुभ उत्सवों पर चौक पूरना है । बंगाल में "अल्पना" भी रंग भरने की कला का एक नमूना है बम्बई प्रान्त की ओर 'रंगोरी' भी उसी का नमूना है । पारसी लोग प्रात: सफेदी से एक प्रकार के फरमे के द्वारा आलेखन बनाते हैं यह भी भरने की कला का एक नमूना है । स्त्रियों की मांग भरने की भी भिन्न २ प्रणाली होती है । नाइन इस कार्य में बड़ी दक्ष होती हैं । साधारणतया सब लड़कियों और स्त्रियों को भिन्न २ शैली के बहुत से नमूनों का ज्ञान होता है । इन सब में लोक हित की भावना छिपी रहती है अत: प्रत्येक स्त्री अपने सुहागवती होने का चिन्ह इस प्रकार की माँग भरने की क्रिया के द्वारा करती है ।

गोदने की चित्रकारी—लीला गोदने की बड़ी प्राचीन प्रथा है । एक बार भगवान कृष्ण भी लीला गोदने वाली का स्वरूप बना चुके हैं । अत: गोदने की कला द्वापर से तो प्रचलित स्वीकार करने में आपत्ति ही नहीं है । लीला गोदने के लिये बड़े २ सुंदर आलेखन लीला गोदने वाली पर होते हैं । वे बड़ी कुशलता से शरीर के प्रत्येक अंग पर अच्छे नमूने गोद देती हैं । सास बहू दोनों एक दूसरे के हाथ पर हाथ रख कर गुदवाती हैं इसके अंतर्गत यह भावना छिपी है कि अगले जन्म में भी उसको यही सास मिले । यह है अटूट श्रद्धा और प्रेम जो लोकाचार में दिखाया गया हैं ।

चिपकाने की चित्रकारी—अकृत्रिम साधनों के प्रयोग की भावना को लोक कलाकार बड़ा बल देता है इसका कारण यह भी है कि यह साधन सुलभ भी हैं । फूल पत्तों को तोड़कर उन पर भिन्न प्रकार के आलेखन काटे जाते हैं । वे आलेखन दीवार पर चिपकाये जाते हैं । दशहरे पर कोट आदि काढ़ने में पान के पत्तों के आलेखन काटे व चिपकाये जाते हैं ।

बुनाई कढाई भी लोक चित्रकारी का एक नमूना है। सीक अथवा अरहर की लौद (झाऊ) की डलिया, मोन्हा, दऊरी, टिकली, सिन्होरा सिन्होरी पर भिन्न प्रकार के आलेखन बड़े सुंदर लगते हैं। प्रयाग के लोक कला संग्रहालय में लोक कला के बहुत नमूने पाये जाते हैं।

लोक कला हृदय का धन है, शास्त्रीय कला मस्तिष्क का। लोक कला में रस है शास्त्रीय कला में अलंकार है। लोक कला मनुष्य मात्र के लिये है शास्त्रीय कला का ज्ञान थोड़े से लोगों को होता है जो उससे परिचित होते हैं। लोक कला में किसी प्रकार की ट्रेनिंग की आवश्यकता नहीं होती यह बालक बालिकाओं को लोकाचार से ही स्वतः आ जाती है। शास्त्रीय कला में गहरी साधना की आवश्यकता है। बिना साधना के ज्ञान और अभ्यास पूर्ण नहीं हो सकता। लोक कला के चित्रण में किन्ही शास्त्रीय नियमों का पालन नहीं करना पड़ता। शास्त्रीय कला में रंग, अनुपात आकृति की विशेषता का ध्यान आवश्यक है। लोक कला प्रतीकवाद का प्रतिनिधित्व करती है शास्त्रीय कला वास्तविक तथा कल्पना का। लोक कला सरल और शास्त्रीय कला कठिन है। कविवर राम नरेश त्रिपाठी ने लोक गीतों की महिमा महाकवियों की वाणी से अधिक महत्वपूर्ण बतलाई है। इसी प्रकार लोककला की महिमा शास्त्रीय कला की महिमा से कहीं अधिक है। लोक कला का अक्षय भंडार है। इस भंडार को सम्हाल कर रखने और संजोने की बहुत आवश्यकता है। अध्ययन और अनुशीलन की प्रेरणा से यह ग्रहण की जा सकती है।

अध्याय अठारह

कला का जीवन में महत्त्व

प्रकृति की अपेक्षा कला का अधिक महत्व है। कला प्रकृति का प्रतिनिधित्व करती है। आत्मा के लिए कला की विशेष सेवा है और यही सेवा आत्मा को परमात्मा का अनुभव कराती है। कला में कुछ संतोष कर शक्ति होती है। प्रकृति के सौंदर्य की वही शक्ति मनुष्य को प्रेरणा देती है कि वह महान कार्य करे। महान कार्य करने की ओर बड़ा बनने की भावना सबमें होती है परन्तु प्रयत्नशील बिरले ही होते हैं। जीवन किस प्रकार का हो, संसार कैसा है यह हम कला के द्वारा बड़ी सरलता से जान सकते हैं। अजन्ता, बाघ, सिमीरिया, एलोरा, एलीफेन्टा आदि गुफाओं में भित्ति चित्रों की रचना हुई है। वे अब तक विद्यमान है और उनकी रक्षा की गई तो आने वाले बहुत समय तक उनका अस्तित्व रहेगा। इन सबके निर्माण में यह भावना विद्यमान है कि इनका उद्देश्य लोक कल्याण की भावना पर आधारित हैं।

यद्यपि वे किसी एक धर्म को प्रतिपादित करते हैं परन्तु भावना सार्वभौमिक है, यह विशेषता है। इनके निर्माण के पश्चात् ऐसी असम्भूत कृतियों का जन्म क्यों नहीं हुआ क्या ऐसा युग जिसमें सब प्रकार की समृद्धिता थी, आया नहीं। आया अवश्य, परन्तु दृष्टिकोण और विचारधारा बदल गई। मुगल और राजपूत काल में अद्वितीय कृतियों का जन्म हुआ। चित्रकार एक से एक दक्ष और कुशल इस धराधाम पर अवतरित हुए, परन्तु उन कृतियों का लोप हो गया और वे विचार भी समाप्त हो गये। भित्ति चित्रों का स्थान लघु चित्रों ने ले लिया था परन्तु वे लघु चित्र सुरक्षित न रह सके। चित्र से अधिक टिकाऊ मूर्ति और गगन चुम्बी भवन हुए और ताजमहल की विशालता हमने अनुभव की। सांची का स्तूप अजन्ता के बाद की कृति है और अब भी अपना विशेष महत्व रखती है। रैफेल ने मैडोना की रचना की। इस रचना में एक अविवाहित लड़की और एक शिशु का चित्र है। इस प्रकार के बहुत से चित्र रचे गये, परन्तु इस चित्र की अपनी एक विशेषता है। यह रचना इस कारण नहीं हुई कि डेसडन की आर्ट-गैलरी में एक यह चित्र भी टाँग दिया जाय और उसकी शोभा बढ़ावे। बल्कि एक ऐसा आदर्श उपस्थित किया जो १० शताब्दी तक विचार का विषय बन गया और जब तक वह कैनवेस पर मैडोना का चित्र रहेगा संसार उससे विचारों की गहनता का आभास करता रहेगा और आदर्श सुन्दरता का अनुभव करता रहेगा। सूर सागर में सूर के पदों को यदि हम पढ़ें तो संगीत का तो आनंद मिलता ही है साथ २ बाल्य काल के कृष्ण के उन कृत्यों का ज्ञान होता है जो साधारण होने पर भी असाधारण है, जिनका वर्णन उस व्यक्ति ने किया जिसके पास आँखें ही न थी। गोस्वामी तुलसीदास से पूर्व महर्षि बाल्मीक ने सीता के चरित्र को लेखनी बद्ध किया। गोस्वामी जी ने उसी चरित्र को भगवती सीता के रूप में हमारे समक्ष रखा उसी को राष्ट्र कवि मैथिली शरण ने साकेत में व्यक्त किया। पात्र एक ही है। कवियों की सूझ भिन्न है। परन्तु आदर्श एक ही है इस प्रकार के

चरित्र-चित्रण से पुस्तकों की संख्या में वृद्धि ही नहीं की, अपितु नारी की आत्मा का आदर्श चित्रण किया और मानव जीवन पर उसका प्रभाव इतनी शताब्दियाँ बीत जाने पर भी हम अनुभव कर रहे हैं। साधारण से साधारण मनुष्य कह देता है अमुक स्त्री बड़ी सीता है। इस प्रकार के अनेक चरित्र नारी जीवन के भिन्न २ पक्षों में आदर्श झांकी उपस्थित करते हैं जो उत्साहित करने में बड़े सहायक हैं। जीवन को आदर्श बनाने में प्रेरणा देते हैं। हम उनके द्वारा आदर्श चित्रण, आश्चर्य, सहानुभूति, मनोभाव, हर्ष की प्रधानता, रोमांस और जीवन के दुखान्त और सुखान्त पक्ष का अनुभव करते हैं।

प्रकृति की सम्पत्ति अपार है। प्रत्येक दृश्य चित्रण कृतियों की वृद्धि ही नहीं करता बल्कि प्रकृति के एक नवीन रहस्य को प्रत्यक्ष करता है जो हमको अब तक अनुभव नहीं था। कला कृति संग्रहालय भी इसी प्रकार हमको सौन्दर्य, आकृति और अनुपात का ज्ञान कराते हैं। प्राकृतिक ध्वनि में भी एक माधुर्य होता है। यह ध्वनि अस्पष्ट होती है परन्तु ज्ञानवान उससे अपार आनन्द प्राप्त करते हैं। काव्य से साधारण से साधारण बात का ज्ञान होता है। प्रकृति से जीवन का उपदेश मिलता है।

सरिता सर निर्मल जल सोहा।
संत हृदय जस गत मद मोहा॥

यही उपदेश जीवन को सुलभ और सफल बनाने में सहायक होते हैं।

ब्रह्म के निर्गुण और सगुण का उत्तम और सरल उदाहरण गोस्वामी जी की इस चौपाई से अधिक स्पष्ट होता है।

फूलें कमल सोह सर कैसा।
निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसा॥

कमलों के फूलने से तालाब की प्राकृतिक शोभा द्विगुणित होती है। जन साधारण का मन उस शोभा को देखकर मुग्ध होगा ही और ज्ञानी को

निर्गुण और सगुण ब्रह्म का स्पष्ट ज्ञान हो जावेगा। कला का जीवन पर यही गहन प्रभाव है। प्रकृति के सभी समय, सभी दृश्य अपनी विशेषता रखते हैं। परन्तु अधिक प्रभावशाली प्रातः और सायंकाल का दृश्य है। एक से उत्साह और स्फूर्ति और दूसरे से विश्राम मिलता है। प्रातःकाल सूर्य की लालिमा कर्मठ को कर्म के लिए, भक्त को भक्ति के लिए ही नहीं बल्कि रोगी को भी स्फूर्ति प्रदान करती है। रोगी सुख का अनुभव करता है, वही सूर्य सायंकाल को प्राणी को विश्राम का आदेश देता है। इस ऊषा तथा सायंकाल की बेला का चित्रण कला के हर क्षेत्र में मिलता है। चित्र, मूर्ति, काव्य और संगीत कोई अछूती नहीं है। यह प्रकृति किस प्रकार मनोवृति को बदल देती है कहते नहीं बनता। वातावरण का प्रभाव अमिट रहता है।

उद्धव व्रज को जा रहे हैं। भगवान कृष्ण ने उनको निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देने भेजा है। उद्धव को बड़ा विश्वास है कि मैं ब्रज में पहुँचकर वहां के सम्पूर्ण वातावरण को बदल दूँगा परन्तु हुआ उसका उलटा। उद्धव के भावों में भूमि के प्रभाव से स्वतः ही परिवर्तन आने लगा।

हरैं हरैं ज्ञान के गुमान घटि जानि लगे।
जोग के विधान ध्यान हूँ तैं टरिबे लगे॥
नैननि में नीर रोम सकल शरीर छयौ,
प्रेम-अद्भुत-सुख सूझि परिबै लगे।
गोकुल के गांव की गली में पग परत ही,
भूमि के प्रभाव भाव औरै भरिबै लगे।
ज्ञान मारतण्ड के सुखाये मनु मानस कौं,
सरस सुहाये घन श्याम करने लगे।
दुख सुख ग्रीष्म औ सिसिर न व्यापै जिन्हैं,
छापै छाप एकै हिये ब्रह्म-ज्ञान-साने में।

कहै 'रतनाकर' गँभीर सोई ऊधव कौ,
धीर उधरान्यौ आनि ब्रज के सिवाने मैं।
औरै मुख रंग भयो सिथिलित अंग भयौ,
बैन दबि दंग भयो गर गरु आनें मैं।
पुलकि पसीजि पास चाँपि मुरझाये कांपि,
जानैं कौन बहति बयार बरसानें मैं।।

इस प्रकार कला के द्वारा हम आदर्श संसार की झलक पाते हैं। बिना आदर्श के जीवन की सार्थकता नहीं है। अंग्रेजी कवियों ने अधिक प्रेरणा प्रकृति से ग्रहण की है। आकृति, भावना, आचरण, चरित्र, रूप रंग और कर्म हमको आदर्श उदाहरण उपस्थित करते हैं। हमें प्रेरणा देते हैं। जीवन प्रेरणा पर आधारित है। यदि हम योरुप में घूम रहे हैं तो हमें दांते, वेथोविन, गोथे और रैफल आदि के साथ भ्रमण करने का अवसर मिल रहा है। यदि भारत में हैं तो चन्द्रबरदाई, सूर, तुलसी, मीरा और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साथ हैं। मानो हम उनसे इसी प्रकार मिल रहे हैं जैसे अपने युग के साथ वालों से मिल रहे हों। मानव जीवन पर कला का यह प्रभाव अमिट होता है। कला का जीवन में यह सबसे बड़ा महत्व है।

कला का उद्देश्य सजावट नहीं है। उपदेश ही इसका उद्देश्य नहीं है। हम किसी टैकनीकल ज्ञान को कला के द्वारा प्राप्त करते हैं यह कला की सीमा नहीं है। कला से सुख मिलता है। सन्तोष का अनुभव करते हैं। यह हमारे सौन्दर्यात्मक अनुभूति को परिपक्व करती है। इसका उद्देश्य विशाल और विस्तृत है। इसमें हर पक्ष में जीवन की वह झलक है जो अन्यत्र नहीं पाई जाती। यह हमको परम्परा की ओर अग्रसर करती है। हमें सार्वभौमिक प्रेम से परिचय कराती है। हमें ज्ञान प्राप्त होता है। यह सब गौण हैं, मुख्य यह है कि जीवन की पूर्णता हमें कला के संसर्ग से ही होती है। साहित्य संगीत कला से विहीन मनुष्य क्या होता है, कौन नहीं जानता? कला का मूल्यांकन करने वाले को इतना आनन्द प्राप्त होता है कलाकार की

इससे कहीं अधिक। कला की मौलिक रचना में कलाकार की आत्मा छिपी रहती है।

सुन्दरता को सन्तोष तथा आनन्दित करने वाला यह प्रभाव कलाकार को जितना प्राप्त होता है अन्य को नहीं। जब हम सुन्दरता की प्रशंसा करते हैं उसका विश्लेषण करते हैं हमारी विचारधारा को कितनी परिपक्वता मिलती है शब्दों का विषय नहीं है। मौलिक रचनाकार के आनन्द की सीमा ही नहीं है। चार विद्यार्थी किसी एक प्रश्न को हल करने में लगे हैं। चारों अपनी बुद्धि विचार से प्रश्न हल करने में अधिकाधिक प्रयत्नशील हैं। थोड़ी देर में एक उस प्रश्न को हल कर लेता है। उसके आनन्द की सीमा नहीं रहती। अन्य तीन विद्यार्थी उस आनन्द को अनुभव तो करते हैं परन्तु उतना नहीं जितना चौथे विद्यार्थी को हुआ जो प्रश्न का उत्तर हल कर सका था। अगर कला कृति ने दर्शक को उत्साहित कर दिया तो कलाकार की भावना की सफल अभिव्यक्ति हुई। कलाकार को प्रत्येक सफलता पर नवीन सफलता के लिए प्रोत्साहन और लाभप्रद क्षेत्र मिलता है। इस प्रकार उसको दूसरों की कला के मूल्यांकन का अधिकाधिक ज्ञान होता है। ज्ञान की सीमा नहीं है। कलाकार जीवन भर जिज्ञासु रहकर समाज को ज्ञान का आदान प्रदान कराता रहता है। कहा जाता है कि माइकेल एंजिलो ने एक १७ फीट के संगमरमर के टुकड़े को मूर्तिवत् किया परन्तु अन्य कलाकारों ने उसको प्रोत्साहित न किया। वह मूर्ति भी कई जगह घायल हो गई परन्तु इससे वह हताश नहीं हुआ और सच्चाई और विश्वास के साथ संलग्न रहा, यहाँ तक कि वह वीरत्व से परिपूर्ण डैविड की मूर्ति की रचना में सफल हुआ। उसकी मुद्रा अत्रुटि पूर्ण रही। भाव की पराकाष्ठा हो गई। फ्लोरेन्स के विशाल भवन की शोभा बढ़ाने में उस मूर्ति ने सहयोग ही नहीं दिया अपितु वह ग्रीक और रोम की कला के आन्तरिक्ष में प्रवेश कर गई। इस प्रकार वह इटली के तत्कालीन कलाकारों की कला कृतियों के सौन्दर्य को अनुभव कर सका।

कलाकार के नेत्र संसार के सौन्दर्य को कितना अनुभव करते हैं उसके कान संसार की लय में कितना सहयोग देते हैं, कलाकार को ही यह भी अनुभव होता है कि वह संसार के किस दृष्टिकोण को स्पष्ट न करे। उसके स्पष्ट करने से क्या २ लाभ और हानि हो सकती हैं। यही कारण है कि कलाकार के लिए कला जीवन का माध्यम है। मानवता के कौनसे शक्तिशाली तत्व वह संसार हित के लिए स्पष्ट करे। दांते महान कवि हुआ परन्तु उसके जीवन को आरम्भ में प्रेम प्राप्त न हुआ। वह देश से निकाल दिया गया। जिस नगर को वह अत्याधिक प्रेम करता था उसे छोड़कर उसके चित्त को असीम दुख हुआ। जीवन के समस्त कठोरपन को अनुभव करता हुआ वह दर दर भटका। जीवन के अन्तिम दिनों में वह रैवैना में निवास करने लगा। वहां वह नीचा सिर किये हुये देवदार के बनों में भ्रमण करता रहा, हिलती शाखाओं का आनन्द लेता रहा, उनके स्वर में स्वर मिलाता रहा। इस प्रकार वह उस तत्व पर विचार करता रहा जिसको वह जीवन में प्राप्त न कर सका। दांते ने कला देवी की सेवा में अपने आपको अर्पित कर दिया। इसके द्वारा उसने नवीन जीवन को जन्म दिया। डिवाइन कौमैडी की रचना की और उसने सत्य, सौन्दर्य, प्रेम, सदाचारिक सामंजस्य और सांसारिक शान्ति प्राप्त की जिसको इसके पूर्व वह प्राप्त न कर सका था।

केशव के सम्बन्ध में भी यही बात है। जीवन में बहुत भटकने के बाद गोस्वामी जी के उपदेश के फल स्वरूप उन्होंने रामचन्द्रिका की रचना की और अपार शान्ति प्राप्त की।

माईकिल एंजिलो अपने युग से आगे का प्रतिनिधित्व करता था, कलात्मक दुखान्त घटनाओं से घायल हुआ। उसे बहुत समय बाद सच्चे प्रेम का अनुभव हुआ, अपने जीवन के अधिक समय को दाँते की कविता के अध्ययन में लगाने पर उसने एक नवीन मोड़ दिया और समस्त जीवन पर संघर्ष और आपत्तियों में थपेड़े खाते हुए कला की शरण ली। संगमरमर की

सुन्दर मूर्तियों में उसने चरित्र को व्यक्तित्व प्रदान किया। बिथोविन का जीवन उदासीनता से भरा था। जीवन के संघर्षों से सदैव टक्कर लेता रहा। कार्यों में असफल रहा। विजय के उन क्षणों में समाज द्वारा उसको कुचल दिया गया जिस समय उसको वह ज्ञान प्राप्त हो जाता जिसके द्वारा उसकी कला को लोग अनुभव करते और उसकी प्रशंसा करते। बिथोविन को बाद में अपने संगीत में जीवन का वह अनुभव प्राप्त हुआ जिसको वह बाह्य इन्द्रियों से सुन नहीं सकता था। कलाकार की साधना और कला की आराधना संसार को वह गति प्रदान करती है जिसका उसको पूर्ण अभाव अनुभव होता था। गोथे ने महान कृतियों को जन्म दिया परन्तु स्वीकार क्या किया कि उसकी समस्त कला कृतियाँ सर्व मान्य महान कृतियों का अंश मात्र हैं। गोस्वामी जी ने भी अपार साहित्य को प्रदान करके अपने को कवि ही स्वीकार नहीं किया।

कवि न होउँ नहिं चतुर कहावों।
मति अनुरूप राम गुण गावों॥

साधारण श्रेणी के लोग अपने आपको महान कवि, कलाकार समझने लगते हैं परन्तु महानात्मायें बिलकुल भिन्न होती हैं। वे कला में जीवन का अनुभव करती हैं। मानवता को आदर्श की ओर बढ़ाने का यह उनका एक माध्यम होता है। कवि ब्राउनिंग ने "दी रिंग एण्ड दी बुक" में यह भाव स्पष्ट किये हैं कि कलाकार ईश्वर की दुनिया के तत्वों को अपनी दुनिया के तत्वों में परिवर्तित कर देते हैं। ब्राउनिंग का काव्य इस प्रकार दर्शन से ओत प्रोत है। कला का मूल्य महान है। इसके आनन्द की सीमा नहीं है परन्तु क्या यह आनन्द कलाकारों के लिए ही छोड़ दिया जाय। मेरे विचार में नहीं, यह आनन्द सभी के हिस्से में आना चाहिये। इस आनन्द से परे भी एक आनन्द है वह है जीवन का यथार्थ आनन्द। संसार के मध्य क्या ऐसा कोई प्राणी है जो जीवन के आनन्द को भोगना नहीं चाहता अर्थात् सभी

चाहते हैं। जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं है जिसको हम ललित कला न कह सकें। योरुप में कलात्मक वस्तु और उपयोगात्मक वस्तु में सौन्दर्य भरने की भावना पर बड़ा आन्दोलन चला था। कुछ कलाकार कहते थे कि वस्तु को उपयोगी बनाते समय ही सुन्दर बना दिया जाय। बाद में उसको सुन्दर बनाने का प्रयत्न उचित नहीं। ऐसा कोई व्यवसाय नहीं जिसको ललित कला कहा जा सके। अतः व्यक्तिगत सम्बन्ध के प्रत्येक पक्ष दूसरे से वैसे ही सम्बन्धित किये जा सकें यह एक समस्या है। सब के विचार, क्षेत्र और मनोवृति अलग २ होती हैं। अगर कला मनुष्य के किसी पक्ष का सामंजस्य पूर्ण प्रकाशन और प्रतिपादन है और समस्त जीवन का उससे पूर्ण सम्बन्ध है तो जीवन का कौन सा पक्ष अछूता रह जाता है जिसे हम कला न कह सकें।

कला की सेवायें मानव भावना के लिए सीमित नहीं हैं वे सब के लिए समान हैं और सार्वभौमिक हैं।



अध्याय उन्नीस

भारत में मूर्ति की रचना और सिद्धान्त

हिन्दू धर्म के अतिरिक्त प्राय: सभी धर्मों में मूर्ति को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। हिन्दुओं में भी आर्यसमाज के अनुयायी मूर्ति की अवहेलना करते हैं परन्तु यह स्पष्ट है कि संसार की सभी जातियों और युगों में यहाँ तक कि वर्तमान के प्रोटेस्टेन्टस, यहूदी और मुसलमान भी ईश्वराधना के लिए मूर्ति का प्रयोग करते हैं। भारत में मूर्ति का प्रयोग बड़ा प्राचीन है। राव महोदय ने अपनी पुस्तक "एलीमेन्टस आफ हिन्दू इकनोग्राफी" में स्पष्ट किया है कि हिन्दू उपासकों के लिए मूर्ति उसी प्रकार है जिस प्रकार ज्यामितीय पढ़ने वाले को रेखा चित्र। प्राय: सभी जातियां अंधविश्वासी हैं। कोई कम कोई अधिक। बौद्ध और हिन्दू भी अंधविश्वासी है और थे। देवी देवताओं का आवाहन किया जाता है। मन्त्रों का उच्चारण भी एक माध्यम है। गोस्वामी जी ने मन्त्र की महत्ता बतलाते हुए कहा है।

मन्त्र परम लघु जासु वश त्रिधि हरि हर सुर सर्व।
महा मत्त गजराज कह बसकर अंकुश खर्व॥

जब धूप, दीप, नैवेद्य से पूजा अर्चना करते हैं और दीपक के आगे अग्नि होती है, जब अग्नि पर घी डाला जाता है तो दीपक के प्रभाव से अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, उस समय ऐसा अनुभव करते हैं कि सेवा स्वीकार कर ली गई। यह बात बहुत प्राचीन है कि मूर्ति की स्थापना होती थी। किसी देवता की मूर्ति में उसकी शक्ति का आभास भी किसी सीमा तक स्वीकार किया जाता है। खुदा मन्दिर में रहता है। चर्च में ईसाइयों का ईश्वर निवास करता है इस पर सभी का विश्वास है।

अन्धविश्वास का प्रभाव संस्कारों से सम्बन्धित है। मनुष्य की प्रकृति में इसका विशेष स्थान है। विज्ञान के प्रभाव के कारण इसका अस्तित्व लोग कम अनुभव करते हैं परन्तु बात इसके विपरीत है। अणु को साधारणतया लोग सजीव वस्तु समझते हैं। यदि ये छोटे न हों तो स्पर्श किये जा सकते हैं। इससे यह अर्थ सरलता से लगाया जा सकता है कि यदि कोई वस्तु स्पर्श की जा सकती है तो उसका अस्तित्व अवश्य है। अगर भारतीय धार्मिक दर्शन को विचार किया जाय और उच्चतम विचारधारा की सीमा को समझा जाय तो यह स्पष्ट है कि इसके तत्व भारतीय दैनिक जीवन में गहरा स्थान रखते हैं। "माया" विशुद्ध भ्रम नहीं है। माया को शक्ति कहते हैं जिसका उद्देश्य रचनात्मक कार्य करना हैं। माया भ्रम के स्वरूप का उद्देश्य है। स्वरूप का वास्तविक अनुभव और उसमें प्रसंग के बिना लिप्त होना "मोह" कहलाता है। श्रीमद्भगवत गीता में कहा है कि आत्मा अमर है। न यह जन्म लेती है न मृत्यु होती है। माया के जन्म और मरण के सम्बंध में जो कहता है वह अनजान है। माया का न जन्म होता है न मरण।

मूर्ति का तात्पर्य उस देवी देवता के अस्तित्व का अनुभव करना है जिस की वह मूर्ति है। जिस समय मूर्ति की ओर नतमस्तक होते हैं उस समय पत्थर, पीतल अथवा अन्य कोई धातु की मूर्ति क्यों न हो भक्त उस धातु को नमस्कार नहीं करता बल्कि उसमें निहित देवता को नमस्कार करता है। आनन्द कुमार स्वामी ने "दिव्यवादान" नामक पुस्तक के आधार पर एक उदाहरण प्रस्तुत किया है। कथा यह है कि 'मार' एक यक्ष का उपगुप्त नामक भिक्षु से वाद विवाद हो जाता है। यक्ष मार की शक्ति है कि वह अपनी इच्छानुसार जो रूप चाहता है बना लेता है। वह अपने को अधिक प्रभावशाली समझता है। उपगुप्त से कहता है कि तुम मुझे प्रणाम् करो। उपगुप्त कहते हैं कि यदि तुम भगवान बुद्ध का स्वरूप धारण करके मेरे सामने आओ तो मैं प्रणाम् कर सकता हूँ। यक्ष भगवान बुद्ध का रूप धारण कर लेता है और उपगुप्त उसे प्रणाम् करते हैं। यक्ष कहता है कि आखिर तुमने प्रणाम् किया हो तो। उपगुप्त कहते हैं कि मैंने तो भगवान बुद्ध को प्रणाम् किया है यक्ष को नहीं। तात्पर्य यह है कि जिस समय मूर्ति को प्रणाम् किया जाता है उस समय उस मूर्ति में जिस देवी देवता का स्वरूप होता है भक्त उस देवी देवता को प्रणाम करता है न कि उस धातु को। हिन्दू बहु मूर्ति पूजक हैं। रोम के लोग भी इसी प्रकार की भावना हिन्दू धर्म के प्रति रखते हैं।

ईसाई धर्म का आधार ईसा है। ईसा के उत्थान और पतन का स्वरूप ही धर्म के उत्थान और पतन का स्वरूप है परन्तु हिन्दू धर्म किसी एक महान विभूति पर आधारित नहीं। भगवान कृष्ण की लीला का वर्णन बड़ा विशद है। परंतु वह ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित नहीं उसका आधार आत्मा का परमात्मा से मिलन है। गोपियों का भगवान कृष्ण से मिलन वही मिलन समझा जाना चाहिये। यह सब घटनायें बाह्य संसार की न होकर आन्तरिक संसार की समझनी चाहिये। इस विचार से हम उस संसार में प्रवेश करते हैं जो अगम्य है। भारत का धर्म का आधार महान और आदर्श

उदार है। स्वामी शंकराचार्य जगत् गुरु थे। उपनिषद के पूर्ण ज्ञाता, वेदान्त के जन्मदाता और मूर्ति पूजक थे। भिन्न २ मन्दिरों में मस्तक नवाते थे, भक्ति पूर्ण पदों में विभोर हो जाते थे। हिन्दुओं में सिक्ख समुदाय ऐसा है जो मूर्ति की पूजा नहीं करता, परन्तु जो मूर्ति का महत्व जानते हैं इससे अपने को बंचित नहीं रखते। वे प्रेम में विभोर हो जाते हैं। प्रेम वस्तु से होता है अतः वस्तु में मूर्ति का स्थान स्पष्ट है। दार्शनिक मूर्ति के अस्तित्व को समझता है और मूर्ति पूजा का पाठ पढ़ाता है। ईश्वर स्वयं स्वरूप धारण करता है। ईश्वर एक है परन्तु भक्त को उसकी इच्छानुसार दर्शन देता है। यह ईश्वर के भिन्न रूप हैं। इन रूपों में ही उसकी भिन्न आकृति है। किसी का आराध्य देव भगवान कृष्ण हैं तो ईश्वर भगवान कृष्ण के रूप में उस के हितों की रक्षा करते रहेंगे। अतः ईश्वर की भी भिन्न २ मूर्तियाँ हो गईं।

हिन्दुओं का ईश्वर ईर्ष्यालु नहीं है। वह विशाल है, व्यापक है और उदार है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते ताँस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

जो मेरे को जिस प्रकार भजते हैं मैं भी उसको वैसे ही भजता हूँ। इस रहस्य को जानकर ही बुद्धिमान मनुष्य सब प्रकार से मेरे मार्ग को वर्तते हैं। अतः ईश्वर के रूप भिन्न हैं। जिस किसी रूप का सहारा लेकर कोई भक्त भगवान का ध्यान करता है तो भगवान उसी रूप में उसके साथ पूर्ण सहयोग देते हैं। कहीं कहीं तो गुरु की पूजा इतनी महान है कि ईश्वर का दर्शन या अनुभव ही उन गुरु जी के द्वारा ही होता है।

गुरु गोविन्द दोनूँ खड़े का के लागों पांइ।
बलिहारी गुरु आपणे जो गोविन्द दिया लखाय॥

उद्देश्य की महानता का स्थान प्रमुख है। महान उद्देश्य विशाल और उदार होता है। महान उद्देश्य के त्याग के पश्चात् आदर्श आध्यात्मिक जीवन की झलक नहीं पा सकता। यही हिन्दू विधान है। भारतीय धर्मों में सब की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपार स्थान है। हिन्दू धर्म का अब तक अस्तित्व है इसका कारण ही यह है कि सर्वव्यापक को भिन्न २ रूप में भक्त अपनी इच्छानुसार देखता है। उसी की पूजा करता है, उसी में अपार शक्ति अनुभव करता है। जिस मूर्ति को वह देखता है वह चाहे पत्थर की हो, परन्तु उसको यह ज्ञान ही नहीं कि यह पत्थर है, वह तो उसे अपना आराध्य देव, और कैसा आराध्य देव, जो सर्व शक्तिमान है, मानता है।

हिन्दू धर्म में देवताओं की भिन्न प्रकार की पूजा और भिन्न स्वरूप का कारण एक नहीं अनेक हैं। अगणित समुदाय और उनकी भिन्न २ आवश्यकतायें भिन्न २ देवताओं के द्वारा पूर्ण हो सकती हैं। आध्यात्मिक विश्लेषण इस पराकाष्ठा पर पहुँचा है कि समस्त लौकिक आकृतियों को सम्मिलित करते हुए भी उनके कलावद्ध होने के पूर्व की आकृतियों का भी अनुमान करके उनको विशेष स्थान दिया जा सकता है। ये सब ईश्वर के भिन्न रूप हैं। ईश्वर महान है उसके भिन्न २ पक्ष हैं। इन सब देवताओं में वही एक ईश्वर का पक्ष है।

मूर्ति की रचना में कलाकार स्वच्छन्द नहीं है। इनकी रचना अनियमित रूप से नहीं हुई हैं। रचयिताओं ने भारतीय शास्त्रों के आधार पर रचना की है। उन शास्त्रों के रचयिता मंदिरों में गये मूर्ति के अंधविश्वास से नहीं बल्कि अपार श्रद्धा से पूजा व दर्शन किये। वे लोग महान दार्शनिक थे। मानव आवश्यकता को अनुभव किया। इसमें मनोविज्ञान का व्यवस्थित रूप से विश्लेषण किया। पदार्थ और मस्तिष्क सम्बंधी मूर्ति के भिन्न २ पहलुओं पर विचार किया। उत्पत्ति के सिद्धान्तों और दर्पत्याग के सौन्दर्य को अनुभव

किया और मूर्ति के भिन्न रूपों का रचना की। मूर्ति की रचना कलाकार ने दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष के आधार पर की।

स्वामी शुक्राचार्य के शब्दों में मूर्ति का महत्व पूजक और पूज्य के सम्बंध से स्थापित किया जाता है। भक्त की भक्ति के आधार पर ही मूर्ति का प्रभाव अनुभव किया जा सकता है। मूर्ति में विश्वास और श्रद्धा ही मुख्य है। यही प्राचीन ऋषियों का महान उद्देश्य है। यही उस उद्देश्य का मूल मन्त्र है। स्वामी शंकराचार्य ने वेदान्त के सूत्र १ से २० तक में प्रतीकवाद का विवेचन किया है।

जब कभी कोई शिल्पकार किसी मूर्ति की रचना करता है उसके मन में एक पवित्र भावना आती है। वह सोचता है कि एक आकर्षक चितवन की मूर्ति की रचना करूंगा। ऐसी मूर्ति बनाऊँगा जिसमें लावण्य हो आदि २। उस भावना में पवित्रता की गहनता होती है वह अपने मानसिक दृष्टिकोण को आकृति और उसके अनुपात से एकाकार कर देता है। सांसारिक भावना भी होती है, कि अच्छी मूर्ति की रचना से अच्छा धन प्राप्त होगा, परंतु धार्मिक प्रवृति और पवित्र कार्य होने के कारण विचारों की गहनता स्वाभाविक होती है। 'भारतीय शिल्प शास्त्र' नामक पुस्तक में मूर्ति की रचना पर गहरा प्रकाश डाला है। अशिक्षित कारीगर तो अपने उस्ताद की सेवा में ही आनुपातिक और आकृति सम्बंधी पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। परंतु हमारा शास्त्रीय ज्ञान इन महान ग्रंथों पर ही आधारित है।

शिल्प शास्त्र में मूर्ति की विशेषताओं पर पूर्ण प्रकाश डालते हुए लेखक ने कुछ सिद्धांतों की रचना की है जो भिन्न २ प्रकार के देवी देवताओं के लिए उचित हैं। बहुमुखी मूर्तियों की आकृति के साथ मस्तक से ठोड़ी तक के चित्रण के विशेष नियम प्रतिपादित किये हैं। मनोवैज्ञानिक नियमों का यह फल हुआ कि मूर्तियां भिन्न रूप में भिन्न भावनाओं से पूरित हमारे समक्ष आई और कला की असम्भूत कृतियां बनी। शिल्प शास्त्र के नियमों का

आधार सिर की संख्या पर था। १० सिर से आरम्भ करके ५ सिर पर समाप्त किया। ५ सिर वाला मूर्ति को छोटे प्रकार का माना जाता था और बौना स्वरूप होता था।

भारतीय कुछ आकृतियां प्रतीक ही होती हैं। बोधि वृक्ष का प्रतीक भगवान बुद्ध के ज्ञान का सूचक है। कुछ चित्रों में चरण ही अंकित किये जाते हैं। कहीं २ स्थान पर पूरी मूर्ति न होकर अङ्ग चित्रित किये जाते हैं। यह एक प्रकार से मंत्र का रूप है। शाक्तों के क्षेत्र में ज्यामितीय आकृतियां विशेष महत्व रखती हैं। दो त्रिभुज एक दूसरे में फंसे दिखाकर नर और नारी के रूप अथवा दो का एक रूप अंकित करते थे। कुछ आकृतियाँ गोल होती हैं। वे गोल आकृतियां भी किसी एक भाव को व्यक्त करती हैं। कुछ अपूर्ण रूप से भी भाव को व्यक्त करती हैं। वास्तव में सब आकृतियां प्रतीक हैं। यह निश्चित बात है कि सब आकृतियों का उद्देश्य आवाहन है ये सब किसी विशेष उत्सव पर पूजा के हेतु निर्माण की गई हैं। कुछ मूर्तियाँ पूजने के पश्चात् विसर्जन कर दी जाती हैं। बंगाली नवदुर्गा पर देवी की पूजा करके दसवें दिन उसे विसर्जित कर देते हैं। आवाहन करते समय उपासक मूर्ति के द्वारा परमात्मा से एकाकार करना चाहता है। ज्यामितीय में कुछ परिभाषायें हैं जिनके आधार पर चलकर कोई भी प्रमेय सिद्ध नहीं हो सकती परंतु कल्पना करके पूर्ण समस्या का समाधान हो जाता है। यही बात मूर्ति के सम्बंध में भी किसी सीमा तक लागू हो सकती है। मूर्ति के मूल्यांकन करने वाले दो प्रकार के व्यक्ति हैं, एक आराधक मूर्ति में अपनी आराध्य देव के स्वरूप की झांकी करता है। अपने उद्देश्य की पूर्ति कर लेता है दूसरा जो सौन्दर्योपासक है वस्तु की सुन्दरता का ही अनुभव करता है। पहिले के उद्देश्य की पूर्ति होती है वह मूल के अधिक समीप है। दूसरे की दशा विपरीत है।

अध्याय बीस

आधुनिक कला में 'वाद'

विज्ञान के प्रभाव से कैमरा का आविष्कार हुआ और वह आविष्कार इतना प्रबल और प्रभावशाली रहा कि विश्व की कला में उथल पुथल मच गई। जहाँगीर के समय में सर टामसरो ने एक कृति जहाँगीर को प्रस्तुत की और चाहा कि उसकी कुछ प्रतिलिपियां तैयार कर दी जांय। तैयार कर दी गई और सर टामसरो को उनमें से मौलिक कृति को ढूंढना मुश्किल हो गया। यह है वास्तविकता जो मुगल काल में विशेष महत्व रखती थी। भारतीय कला में कल्पना की उच्चता है। योरुप की कला वास्तविक है। उस वास्तविक कला के प्रभाव को कैमरा ने समाप्त कर दिया। कलाकार स्वच्छन्द विचरण में अधिक विश्वास करता है। लाभ यह हुआ कि कलाकार नवीन साधना में रत हो गए। कला में भिन्न प्रकार के आन्दोलनों का जन्म हुआ। इन सब की पृष्ठभूमि को देखें तो कला के दो रूप ही दृष्टिगोचर होते हैं—वास्तविक और भावात्मक।

वास्तविक कला का अर्थ प्रतिपादन की सच्चाई और यथार्थ की सत्यता है। भावात्मक कला का अर्थ प्रकृति की पवित्र और आवश्यक आकृति और उसका सूक्ष्म भाव पूर्ण विवेचन करना है।

वास्तविक अथवा यथार्थवादी कला के अन्तर्गत साधारण अनुभव के द्वारा आकृति को व्यक्त करने का सच्चा प्रयत्न ही नहीं बल्कि वे चुनी हुई आकृतियाँ शामिल हैं जो ज्ञान की विशेष स्थिति में चित्रित की गई हैं। इनको आदर्शवादी, अभिव्यंजनावादी, अति यथार्थवादी आदि कहेंगे। इसी प्रकार भावात्मक अथवा सारांशवाद के अन्तर्गत गोचर आकृति से पृथक उस प्रकार की आकृति समझी जायगी जो प्रकाशन के तत्वों पर आधारित है और जो कल्पना, आध्यात्म, गूढ़ अथवा रहस्यपूर्ण और परिपूर्ण हो। ये आकृतियां पदार्थवादी चिन्ह के रूप में प्रदर्शित की जाती हैं और भाव शब्द के प्रयोग का अनर्थ नहीं करती। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि कृति की पूर्णता ही मुख्य है बल्कि इसकी उत्पत्ति, रचना की विधि तथा अवस्थायें कला की कृति से अलग नहीं की जा सकती है। कुक महोदय के इस विचार से हम सहमत हैं।

ये दो प्रकार की विधियाँ क्यों प्रचलित हैं और इसका इस समय की सामाजिक स्थिति पर क्या प्रभाव है। दोनों प्रकार की विधियाँ एक दूसरे के विपरीत हैं, यह स्पष्ट है। प्रथम के द्वारा आन्तरिक से वाह्य का दर्शन होता है। द्वितीय के द्वारा वाह्य से आन्तरिक का अनुभव करते हैं। पहली में आकृति के वाह्य स्वरूप से ही ज्ञान हो जाता है दूसरी में आकृति के अंतस् में झांकना पड़ता है। दोनों प्रकार के चित्रकार अपने चित्रण में स्वतन्त्र हैं। यह आवश्यक नहीं कि वास्तविक चित्रण करने वाला भावात्मक चित्रण नहीं कर सकता अथवा करता है या भावात्मक चित्रण करने वाला वास्तविक नहीं करता। प्रकार भिन्न अवश्य हैं परन्तु शैली में कोई भेद नहीं है। यदि दोनों की वृहत् वैज्ञानिक विशेषता पर प्रकाश डालें तो अनुभव होगा कि वास्तविक चित्रण जीवन के इन्द्रिय जनित साधनों में दृढ़ भावना और

सहानुभूति उत्पन्न करता है। वास्तविक चित्रण प्रकाशन की स्वीकारात्मक विधि है। जिसके द्वारा हमको शुभ पक्ष के प्रकाशन की भावना का ज्ञान होता है। इस प्रकार की वस्तु भी है जिसके द्वारा हम जीवन के दुखान्त पक्ष को स्वीकार कर सकते हैं, परन्तु हम उसमें भी शुभ पक्ष का अनुभव करते हैं यह एक आशावादी धारणा है।

भावात्मक अथवा सारांशवाद में शून्य के अथाह और गूढ़ समुद्र को पार करना और उसके प्रति मनुष्य की प्रतिक्रिया है। इस प्रकार की रचनाओं में जान ग्रिस (Jaun Gris) महोदय का विशेष प्रभाव रहा। इनके द्वारा कला में एक नवीन प्रकार की प्रगति हुई। वर्गवाद में संयोगात्मक और विश्लेषणात्मक विधियों का भेद स्पष्ट किया गया है। कला को नवीन प्राचीनपन दिया है। विश्लेषणात्मक वर्गवाद यथार्थवाद की सन्तान है। दृष्टि सम्बन्धी अनुभव में जो आकृतियाँ आती हैं उनको रूपात्मक विधि में कम करने का जो प्रयत्न होता है वह विश्लेषणात्मक वर्गवाद के अन्तर्गत आता है। पिकासो के चित्र "कहान वेलर की तसवीर" (Portrait of kahn weler) में विश्लेषण का अभाव है। यद्यपि उसके कुछ प्रयोग वर्गवाद पर हैं परन्तु उसने कभी भी पूर्ण भावात्मक शैली का अनुकरण नहीं किया। ग्रिस महोदय के सिद्धान्त और प्रयोग यथार्थ और भावात्मक शैली के विरोधी तत्वों के मिलाने में हैं। चित्रकला को बुनाई का रूप दिया है। ग्रिस के शब्दों में चित्रकला एक कपड़े के समान है जिसमें एक भाव ताना है जो प्रतिनिध्यात्मक और सौन्दर्यात्मक तत्वों पर तथा दूसरा बाना है जो टेकनीकल, स्थापत्य सम्बन्धी और भावात्मक तत्वों पर आधारित है। यह धागे एक दूसरे के आश्रित हैं और एक दूसरे के पूरक हैं यदि एक भी कम हो जाता है तो कपड़ा नहीं बन सकता।

१६ वीं शताब्दी के आरम्भ में कलाकार टेकनीकल और सामाजिक सीमाओं को पार करके स्वतन्त्र विचारों से प्रभावित हुये। (Impress-ionism) प्रभाव वाद के पश्चात् कलाकार सौंदर्यात्मक स्वतन्त्रता और

प्रयोगों की ओर अग्रसर हुये। आरम्भ में आधुनिक कलाकारों के समक्ष दो पक्ष थे। एक सैद्धान्तिक जो भिन्न २ शिक्षण संस्थाओं द्वारा स्थापित हो चुका था दूसरा स्वतन्त्रता पूर्वक कार्य करने की भावना। अत: कलाकार या तो व्यापारिक कला ग्रहण करें अथवा अपने व्यक्तित्व में रहे और ललित कला का सेवी होकर आर्थिक संकट का सामना करे। अत: बीसवीं शताब्दी की कला-प्रगति को दो भागों में बांट सकते हैं—एक समाज में एक नवीन और महत्वपूर्ण कार्य की खोज दूसरी टेकनिक के साथ कलाकार के व्यक्तित्व की खोज।

अठारहवीं शताब्दी से पूर्व कला साधारण समाज का क्षेत्र नहीं थी। धनी मानी लोगों की विशाल आर्ट गैलरी होती थी, और जन साधारण का प्रवेश वर्जित था। जन साधारण के कलाकार को यह अवसर ही प्राप्त न था कि वह उन कलाशालाओं में प्रवेश कर सके। फ्रान्स के विप्लव के समय में कला का राष्ट्रीयकरण हुआ। कलाकार को प्राचीन कला से सम्पर्कित होने का अवसर मिला। फ्रांस की जनता में समानता हो गई। आरम्भ के वर्ष में एक बार दोपहर के बाद साधारण जनता का कलाकार कलाशाला (Art gallery) में जाकर प्राचीन कला कृतियों को देख सकता था। प्राचीन कला के सम्वन्ध में जान सकता था। नवीन परिस्थितियों में सरकार के प्रजातन्त्र हो जाने से कलाकार की आश्रयदाताओं से आर्थिक संधि भंग होगई। प्राचीन कला को देखने और समझने का अवसर मिला। कला में पुनरुत्थान हुआ। प्राचीनकला से प्रेरणा ग्रहण की।

आधुनिक कला में पुनुरुत्थान हुआ। (Classic) आभिजात्यवादी आलेखनों के प्रयोग से नवीन राजनैतिक और सामाजिक विचारों को व्यक्त करने में प्रयत्न किया गया। अमरीका और फ्रांस के भिन्न २ राजनैतिक पक्षों को व्यक्त किया गया। फ्रांस में नैपोलियन का प्रभाव स्थापित हुआ। १८०१ ई० में इङ्गलैंड में जार्ज तृतीय ने यूनाइटेड किंगडम की स्थापना की। ववैरिया पैरिस, म्यूनिच, ऐथेन्स में लडविग प्रथम ने (classis,

आभिजात्यवादी पुनुरुत्थान किया। तत्कालीन शिक्षा की विधि के प्रभाव से थोड़े स्थानों पर ही यह प्रगति हुई। इस समय आभिजात्यवादी शिक्षा पर अधिक बल दिया जाता था। कलाकार आभिजात्यवादी आकृति और प्राचीनता से अधिक परिचित थे। नवीन प्रभाववादी कला के जन्मदाताओं के लिए प्राचीन मुहाविरों का प्रयोग स्वाभाविक था। JACQUES LOUIS DAVID (१७४८–१८२५) जैक ल्यूस डेविड ने "होराथी की शपथ" एक चित्र की रचना की। यह चित्र घर-घर में आग लगा देने वाला था। इस चित्र में हथियार की पुकार है फ्रांस के अत्याचार के प्रति पूर्ण विरोध है। वर्तमान में इस प्रकार की शैली और विषय के चित्रों को स्थान नहीं है।

पुरातत्व खोजों के फल स्वरूप, सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक परिवर्तनों और तत्कालीन शिक्षा प्रणाली के प्रभाव से योरुप और अमरीका में आभिजात्यवादी पुनुरुत्थान हुआ। (Visual Arts) दृष्टि संम्बंधी कलाओं में नवीन शैली का जन्म हुआ। प्राचीन शिला लेखों और इसी प्रकार के अन्य विवरणों के फल स्वरूप कलाकार नवीन प्रगति की ओर अग्रसर हुये। प्राचीन साहित्य से परिचित होने के फल स्वरूप काल्पनिक नगरों का पता चला, हरकुलेनियम (१७३८), पोम्पे (१७४८) आदि की खोज से लोगों के विचारों को चुनौती मिली। टेसीटस, मार्सल, स्टैटियस, और मरकस ओरीलियस के वृतान्त वैज्ञानिक PLINY प्लिनी की मृत्यु की दुर्घटना को स्पष्ट करते हैं। प्लिनी के छोटे भाई का विवरण तो आँखो देखा लिखा है। जेम्स स्टुआर्ट और निकोलस रिवैट (१७६२) ने 'एन्टीक्यूरीज आफ एथैन्स' की रचना की। इससे प्राचीन संसार को बहुत ज्ञान हुआ। इंगलैंड के एडम भाइयों ने यात्रा करके रेखा चित्रों की रचना की, और पुरातत्व वेत्ताओं की सहायता से उनको प्रकाशित किया। सिक्के, पत्थर और सीपी भिन्न २ प्रकार के खोजे गये। जहां ये प्राप्त न थे वहां के अजायबघरों में

जनता के हित के लिए पहुँचाये गये। प्राचीन कला के ज्ञान को विस्तृत करने का प्रयत्न किया गया। आर्ट-गैलरी और अजायबघरों की स्थापना की गई। स्थान २ पर उच्च कोटि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की गई और प्राचीन कला के सिद्धान्तों को अध्ययन कराने की व्यवस्था की गई।

स्थापत्य कला—इस युग में नगरों का निर्माण ही नहीं हुआ अपितु प्राचीन स्थापत्य कला साहित्य के आधार पर भवन निर्माण हुए। नेपोलियन के प्रभाव से आकृतियां रोम की शान शौक़त को प्रदर्शित करती हुई निर्माण की गईं। सांस्कृतिक पुनुरुत्थान के फलस्वरूप जर्मनी ने ग्रीस की आकृतियों को अपनाया। भिन्न २ प्रकार के भवनों की आवश्यकता के अनुसार इंगलैंड और अमरीका में ग्रोस और रोम की शैली को लेकर रचना हुई। छोटे भवनों और बगीचों आदि के लिए ग्रीस की शैली तथा बड़े और विशाल भवनों के लिए रोम की शैली को अपनाया गया। सेन्ट जार्ज का संगीत-भवन इसका उदाहरण है। आँगनों में विजय के महराव बनाये गये। चाल ग्रिन का विख्यात महराव 'Arc de L' Etoile और पेरिस में फोनटेन की विख्यात महराव Carrouselarch अपनी विशेषता रखते हैं। तिकोने मन्दिर भिन्न २ माप के निर्मित हुए। (Smirke) स्मार्क का बृटिश म्यूजियम तथा लंदन का बेंक आफ इंगलैंड, पेरिस में (Vignon) विगनन का गिरजाघर ख्याति के स्थान माने जाते हैं। जर्मनी के (Regens burg) रेजिन बर्ग में (Leo von klenze) ल्यो वोन लेन्जी द्वारा निर्मित शहीदों का अन्तिम विश्राम है जहां पौराणिक शब्दावलि बहुभाषा के ज्ञान के रूप में है। इस प्रकार के स्मारक चिन्ह बड़े दिलचस्प हैं क्योंकि इनकी रचना प्राचीन के आधार पर नवीन रूप में हुई है।

मूर्तिकला—तत्कालीन मूर्तिकारों का ध्यान भी आभिजात्यवादी (Classic) मूर्ति को छोड़कर बहुत सुसज्जित यूनानी युग की शैली की ओर आकर्षित हुआ। आभिजात्य पुनुरुत्थान के समय मूर्तिकार ने ग्रीस की

शैली को अधिक अपनाया। डेनमार्क के बरटैल थोर वाल्डसन (Bertel thor valdsen) (१७६८-१८४४) इटली के एनटोनियो केनोवा (Antonio canova) (१७५७-१८२२) इंगलैंड के जान फ्लाक्समेन (John flaxman) (१७५५-१८२६) ने शुद्ध आभिजात्य विषयों पर मूर्ति की रचना की। कैनोवा और थोर वाल्डसन टेकनिक के बडे ज्ञाता थे। उन्होंने विश्वास के साथ ऐतिहासिक और पुरातत्व सम्बन्धी (Motifs) कथानक रूढ़ियों को प्रयोग किया। इस काल के मूर्तिकारों ने विषय का इस प्रकार चुनाव किया कि उसमें शुष्कता प्रतीक दृष्टिगोचर होने लगी। टेकनिक की निष्फलता रही। परम्परागत आलेखनों का प्रयोग किया गया, जिनमें पूर्वजों का यथोचित मान हो अथवा रोमन सम्राट की ख्याति और गौरव गाथा हो। तत्कालीन मूर्तिकारों ने वस्तु अथवा पदार्थ की उत्तमता का कम ध्यान किया और माध्यम को सीमित रखा। पुनुरुत्थान के बाद जो चित्र कृति जागरुक हुई उसको निभाया और (Plastic) रूप देने वाले माध्यम के अधिक गतिहीन लक्षण को प्रोत्साहन नहीं दिया।

चित्रकला के क्षेत्र में (Classic Revival) आभिजात्य पुनुरुत्थान काल में सीमित विषय और परम्परा का अनुसरण किया। इसका टेकनीकल पक्ष अधिकतर नियमों पर आधारित रहा। उच्च पुनुरुत्थान काल के महान कलाकारों की कृतियो के आधार पर और उनसे प्रेरणा लेकर कला की रचना की गई। इस युग में रेखा पर अधिक बल दिया गया और यह धारणा दृढ़ हो गई कि रंग के अतिरिक्त रेखा में सब कुछ है। रेखा का कार्य महान है। चित्रकला सम्बन्धी सब गुणों पर न प्रभावित होकर रूप और रेखा पर अधिक बल देने की भावना के कारण मूर्तियां ठण्ड से जमी मूर्ति के समान प्रतीत होती थी। डेविड की कृति "होराथी की शपथ" एक भावुक कृति है। एक ओर मूर्ति में प्रकाश है तथा मूर्तिकला के गुण उच्च श्रेणी के हैं, दूसरी ओर को सुन्दर सजी हुई आलेखन के रूप में है। प्लास्टर की मूर्ति से चित्रण की विधि प्रचलित थी। एक आकृति में एक समय का प्रभाव

व्यक्त किया जाता था इस समय का विषय शिक्षा सम्बन्धी हो गया था। राजनैतिक विषय का स्थान बदल गया था।

मुक्तिवादी कलाकार (Independents)—आभिजात्य पुनुरुत्थान काल में कुछ मुख्य व्यक्तिगत कलाकारों ने स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन सम्बन्धी तथा शिक्षा सम्बन्धी और वास्तविक शैली के आधार पर रचना की। तत्कालीन शैली के कुछ पक्षों तथा प्रभावों को आधार मानकर जो कृतियाँ निर्मित हुई उनमें वास्तविक मुक्तिवाद का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है। सबसे अग्रगण्य (Goya) गोया और (Daumier) डौमीर हैं। इसके अलावा (Jean Baptiste Caimille carrot) जीन बैपटिस्ट केमिली कैरट (१७९६-१८७५) (Jean francois millet) जीन फ्रेंकोइस मिलैट (१८१४-१८७५) ने स्वच्छन्दतावादी और यथार्थवादी प्रवृतियों को स्पष्ट किया। कैरट की दो स्पष्ट शैलियां थीं। (Cassic) आभिजात्यवादी जिसमें अधिकतर इटली की शैली का प्रभाव था, तथा दूसरी (Soft focus) कोमल केन्द्रीय जिसमें वैज्ञानिक यथार्थवाद और फोटोग्राफी का विकास स्पष्ट दिखाई पड़ता था। इसमें दृष्टि काव्यात्मक होती थी। उस शैली का (Dance of Nymph) अप्सरा का नृत्य बहुत विख्यात है। 'मिलैट का किसान' सम्बन्धी विषय अधिक लोक प्रिय था, और बहुत से शिक्षित कलाकारों ने उसका अनुकरण किया परन्तु उनकी मौलिक रचनायें यथार्थ और स्वच्छन्दतावाद का मिश्रण थीं।

Francisco Goya फ्रांसिसको गोया (१७४६—१८२८) ने १९वीं शताब्दी में आभिजात्यवादी परम्परा के आधार पर शिक्षा प्राप्त की और स्पेन के बादशाह का दरबारी चित्रकार हो गया, परन्तु उसकी शैली व्यक्तिगत और यथार्थवादी थी। उसके चित्रों में यथार्थवादी प्रवृति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। तत्कालीन घटनाओं से संम्बधित चित्रों में गोया ने कृत्यों को अधिक महत्व नहीं दिया है अपितु अत्याचार, कष्ट और पाशविक कृत्यों का

चित्रण किया है। (Execution of Madrilenos at Murat's command) "मुरत के आदेश पर मैड्रीलैनोस की फांसी" में रंग और संयोजनात्मक नवीन मार्ग का चित्रण है। (Los Caprichos)लौस केप्रीकौस एक भारतीय, स्याही अथवा रंग से चित्रित एक श्रृङ्खला है इसमें उस युग पर उपहासात्मक आलोचना है और मनुष्य की कमज़ोरियों का चित्रण है।

(Disasters of war) युद्ध की आपत्ति चित्र जनता के अवलोकनार्थ नहीं थे। १८६३ ई० तक तो इनका प्रकाशन भी नहीं हुआ था। इन चित्रों में नैपोलियन के आधिपत्य में हारे हुए योरुप का चित्रण है। कुछ के शीर्षक "कौन जानता है क्यों" आदि बड़े हताश करने वाले हैं। स्पेन के आधुनिक चित्रकारों में गोया का स्थान प्रमुख है। उसने १७ वीं शताब्दी के महान चित्रकारों की आज्ञा का पूर्ण पालन किया और उनको अपना पथ-प्रदर्शक बनाया। "लुहार खाना" तथा तत्सम्बन्धी विषयों में पूर्ण अनुसरण किया। वह सतत प्रयोगवादी रहा और वस्तु अथवा पात्र की बुराई की खोज में पागल की भाँति कार्य करता था। गोया की भोजन शाला सुन्दर चित्रों से सजी थी परन्तु वे चित्र विषय की दृष्टि से सुन्दर न थे। एक चित्र में शैतान उसके बच्चों को हड़प कर रहा है। यह चित्र बड़ा कुरूप, डरावना और भयावह है।

Honore Daumier औनरे डौमीर (१८०८-१८७६) यह दूसरा मुक्तिवादी चित्रकार था, जो रेखा शैली को भी पार कर गया था। कला की शिक्षा इसकी अनियमित थी। यह कुछ समय (Litho grapher) पाषाण-लेखक रहा, और तत्कालीन राजनैतिक और सामाजिक विकृत आकृतियों (Cartoon) का चित्रण समाचार पत्रों को देता था। आर्थिक रूप से अधिक सफल न था परन्तु इसने अपने समय में ही अच्छी ख्याति प्राप्त करली थी। एक विकृत चित्र में इसने ल्यूस फिलिप को एक दैत्य के रूप में चित्रित किया जो प्रजा का भक्षण कर रहा हो। इस चित्र के प्रकाशन पर इसको सजा हो

गई । एक भयंकर राजनैतिक मशीन के रूप में दूसरे विकृत चित्र को चित्रित किया जिसमें एक तरफ रिश्वत ले रहा है और दूसरी तरफ कुछ का विशेषता के साथ हित कर रहा है । डौमीर यथार्थवादी चित्रकार था उसकी जनता के साथ सहानुभूति थी । रुपये की सदैव उसको आवश्यकता थी । अत: धन कमाने के लिए ही उसने चित्र रचना की । उसके चित्र स्मारक थे । उसने आकृति का विकृत रूप ग्रहण किया था । अधिकतर रेखा चित्रण करता था । रंग का बहुत कम प्रयोग किया है । उसने कभी स्मृति चित्रण नहीं किया और मॉडिल को देखकर नहीं बनाया । Ba udelaire बौडलेयर नामक कला आलोचक ने डौमीर के चित्रों की आलोचना की थी । उसके विचार में डौमीर एक विकृत आकृति चित्रण कला में ही दक्ष नहीं था अपितु वह बड़ा योग्य कलाकार था । आधुनिक कला में डौमीर की कला कृति अपना विशेष स्थान रखती हैं । समाज का हित उसके चित्रों से अधिकाधिक हुआ है ।

स्वच्छन्दतावादी कला—स्वच्छन्दतावादी कला रंगीन, व्यक्तिगत और अभिव्यंजक थी । यह १७ वीं शताब्दी के रुबैन के प्रकार की थी और बीसवीं शताब्दी में अभिव्यंजनावादी कलाकारों से मिलती थी । स्वच्छन्दतावादी कला का समय थोड़ा ही रहा, परन्तु इसकी शैली बड़ी स्पष्ट थी उसका कला की ओर एक दार्शनिक पग था । आभिजात्य दृष्टिकोण के वह विपरीत थी । यह आभिजात्य पुनुरुत्थान के विपरीत प्रतिक्रिया थी । इसका क्षेत्र प्रिय रंगों और विख्यात विषयों पर चित्रण करना था । आभिजात्य पुनुरुत्थान कला के सार्वभौमिक रेखा चित्रण और आदर्श शैली का स्वच्छन्दतावादी कलाकारों ने विरोध किया । आभिजात्य पुनुरुत्था न कला में स्वच्छन्दतावादी प्रवृतियाँ थीं । Benjamin बैनजामिन ने "वूल्फ की मृत्यु" एक चित्र चित्रित किया है । इसमें तत्कालीन घटना को उसी पोशाक में व्यक्त किया गया है । Gros ग्रौस का एक चित्र "जाफा में नैपोलियन" है । इस चित्र

में प्लेग से पीड़ित व्यक्तियों का चित्रण है। विशाल भवनों के सम्बन्ध में मध्यकालीन परम्परा का लोप नहीं हुआ था।

स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन में दृष्टि सम्बन्धी कला की प्रवृति व्यक्तिवाद की ओर बढ़ी। साहित्य के क्षेत्र में भी इसी प्रकार की प्रवृति रही। दृश्य चित्रों और प्रकृति में चरित्र के मूल्यांकन पर अधिक बल दिया। जिस प्रकार साहित्य में परम्परागत काव्य शैली के स्थान पर स्वच्छन्दतावादी प्रयोग अपनाया गया उसी प्रकार दृश्य चित्रण में (Technical) लाक्षणिक संयोजनात्मक तत्वों को विशेष स्थान प्राप्त हुआ। स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का एक विशेष उद्देश्य था। इस युग के कलाकार की भावना थी कि वह भूत के विचारों को पुनर्जीवित करे और वर्तमान और भूत के मध्य में अवसर की समानता को अधिकाधिक प्रगतिशील बनावे। स्वच्छन्दतावादी कलाकारों का यह प्रयास एक पृष्ठभूमि रखता है। कलाकार स्वतः इस [illegible] ी प्रवृति में अग्रसर नहीं हुए बल्कि उन पर साहित्य का बड़ा [illegible] पड़ा। तत्कालीन गृह-निर्माण कला पर साहित्य का विशेष रूप से प्रभाव रहा। गोथे ने जर्मन गृह-निर्माण अथवा स्थापत्य-कला पर जो निबंध लिखे उनसे उत्तरीय और विशेषकर जर्मनी की संस्कृति के लिए बड़ी देन स्पष्ट होती थी।

(Gothic) गोथिक शैली एक विशेष प्रकार की गृह-निर्माण में नुकीली महराव की बनावट की शैली है। तत्कालीन लेखकों ने साधारणतया गोथिक शब्द से घृणा प्रगट की थी। उन्होंने शैली को राष्ट्रीय नामों से प्रचलित किया। गौथिक शैली से घृणा प्रगट करने का कारण यह था कि उस शैली में मध्य युग की बर्बरता के प्रति घृणा की भावना विद्यमान थी। तत्कालीन साहित्यकारों ने स्थापत्य-कला का बड़ा विवेचन किया। जान रस्किन की सेविन लेम्प आफ आरकीटेक्चर कला के नैतिक पक्ष का विवेचन करती है। ब्रिटिश स्थापत्य कलाकार (Augustus Welley Nortomore Pugin) औगस्टस वैलेव नौर्थमूर प्यूगिन ने अंग्रेज़ी गौथिक स्थापत्य-कला

पर बहुत से निबन्ध और पुस्तकें लिखीं। सर वाल्टर स्काट ने गौथिक उपन्यासों की रचना की। इसके अतिरिक्त विलियम बैंक फोर्ड, होरस वालपोल और विक्टर ह्यूगो आदि का नाम उल्लेखनीय है।

स्वच्छन्दतावादी कलाकारों ने विषय का चयन साहित्यक और ऐतिहासिक माध्यमों के द्वारा किया। वे प्राचीम मूर्ति पूजकों की अपेक्षा मध्य-कालीन ईसाई युग को अधिक महत्व देते थे। वे राष्ट्रीय और धार्मिक विषयों पर अधिक बल देते थे। धार्मिक पुनुरुत्थान जिनमें आक्स फोर्ड आन्दोलन भी एक है ने इस कार्य में अधिक सहयोग दिया। स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन में स्थापत्य-कला ने भी ऐसे ही विषय को स्थान दिया जिनमें विचारों की महानता थी।

स्वच्छन्दतावादी चित्रों में धर्म पूर्व ग्रहण किया हुआ था। अतः आकृतियां बड़ी अनोखी और अधिक संख्या में थी। अधिकतर इन चित्रकारों ने पुनुरुत्थान काल के चित्रकारों की प्राचीन लोकाचारी शैली का अनुकरण किया था। इन चित्रकारों के चित्रों में विलियम ब्लेक के रहस्यात्मक स्वप्न और गोस्टेन डोर के बाइबिल सम्बन्धी भयावह वर्णन आदि भी हैं। इस समय मशीन का युग आरम्भ हो चुका था। अतः स्वच्छन्दतावादी कलाकारों ने मशीन के विरोध में भी तूलिका उठाई। जान रस्किन इस आन्दोलन का अधिनायक था। विलियम मोरिश ने हस्तकार्य के द्वारा व्यक्तिगत भावना की सफलता और सन्तोष की भावना जागृत की और कला का पुनुरुत्थान किया।

सहानुभूति, भय, आपत्ति आदि विषयों को लेकर स्वच्छन्दतावादी कलाकारों ने सार्वभौमिक अनुभव से (Motifs) कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया। इनके प्रभाव को प्राप्त करने के लिए तत्कालीन घटना तथा राष्ट्रीय विषय को प्रतिपादित किया गया। मूर्तिकार फान्कोइस रूड ने "मार्शल ने" में तत्कालीन व्यक्तियों को नैपोलियन के वीर के रूप में व्यक्त किया।

स्वच्छन्दतावादी साहित्य में साधारण व्यक्ति और असभ्य कुलीन विशेष प्रकार के पात्र थे परन्तु कला में इनको वह स्थान प्राप्त न था।

स्थापत्य अथवा गृह-निर्माण कला—स्वच्छन्दतावादी स्थापत्य-कला में नुकीली महराब की बनावट के भवन जो गौथिक शैली की विशेषता है, निर्मित किये गये। यह प्रभाव अमरीका तक फैला। इंगलैंड में फौन्थिल एबे का भवन निर्माण हुआ इसके कलाकार (James Wyatt) जेम्स वाट थे। गौथिक युग में स्थापत्य-कला की पराकाष्ठा हो गई। धार्मिक उत्साह अपनी सीमा को पार कर गया। पेरिस में (Gua) गुआ द्वारा निर्मित सेन्ट क्लाथिल्ड का गिरजाघर, सर गिलवर्ट स्काट द्वारा निर्मित एडिनबरा का चर्च आदि विख्यात हैं। इसका प्रभाव इतना अधिक बढ़ा कि कोलोगिन का गिरजाघर जो बहुत समय से अधूरा पड़ा था, १९ वीं शताब्दी में इसी प्रभाव के अन्तर्गत पूर्ण किया गया। कुछ स्वच्छन्दतावादी बागों का निर्माण भी हुआ जिसमें सर हैम्फ्रे रैफ्टन का बाग बहुत विख्यात है। इसमें मध्यकालीन वातावरण अधिक विकसित हुआ।

चित्रकला—स्वच्छन्दतावादी कलाकारों के चित्रों को साधारण व्यक्तियों ने अधिक अपनाया। उनके आलेखन गतिपूर्ण और कर्ण दृढ़ थे। रंग की योजना अधिक सुन्दर थी। चटकीले रंगों का प्रयोग इन कलाकारों को अधिक प्रिय था। आकृतियों को दर्शक के समीप चित्रित करने का और चित्र को धरातल से नीचे दिखाने का प्रयत्न कि या गया। आन्दोलन की भावना की बलवती अपील इन चित्रों में पाई जाती है। फ्रांस के (Geri Cault) गैरी कौल्ट और (Dela Croix) डैला क्रोक्स वास्तविक स्वच्छन्दतावादी चित्रकार थे। थ्योडोर गैरी कौल्ट (१७९१-१८२४) ने १८१९ ई० में फ्रांस की चित्रकला में स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन आरम्भ किया (Raft of Medusa) 'मेडूसा का बेड़ा चित्र' ने नवयुवक इयुगिन डेलाक्रोक्स तथा अन्य चित्रकारों को उत्साहित किया। अनोखे तमाशे स्वच्छन्दतावादी चित्रकला के विषय बन गये। व्यक्तिगत कला को जागरुक करने के प्रयत्न घोषित

करने पर भी कलाकार समूह में अधिक विश्वास दिखाने लगे। फोन्टेन के जंगलों में वारवीजन स्कूल के चित्रकारों को कोरोट (Corot) ने उत्साहित किया। थ्योडौर रूसो, कोन्सटेन्ट ट्रोयोन, चार्ल्स फ्राँकोइस डौविगनी, हैनरी हार पिगनी आदि इससे प्रभावित हुए। इंगलैण्ड में डैन्टे गैवारिल-रूजेंटी, हौलमैन हन्ट, जान एवरिट मिलियास और फोर्ड मैंडोक्स ब्राउन आदि प्री रैफैलाइट समूह के चित्रकारों ने भी इसी शैली का अनुकरण किया। मध्यकालीन धार्मिक शैली सम्बन्धी जर्मनी के चित्रकारों ने दृश्य चित्रों में इसी शैली को अपनाया।

मूर्तिकला—स्वच्छन्दतावादी मूर्तिकला में गतिपूर्ण संयोजन का अभाव था। यह कला कृतियाँ उद्देश्य, टेकनिक, आदर्श का प्रतिपादन नहीं कर सकी जो स्वच्छन्दतावादी कला में आवश्यक था। (Rude) रूड की एक कला कृति "मार्शल ने" में तत्कालीन समान भाव को वृहत रूप से चित्रित किया गया है। इसमें नेपोलियन के समय की कथा का वर्णन है। मुद्रा और मुखाकृति को बल प्राप्त हुआ है। इस युग की मूर्तियों का विषय राजनैतिक, राष्ट्रीय और ऐतिहासिक ही नहीं था बल्कि इन कलाकारों ने जंगली पशुओं की शक्ति, सौन्दर्य और शोभा को भी व्यक्त किया है। (Antoine Barye) एन्टोनी बारे (१७९५-१८७५) ने अपनी मूर्तियों में वीर और भयङ्कर पशुओं को व्यक्त करने में बड़ी सफलता प्राप्त की है।

(Realism) यथार्थवाद

यथार्थवाद की क्या परिभाषा हो यह विवादपूर्ण विषय है। किसी विषय अथवा 'वाद' की क्या परिभाषा होनी चाहिये यह निश्चित करना कठिन है। यही बात यथार्थवाद के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है परन्तु यथार्थवाद के अन्तर्गत क्या २ आ सकता है यह जानना सरल है। जीन एनी विनसेन्टा के शब्दों में यथार्थवाद स्वच्छन्दतावाद की प्रतिक्रिया, वैज्ञानिक

निरीक्षण, प्रकृति का यथार्थ ज्ञान, वस्तुओं का कारणवाद के अनुसार प्रस्तुत करना और विशेषनया अधिक से अधिक तथ्य को कम से कम तत्व में व्यक्त करना है। यथार्थवाद को साहित्य के द्वारा लेखक अथवा कवि व्यक्त कर सका है। कला के द्वारा और विशेषतया दृष्टि सम्बन्धी कला में इसको कलाकार अधिक स्पष्ट नहीं कर सके हैं। साधारणतया अभिजात्यवादी कला के क्षेत्र में यह स्वीकार किया जा सकता है कि व्यक्तिकरण के साधनों में वस्तु अथवा आकृति का यथार्थ चित्रण होता है और विस्तार पूर्ण चित्रण को अधिक महत्व दिया जाता है। योरुप में उदार भावनाओं का जन्म हुआ। उन्नीस वीं शताब्दी का प्रगतिवादी राजनैतिक आन्दोलन आरम्भ हुआ। इन सब के फलस्वरूप यथार्थवादी कला में सामाजिक वातारण विकसित हुआ। शिक्षित कलाकारों और सब सिद्धान्तों के तत्व के ग्रहण करने वाले स्थापत्य-कला वेत्ताओं ने यथार्थवाद के कुछ पक्षों को ग्रहण कर लिया। यथार्थवाद से प्रभाववाद (Impressionism) को समीप का माध्यम मिला। समकालीन दृष्टिकोण से यह प्रथम कलात्मक शैली थी, इसके द्वारा प्रभाववादी कलाकारों को वैज्ञानिक सूचना मिली। रंग के भौतिक तत्वों का ज्ञान हुआ। दृष्टि विद्या के द्वारा दृश्य की गति का अध्ययन हुआ। फोटोग्राफी के बहुत से पक्ष अनुभव किये।

१६ वीं शताब्दी में फ्रांस के साहित्य में प्रवृतियों का जन्म हुआ। इसके दो समुदाय बन गये। एक समुदाय प्रभाववादी और दूसरा यथार्थवादी कहलाया। प्रभाववादी कलाकारों में एडमण्ड, जूल्स डी गौनकोर्ट, एल फोन्स डोडेट और पेरी लोटी और यथार्थवादी में एमिला ज़ोला, गौस्टव फ्लोवर्ट और गाई डी मौपेसेन्ट का नाम उल्लेखनीय है। नोरवे में हेनरिक इवसन यथार्थवादी कलाकार माना जाता है। ज़ोला के प्रभाव से बर्लिन और म्यूंच में एक यथार्थवादी आन्दोलन आरम्भ हुआ। लेखकों ने व्यक्तित्व को अधिक निखार दिया जिससे वातावरण और परम्परा प्रतिबिम्बित हुए। जो पात्र प्रस्तुत किये गये उनके सम्बन्ध में प्रमाण एकत्रित किये गये। यह प्रयत्न

किया गया कि साहित्यक कार्य व्यवस्थित हों उनकी उचित योजना की जाय परन्तु कथानक को गौण स्थान दिया गया। इस युग के लेखकों का विश्वास था कि वे सत्य मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं। क्योंकि उनकी प्रणाली वैज्ञानिक थी। परन्तु उनको यह ज्ञान नहीं था कि उनके वैज्ञानिक सिद्धान्त जो चार्ल्स डारविन द्वारा प्रतिपादित थे और जिनको टामस-हेनरी हैक्सले अपने लेखों द्वारा प्रचारित कर रहे थे, स्वयं वाद विवाद के विषय थे।

चित्रकला—यथार्थवाद के अनुकरण से कलाकारों ने प्रकृति को चित्रण का आदर्श स्वीकार किया। शिक्षा सम्बन्धी विशाल शैली को चित्रकारों ने त्यागना आरम्भ कर दिया। जिस प्रकार साहित्य में यथार्थवादी प्रवृतियों का जन्म हुआ उसी प्रकार चित्रकला में भी, परन्तु साहित्य की अपेक्षा कला के क्षेत्र में यह प्रवृति अधिक बलवती नहीं हुई। कुछ यथार्थवादी चित्रकार समय के स्वभाव को व्यक्त करने में सफल हुए। एडौल्फ वौन मैनज़ेल (१८१५-१६०५) ने प्रसिया के कोर्ट जीवन के दृश्यों को सफलता से चित्रित किया। फौजी और ऐतिहासिक दृश्यों को पुनः जन्म दिया। १६ वीं शताब्दी के फैक्टरी जीवन और वहाँ की औद्योगिक गतिविधि को चित्रित करने में यह कलाकार अधिक सफल हुए। ये चित्र तत्कालीन आधुनिक दृष्टिकोण के सफल उदाहरण हैं। (Wilhelm Leibl) विलहम लेबल (१८४४-१६००) खुले वातावरण के चित्रों को चित्रित करने के लिए विख्यात हैं। विलहम ट्रबनर (१८५१-१६१७) ने यथार्थ चित्रण किया, परन्तु आपकी कल्पना उच्च और चित्र सम्बन्धी थी। अतः ट्रबनर की कला कृतियों में तत्कालीन कलाकारों की अपेक्षा अधिक आभिजात्यवादी प्रभाव है और कला-कृतियाँ उत्तमतर है।

यथार्थवादी चित्रकारों में गसटैव कौवर्ट (१८१६-१८७७) एक धनी किसान थे। आपने गम्भीर और भीमकाय चित्रों की रचना की। कौवर्ट अपनी राजनैतिक क्रिया शीलता के लिए विख्यात थे। प्रेस के कुछ एजेन्ट

उनसे सम्पर्कित थे। अतः आपकी कला कृति को विशेष ख्याति प्राप्त हुई। आपकी रचनायें "औरननस का ग्राम जीवन, दी स्टोन ब्रेकर्स, गुड्डे मिस्टर कौवर्ट" आदि भली प्रकार विख्यात हैं। परिचित जंगलों में हिरन और शिकारियों के चित्रों ने कला के क्षेत्र में अच्छा स्थान प्राप्त किया। कौवर्ट ने एक विख्यात 'शव-जुलूस' को साधारण प्रकार से चित्रित किया था। एन्टी क्लेरीकल आन्दोलन में इन्होंने विशेष भाग लिया। इस सम्बन्ध में पर्याप्त चित्रों की रचना की परन्तु अधिकतर वे कृतियाँ नष्ट हो चुकी हैं। आपने टेकनिक का गहन अध्ययन किया और रंगों को प्रयोगात्मक विधि से प्रयोग किया। सतह के प्रभाव को जानने के लिए प्लेट से रंग को छुरी द्वारा मिलाने का प्रयत्न किया गया।

मूर्तिकला—मूर्तिकला के क्षेत्र में यथार्थवादी अधिक कलाकार नहीं पाये जाते थे। १९ वीं तथा २० वीं शताब्दी के मूर्तिकार अधिकतर कफ के बटन, बास्कट की झुरियां और अंगुली और पोरुवे के जोड़ निर्मित करने में संलग्न थे। शिक्षा की सैद्धान्तिक शैली में इसका प्रमुख स्थान था। अतः यथार्थवाद को ठेस पहुँची। योरुप के दो विख्यात मूर्तिकार कोन्सटेन्टिन म्यूनर और औगस्टी रोडिन का नाम उल्लेखनीय है।

(Constantin Meunier) कोन्सटेन्टिन म्यूनर (१८३१-१९०५) बेलजियम निवासी थे। विषय तथा दृष्टिकोण से पूर्ण यथार्थवादी थे। औद्योगिक जनता का आपने प्रतिनिधित्व किया। अतः आपके चित्रों में माल ढोने वाला, खान में काम करने वाला, जहाज का मजदूर, कुली और इसी प्रकार के अन्य औद्योगिक श्रमिक आदि को विशेष स्थान प्राप्त हुआ है। राजा, महाराजओं, फौज और घुड़सवार आदि के चित्र आपने चित्रित नहीं किये। यद्यपि आपका चित्रण कोई शानदार सन्देश नहीं दे सका परन्तु प्रतिनिधित्व अवश्य रहा। शीघ्र चित्रण शैली को आपने अधिक महत्व दिया। गहरे रंगों का अधिक मात्रा में प्रयोग किया गया। समाज की आर्थिक और राजनैतिक समस्या और श्रमिक का सम्बन्ध आदि विशेष

चित्रण किये गये। म्यूनर ने कर्म के महत्व को अधिक बल दिया और भावुकता और परम्परागत विवरणों से प्रभावित नहीं हुआ।

(Auguste Rodin) औगस्टि रौडिन (१८४०–१९१७) फ्रांस का मूर्तिकार था जो बहुमुखी प्रतिभा के रूप में समाज के समक्ष आया। आपकी यथार्थवादी, स्वच्छन्दवादी और प्रभाववादी में भी गणना की जा सकती हैं। आपने सभी प्रकार के विषयों को प्रतिपादित किया। आपने माइकेल एंजिलो के पिछली अधूरी कला कृतियों को अपना आधार बनाया। आपने रंगीन पत्थर में से प्रायः चिकनी मूर्तियों का निर्माण किया। मांश पेशिया बड़ी स्पष्ट दिखाई गई। म्यूनर की भांति आपने भी फोटोग्राफी के वृहत विवरण को प्रमुखता नहीं दी।

स्थापत्य कला—योरुप में यथार्थवाद का बड़ा प्रभाव था प्रत्येक कला का मुख्य विषय यथार्थवाद ही था। १९ वीं शताब्दी के पिछले पचास वर्षों से स्थापत्य कला में यथार्थवाद पूर्ण प्रभावित कर रहा था। स्थापत्य कला में

प्रयोग का विशेष स्थान है। यथार्थवादी शैली का प्रयोग प्रत्येक भवन के निर्माण में हो सकता है जहाँ स्थापत्य कला की सम्पूर्ण शैलियों में से किसी का भी अनुकरण किया गया हो। यह युग औद्योगिक था यद्यपि इसकी ऐतिहासिक कोई पृष्ठभूमि नहीं थी अतः नवीन प्रकार की उपयोगी शैली का अनुकरण स्वाभाविक था। अब तक वस्तुएं गृहों में निर्माण होती थी परन्तु इस युग में फेक्टरी की आवश्यकता विशेष हो गई। नवीन पाठ्य क्रम को लेकर पोलीटेकिन स्कूलों की स्थापना हुई (Ecolo Poly technique) इकोले पोलीटेकनिक स्कूल पेरिस और रायल पोलीटेकनिक स्कूल बर्लिन विशेष उल्लेखनीय हैं। नवीन विधि से भवनों की रचना ने लंदन में १८५१ ई० में बड़ा प्रत्यक्षीकरण किया। पारदर्शी भवनों का निर्माण हुआ धातु के चौखटों में ४ फीट के चौकोर शीशों की सहायता से सुन्दर ढालने के कारखाने और शीशों की फेक्टरी स्थापित की गई। सयुक्त राष्ट्र अमरीका में यथार्थ वाद के अन्तंगत स्थापत्य कला विकसित

हुई । अमरीका में भिन्न प्रकार के आविष्कार हुये । गगन चुम्बी अट्टालिकाओं का निर्माण हुआ । सुन्दर पुलों की रचना हुई ।

प्रभाववाद (Impressionism)

स्वच्छन्दतावादी आंदोलन के पश्चात कला में बौद्धिक विकास अधिक हुआ । प्रभाववादी कला के आरम्भ होते ही कला के सिद्धांतों को नवीन प्रगति मिली । इस प्रकार की कला के अन्तंगत टेकनिक, विधि, सामग्री और कार्य के लिए कलाकार की भावना को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ । काम को अधिक महत्व प्राप्त नहीं हुआ । १६ वीं शताब्दी के मध्य में केमरा का आविष्कार हो चुका था अतः कलाकार का प्रकृति की नकल करने का कार्य स्थगित हो गया, परन्तु दृष्टि सम्बन्धी कार्य बढ़ गया । उसे अपनी कली को भिन्न २ माध्यमों द्वारा व्यक्त करने का अवसर मिला । नवीन खोज आरम्भ हो गई । "वाद" उसी नवीन खोज के परिणाम हैं । इन कलाकारों ने अपनी परम्परा से सहायता अवश्य प्राप्त की परन्तु फल विपरीत रहा ।

इस प्रकार यथार्थवाद के दृष्टि सम्बन्धी ज्ञान की प्रभाववाद में वृद्धि हुई । प्रभाववाद से दो परिवर्तन विशेष हुए । कलाकारों के दृष्टिकोण में असम्भूत परिवर्तन हुआ । स्थान और रंगों को विशेष महत्व दिया गया । प्रकाश के भिन्न २ माध्यम रहे । संयोजत के लालच में वस्तु अथवा आकृति के वास्तविक रंग को ओझल कर दिया । साधारण आकृतियों में आकर्षक सम्भावनाओं को स्थान प्राप्त हुआ । उनके चित्रण में अपरचित विधियों का प्रयोग हुआ । कला, कला के लिए है वाली भावना के अनुसार कलाकार को वस्तु अपने निजी दृष्किोण से दिखाई दी और उस चित्रण में कलाकार उसका यथोचित अर्थ लगाने की किञ्चित भी परवाह न करने लगा । इस प्रकार प्रभाववाद एक प्रकार से कलाकार की एक शैली हो गई । प्रभाव

वाद का नाम अच्छी भावना से नहीं पड़ा। १८७४ ई० में कुछ कलाकारों ने जो कृतियों की रचना की उनको एक पत्रकार ने कुप्रयोग के रूप में कलाकृतियों को प्रभाववाद नाम दिया। वास्तव में यह अप्रतिनिधित्व कला के लिए प्रयोग किया जाता है। यह नाम अपवाद के रूप में जब जन्ता ने प्रयोग किया तो कलाकारों ने एक गुम नाम संस्था को जन्म दिया जिसमें चित्रकार, मूर्तिकार, खुदाई करने वाला, आदि सभी सम्मिलित थे।

प्रभाववादी कलाकारों ने प्रारम्भिक रंगो का सीधा प्रयोग किया। जिस प्रकार अभिजात्यवादी कलाकार कोमलता और छाया प्रकाश के द्वारा रंगो का प्रयोग करते थे उसके विपरीत प्रभाववादी कलाकारों ने अविख्यात तूलिका के प्रभाव चित्रित किये। रंगो के विशेष प्रभाव तथा चमक चित्रित करने के लिए प्रारम्भिक रंगो के मिश्रण से उत्पन्न माध्यमिक रंगो का स्पष्ट प्रयोग किया। प्रभाववादी कलाकारों ने उन विषयों को चित्र का विषय बनाया जो पहिले चित्रित नहीं किया गया था, उदाहरणार्थ वर्षा, कोहरा, बर्फ आदि का वातावरण, चमकदार पत्थरों की सड़कें तथा पानी पर चमकदार प्रतिबिम्ब केनवैस पर बड़ी रोचकता से व्यक्त किया।

प्रभाववादी कला शैली का समाज पर बड़ा प्रभाव पड़ा। अब कला, कलागार (studio) से बाहर आ गई। कलागार का शुष्क वातावरण लोप हो गया। प्रतिबिम्बत रंग और प्रकाश के आधार पर छाया की मात्रा का विवेचन हुआ। प्रयोगवादी कला से कुछ हानियां भी हुई। प्रकाश का अत्याधिक मिलना रंग की वास्तविकता को खो देने में सहायक हुआ। रंग का उचित मूल्यांकन न हो सका। बिना संयोजन और आकृतियों के चित्रण के कलाकार बिना पृष्ठभूमि बनाये हुए केनवैस पर चित्र रचना करने लगे। कुछ कलाकारों पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ा और वे स्वच्छन्दतावादी कलाकारों की भांति अपनी रचना करने लगे। प्रभाववादी कलाकारों ने जो विभाजित रंग सिद्धान्त तथा परम्परा का अनुकरण किया वह दोषपूर्ण रहा।

प्रभाववाद अधिक सफल नहीं हुआ। सिर्फ सुविधा के लिए इसका प्रयोग किया गया। कुछ नामधारी प्रभाववादी कलाकारों ने स्वतंत्र शैली का अनुकरण किया। सैद्धान्तिक आधार पर ही नहीं बल्कि टेकनीकल आधार पर भी प्रभाववादी कलाकारों में मतभेद हो गया। कथानक रूढ़ियों के चुनने में भी बड़ा अन्तर दिखाई दिया।

प्रभाववादी कलाकारों में (Edovard Mant) एडुअर्ड मैनट (१८३२—१८८३) का प्रमुख स्थान है। दूसरे कलाकारों की भांति बहुत सी बातों में आप अधिक परम्परावादी थे। गहरी पृष्ठभूमि पर चटकदार रंगो का प्रभाव जो आपने दिखाया है वह सत्रहवीं शताब्दी के स्पेन के चित्रकार वेलास्क्वेज और जुरबैरन तथा इटली के चित्रकार के रावैगियो के कारण था। आरम्भ की कृतियों में मैनट के चित्रों में किनारे पर अधिक छाया प्रदर्शित की गई है। "लन्चन ऑन दी ग्रास" (Luncheon on the grass) आपका विरोधात्मक चित्र है। आपने विरोधी चित्रों में जनता का ध्यान अधिक आकर्षित किया है। इस चित्र में पेरिस के परिचित महानुभाव नग्न मूर्तियों के साथ जल पान कर रहे हैं। टेकनिक तथा परम्परागत आलेखन की दृष्टि से शान्तिपूर्ण वस्तु चित्रण (Still life) में यह चित्र बड़ा लौकिक है। अलंकारिक आलेखनों तथा सपाट रंगो के प्रयोग में मैनट महोदय ने गौगिन और मैटसी का अनुकरण किया है। मैनट के पिछले चित्रों में "शीशे के जलपान गृह" तथा इसी प्रकार के अन्य विषय निर्धारित करके थोड़ी थोड़ी थेगली के रूप में रंगो का त्वरित प्रयोग विधि का अनुसरण किया है। हरेक थेगली अथवा चेपी खुरदरी पृष्ठभूमि से प्रतिबिम्बित होती है। इसी प्रकार के बहुत से कारण थे जिनके द्वारा मैनट की कला प्रभावशाली क्षेत्र में चमकी और जनता को प्रभावित कर सकी।

दूसरे कलाकार Claude Monet क्लाउड मौनेट (१८४०—१९२६) प्रभाववादी कला के दूसरे नवीन मार्ग प्रदर्शक थे। आपने टेकनीकल विधि से इस प्रकार की कला को पुष्पित व पल्लवित किया। विधिवत शिक्षा ग्रहण

करने पर भी मौनट महोदय पेरिस के जलपान गृह में कलाकारों और लेखकों से मिले और विचार विमर्श किया। १८७० ई० में इंगलैंड में टर्नर महोदय की कला से प्रभावित हुए। आपकी चित्रण विधि निराली थी। आप एक पंक्ति में बहुत से कैनवेस रख देते थे। जैसे २ सूर्य बढ़ता जाता था आप भी एक कैनवेस के पश्चात् दूसरा, दूसरे के पश्चात् तीसरा और ऐसे ही आगे बढ़ते चले जाते थे। विशेषता यह होती थी कि सब चित्रों में विषय एक ही होता था। उदाहरण के लिए "सूखी घास का ढेर" प्रकाश की भिन्न २ छाया प्रकाश की परिस्थिति में चित्रित करते थे। इस प्रकार एक ही विषय के कुछ घंटों के अन्तर से कितने ही चित्र निर्मित हो जाते थे जिनका प्रभाव एक दूसरे से भिन्न होता था। चिनार का पेड़, इसकी पत्तियों का हवा में कांपना और सूर्य के प्रकाश में चमकना विविध विरोधाभास को प्रदर्शित करने वाले अनेक वृक्ष, रेलवे स्टेशन का शैड जिसमें एंजिन का धुआँ विवरण को अप्रत्यक्ष करता है, चमकदार हरे-भरे खेत जिनमें युवतियाँ फूल तोड़ रही हैं और कोहरेदार लन्दन अथवा पेरिस का धुंधला वातावरण आदि मौनट तथा उनके अनुयायियों के चित्र रचना के विषय थे।

इस युग में कुछ ऐसे भी कलाकार हुए जिन्होंने प्रभाववाद के विरुद्ध आवाज़ उठाई। उसके सिद्धान्तों में अभाव अनुभव किये। (Edgar Degas) ऐज़र डैगास (१८३४-१९१७) उनमें से एक थे। आपने प्रभाववाद की सीमाओं को पार करके स्वच्छन्दतावादी प्रवृति को कुछ अंशों में ग्रहण किया। आपने पेस्टिल रंगों की भी सहायता प्राप्त की और रंगों का इस प्रकार प्रयोग किया कि रेखा और रंग एक रूप हो गये। यद्यपि आपकी शिक्षा दीक्षा विधिवत् हुई थी तो भी आप (Gong Kind) जोन्ग किंड और (Boudin) वाउडिन की स्वच्छ प्रकाश की शैली से प्रभावित हुए। आपने चित्रशाला से बाहर चित्रण मर्यादा रहित समझा। आपका कहना था कि "चित्रकला खेल नहीं है।" आप पूर्वी कला से भी प्रभावित हुए और आपने देहाती और साधारण दृश्यों को चित्रित किया न्यू ओरलीनस का रुई

का बाज़ार, रास मण्डल में नर्तकी, धोबिन अपने कार्य में संलग्न आदि बड़े प्रभावित करने वाले चित्र थे। आपने जनता के चित्रण में व्यक्तित्व को प्रमुखता नहीं दी। इस प्रकार के चित्रण में नर्तकी की प्रमुखता नहीं थी अपितु केमरा की स्पष्ट टेकनिक को अधिक प्रत्यक्ष करने वाला था। अधिक समय तक अभ्यास का क्रम आपको अधिक प्रभावित करने वाला था।

(Camille Pissarro) कैमिली पिसारो (१८३०-१६०३) पूर्वी चित्रकला से अधिक प्रभावित थे। आप पर इंगलेंड के कोन्स्टेबिल और टर्नर का अधिक प्रभाव पड़ा था। आप सच्चे प्रभाववादी कलाकार थे और आपने वर्षा के रात्रि अथवा दिन के प्रकाश में पेरिस के सड़कों के किनारे के वृक्षों की पंक्ति आदि का बड़ा सजीव चित्रण किया था।

(Auguste Renoir) औगस्टी रीनोर (१८४१-१६१६) प्रभाववादी कलाकारों में अपना विशेष स्थान रखते हैं। प्रभाववादी लाक्षणिक ज्ञान आपको विशेष था। आपको आरम्भिक आशा पूर्ण विषयों की रंग योजना में उदाहरणार्थ सुन्दर स्त्री, गुलाबी बालक, प्रसन्न नर्तकी, छुट्टी का आनन्द भोगने वाला समूह आदि में बड़ी सफलता मिली। आपके नग्न चित्र स्मरणार्थक गुण थे। अत: इस क्षेत्र में आपकी कला कृति रूविनस से मिलती जुलती थी। इंगलैंड के एलफ्रेड सिसले का मौनट से विशेष सम्पर्क था। फ्रांस के बरथी मोरी सौट ने एक व्यक्तिगत शैली को जन्म दिया परन्तु इस शैली पर मैनट और डैगास का प्रभाव था। (Toulouse Lautrce) टौलौस लौट्रिक (१८६४-१६०१) भी प्रभाववादी कलाकार थे। आपने जनता के विनोद के विषयों को लेकर चित्र रचना की परन्तु अन्तर बड़ा तीक्ष्ण था। आपने सपाट रंग के आलेखन को पूर्वी शैली में चित्रित किया और तेज काली रेखाओं को प्रमुखता दी। प्रभाववाद के आकृति रहित पक्ष को आपने नहीं अपनाया।

नव-प्रभाववाद (Neo-Impressionism)

१९ वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में कुछ चित्रकार नवीन प्रगति के साथ अग्रसर हुए। जिन्होंने प्रभाववादी नवीन पारभाषिक मार्ग को अपनाया। तूलिका चिन्हों को स्पष्ट चित्रित करने की भावना जागृत हो गई। आयताकार आकृति में तूलिका के प्रभाव को पेरिस के दृश्य चित्र तथा देहाती दृश्य चित्रों का सृजन किया। स्वच्छ रंगों का प्रयोग अभी तक था परन्तु धरातल पर व्यक्त चित्रण दृष्टिगोचर होता था। इस प्रकार के नवीन व्यवधान में अन्य व्यक्तियो ने भी भाग लिया परन्तु स्यूरट (Seurat) की विशाल कृतियां बड़ी गम्भीरता पूर्ण थी। आपकी कला कृतियाँ असाधारण थी परन्तु विशेष महत्व रखती थी। स्यूरट चित्रण विधि बड़ी नियमित थी। आकृतियों को स्थान के अन्तर के साथ व्यवस्थित किया गया था जिससे कला के लाक्षणिक युग का अनुभव होता था।

प्रभावोत्तरवाद (Post-Impresseonism)

शताब्दी के अन्त में कुछ कलाकार प्रभाववाद से अधिक प्रभावित हुए और दूसरे विपरीत क़दम उठाने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रकार के कलाकारों की विचारधारा 'वाद' के विरोध में जागृत हुई। इन स्वतन्त्रवादी कलाकारों में ओडीलन रिडौन (Odilon Redon), पेरी बौनार्ड (Pierre Bounard), एडौर्ड व्यूलार्ड (Edoord Vuillard) आदि थे जिन्होंने प्रभाववादी रंग योजना से कहीं अधिक रंगों का प्रयोग किया। इनमें मुख्य कलाकार जिन्होंने बड़े बल पूर्वक प्रभाववाद के विरोध में क़दम उठाया उनमें (Cezanne) सैज़ान, (Gauguin) गोगिन और (Van Gogh) वैन गफ आदि विशेष उल्लेखनीय हैं जिनके प्रभाव से २० शताब्दी के श्रोत्र का उद्गम हुआ। प्रभावोत्तरवाद में पिछली बनावट की समस्या का उत्तम समावेश है। धरातल के आलेखन की सुन्दर

सम्भावनायें तथा रंग के उद्देश्य का पुन: प्रतिपादन हुआ है। प्रभावोत्तरवादी कलाकार संगीतमय आकृति में ठोसपन और सुडौलपन प्रदर्शित करते थे।

(Poul Cezanne) पौल सैंज़ान (१८३९-१९०६) प्रभावोत्तरवाद के प्रमुख कलाकार थे। प्रभाववाद में क्षणिक दृष्टि सम्बन्धी यथार्थवाद की महत्ता की इसके विपरीत प्रभावोत्तरवाद के कलाकाकारों ने नवीन बनावट सम्बन्धी ठोसपन को अधिक प्रमुखता दी। २० वीं शताब्दी की कला का श्री गणेश ही (Cezanne) सैंज़ान की कला कृतियों से ही होता है। २० वीं शताब्दी के समस्त बौद्धिक भाववाद अथवा घनवाद का प्रवर्तक आपको स्वीकार किया जाना सर्व मान्य होगा। आपको आधुनिक कला की कुञ्जी कहा जाय तो अतिश्योक्ति न होगी। प्रत्येक 'वाद' में कलाकार ने अपनी कला कृति में प्रत्येक सत्ता को अलग महत्व दिया और प्रत्येक को पूर्ण करने का पूर्ण प्रयास किया। (Cezanne) सैंज़ान ने प्रत्येक भाग के पारस्परिक सम्बन्ध का अनुभव किया और अपने क्षेत्र को विशाल करके प्रकृति को दर्पणवत् समझने का प्रयत्न किया। आपके दृश्य चित्र को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—अग्रभूमि, मध्यभूमि और पृष्ठभूमि। आपका विश्वास था कि समस्त प्रकृति को दृश्य चित्र में परिवर्तित किया जा सकता है, परन्तु उन दृश्य चित्रों में आकृतियां घन, शंकु, वेलन आदि होंगी। आपका एक चित्र (Mont, Ste, Victoire) मौन्ट स्टी विक्टोरी में पहाड़ शंकु हैं, पेड़ के तले बेलन हैं, मकान घन है। आपने पत्तियों के ढेर को अलग २ पत्तियां न समझकर एक एक धरातल समझा है। कथानक रूढ़ियों के निर्वाचन में आपने दृश्य, पदार्थ और आकृति रचना को अधिक महत्व दिया है। धरातल की अपेक्षा आपने वक्र के कोण पर अधिक बल दिया है। प्रकृति में आकृति के भ्रम को स्पष्ट करने का आपका सतत प्रयत्न रहा।

(Cezanne) सैंज़ान ने कमरे के बाहर के चित्रण को अधिक महत्व दिया। आपने फ्रांस के सैद्धान्तिक चित्रकार पोसिन का अधिक अनुकरण

किया। कला-गृह की अपेक्षा प्रकृति के स्वच्छ वातावरण में चित्रण आपको अधिक प्रिय लगा। आपकी कला कृतियों का समाज ने आरम्भ में अधिक मूल्य नहीं किया परन्तु आपकी मृत्यु के तीन वर्ष पूर्व आपकी कला का जनता ने बिशेष आदर किया। इस प्रकार आपको अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अपनी कला की ख्याति का स्वयं अनुभव हुआ।

अभिव्यंजनावाद (Expressionism)

सेज़ान की बौद्धिक और स्थापत्य-कला के विपरीत कुछ कलाकारों ने एक नवीन प्रवृति को अपनाया। अभिव्यंजनावादी कलाकारों ने व्यक्तित्व को निखारने का प्रयत्न किया। उन्होंने अलंकारिक और व्यक्तिगत चित्रण में विशेष अभिरुचि प्रदर्शित की। इस 'वाद' के एक कलाकार आधे स्पेन निवासी और आधे फ्रांस निवासी (Paul Gauguin) पौल गौग्विन (१८४८-१९०३) थे। गौग्विन सदैव रंगीली पृष्ठभूमि को अधिक महत्व देते थे। आप पर प्राचीन कला का बहुत प्रभाव पड़ा था। आपने आरम्भ में साधारण जीवन व्यतीत किया। इसके पश्चात् आप कलाकार के रूप में समाज के समक्ष पधारे। अन्त में आप दक्षिणी समुद्र की ओर चले गये। वहां आपने चटकीली पृष्ठभूमि के चित्रों को जन्म दिया। चित्र साधारण होने पर भी बड़े प्रभावशाली थे। इस समय आपने ऐसे चित्रों को जन्म दिया जो प्रतीकात्मक और अलंकारिक थे। फ्रांस में आप किसानों की कला से प्रभावित हुए। आपने तत्कालीन लोक कला को अपनाया। अलंकारिक परिवेक्षण और आकृति संयोजन के लिए आपने अजायबघरों को माध्य बनाया। आपको दिखावे में विश्वास था। आपने धार्मिक विषयों के चित्रों की भी रचना की परन्तु वे ईसाई धर्म के विपरीत थे। आपने लोक व्यवहार का अनादर किया और यही आपकी ख्याति का कारण था।

दूसरे कलाकार (Vincent Van Gogh) विनसेन्ट वैन गफ (१८५३-१८९०) समाज की गतिविधि से परिचित थे। अत्याचारि यों के

प्रति बड़े सहृदय थे। आप धार्मिक वृति के थे और असंयमित व्यक्तित्व से आपको घृणा थी। आपने दैनिक जीवन की साधारण वस्तुओं का इतना सफल चित्रण किया कि वे चित्र का स्थान ग्रहण कर गईं। कुर्सी, जूते, पागल खाने में कमरा अच्छे संग्रह हैं। आपने गति पूर्ण गेहूँ के खेत, सूर्यमुखी फूल के चित्रण से कला संसार को नवीन कला शली से परिचित कराया। यद्यपि आपका जनता से अधिक सम्पर्क न था परन्तु आपकी कला कृतियां जनता को नवीन पाठ पढ़ाती हैं। आपके चित्रों में एक विख्यात अपील है।

समाप्त

प्रो० चिरंजी लाल झा एम०ए० (हिन्दी तथा अंग्रेजी)

की

कला विवेचना निम्न पुस्तकों के रूप में:—

१. *कला के छः अंग*
२. *भारतीय चित्रकला का विकास*
३. *कला के दार्शनिक तत्व*
४. *विश्व की चित्रकला*
५. *कला—एक मीमांसा*



आप महानंद मिशन हरिजन कालिज गाजियाबाद में चित्रकला विभाग के अध्यक्ष हैं। आगरा विश्व विद्यालय के चित्रकला परिषद के संयोजक, एकैडेमिक काउंसिल तथा फैकल्टी आफ् आर्टस के मनोनीत सदस्य हैं। इस समय आप "लोक चित्र कला निवद्ध लोक साहित्य" विषय पर आगरा विश्व विद्यालय से डाक्टरेट के लिए शोधकार्य कर रहे हैं। आपके अकथ प्रयत्न का फल है कि उत्तरी भारत की सबसे बड़ी आगरा विश्व विद्यालय आगरा सन् १९६० से ड्राइंग पेंटिंग में एम.ए. की व्यवस्था कर रही है।